आई. एस. एस. एन.
0523-1418
फाल्गुन–चैत्र–वैशाख
विक्रम संवत् 2083

अंक 324, वर्ष 65

भाषा

मार्च–अप्रैल 2026

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

भाषा मार्च–अप्रैल 2026

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों/रचनाकारों हेतु दिशानिर्देश संबंधी नियमावली

1. 'भाषा' पत्रिका में मुख्य रूप से भारतीय भाषाओं पर आधारित भाषावैज्ञानिक, शोधपरक, साहित्यिक, तुलनात्मक साहित्य तथा अनूदित रचनाओं को प्राथमिकता दी जाएगी। इसके अलावा प्रवासी साहित्य तथा समसामयिक विमर्शों (स्त्री/दलित/आदिवासी आदि) पर भी लेख प्रकाशित किए जाएँगे।
2. रचनाकारों से प्लेगरिज्म संबंधी वचनबद्धता अनिवार्य है।
3. लेखों में संदर्भ–सूची देना अनिवार्य है। संबंधित संदर्भ प्रत्येक पृष्ठ के नीचे अंकित होने चाहिए।
4. समीक्षा केवल दो वर्ष पुरानी पुस्तकों की ही प्रकाशित की जाएगी। समीक्षा हेतु पुस्तक की दो प्रतियाँ ली जाएँगी। स्वतः की गई समीक्षा को प्रकाशित किए जाने के लिए संपादन–मंडल बाध्य नहीं है।
5. 'भाषा' पत्रिका में केवल केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक वर्तनी का प्रयोग ही किया जाएगा।
6. पत्रिकों में प्रकाशन हेतु हस्तलिखित रचनाएँ स्वीकार नहीं की जाएँगी। हस्तलिखित रचनाएँ प्राप्त होने की स्थिति में रचनाएँ लौटाई नहीं आएँगी।
7. 'भाषा' में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ अनिवार्य रूप से टंकित रूप में यूनिकोड फॉन्ट में ही स्वीकार की जाएँगी।
8. लेख सामान्यतः फुलस्केप आकार के दस पृष्ठों से अधिक नहीं होंने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए। लेख इत्यादि भेजते समय इस आशय का प्रमाण–पत्र भी भेजा जाए कि रचना मौलिक तथा अप्रकाशित है तथा किसी भी रूप में अन्यत्र प्रकाशित नहीं हुई है।
9. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है।
10. 'भाषा' पत्रिका में प्रकाशित अंकों से संबंधित लेखकों/रचनाकारों/पाठकों की टिप्पणियों तथा सुझावों को पत्रिका के अंत में 'आपने लिखा' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित किया जाएगा।
11. पत्रिका की ई–प्रति पीडीएफ स्वरूप में यथासमय निदेशालय की आधिकारिक वेबसाइट (www.chdpublication.education.gov.in) पर अपलोड की जाएगी।
12. सामग्री के प्रकाशन के संबंध में प्रधान संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

संपादकीय कार्यालय

संपादक, भाषा पत्रिका, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

भाषा

मार्च–अप्रैल 2026

प्रधान संपादक
हितेंद्र कुमार मिश्र

परामर्श मंडल
बलदेव भाई शर्मा
ए. अच्युतन
कुमुद शर्मा
ओकेन लेगो
भगवान त्रिपाठी
बलराम
प्रत्यूष दूबे

संपादक
एस. श्रीनिवासन

संपादक मंडल
किरण झा
प्रदीप कुमार ठाकुर
रमना
रामअवतार

कार्यालयीन व्यवस्था
विक्रांत हुड्डा
संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **65 अंक : 2 (324)**

मार्च–अप्रैल 2026

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in è www.chd.education.gov.in
ई–मेल : bhashaunit@gmail.com दूरभाषः 011-26105211/12

बिक्री केंद्र 1 :

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 दूरभाषः 011-26105211/12 (सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।)

बिक्री केंद्र 2 :

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली - 110054, वेबसाइट : www.deptpub.gov.in, ई–मेल : acop-dep@nic.in दूरभाष : 011-23817823/ 9689 (सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।)

निर्देश :

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in → Quick Payment → Ministry (007 Higher Education) → Purpose (Education receipt) 211766 JR.ADMN. OFFICER CENTRAL HINDI DIRECTORATE में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया ऊपर दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफॉर्मा भरकर भेजें।
3. 'भाषा' पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य :			
1. एक प्रति का मूल्य	=	रु. 50.00	
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 250.00	
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	(डाकखर्च सहित)
4. दसवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

आवरण चित्र– रितिक अग्निहोत्री (साभार)

भाषा
मार्च–अप्रैल 2026

अनुक्रमणिका

प्रधान संपादक की कलम से

संपादकीय

धरोहर

1.	काव्य बिम्ब और काव्य–मूल्य (निबंध)	नगेन्द्र	11
2.	धूप का एक टुकड़ा (कहानी)	निर्मल वर्मा	17

आलेख

3.	वर्णोच्चारण प्रक्रिया का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	संजय कुमार तिवारी	24
4.	शब्दकोश एवं द्वितीय भाषा अधिगम : हिंदी का विशेष संदर्भ	परमान सिंह कृष्ण कुमार पाण्डेय	33
5.	हिंदी और कश्मीरीः अंतःसंबंधों का विवेचन	शिबन कृष्ण रैणा	45
6.	विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियों में चित्रित किसान जीवन के बदलते स्वरूप	देबी देबांगना एच. सुवदनी देवी	56
7.	जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन	रवि रंजन कुमार	63
8.	असम की मिसिंग भाषाः स्वरूप एवं वैशिष्ट्य	दिनेश कुमार चौबे	73
9.	नेपाल में मैथिली भाषाः इतिहास तथा वर्तमान	अमित कुमार जायसवाल	81
10.	हिंदी और मणिपुरी भाषाओं की व्याकरणिक कोटियों का व्यतिरेकी अध्ययन	चान्दम इङो सिंह	87
11.	अभिमन्यु अनत के साहित्य में व्यक्त प्रवासी जीवन की आर्थिक समस्याएँ	दिनेश कुमार गुप्ता	100
12.	नासिरा शर्मा का बाल साहित्य सृजन	सुरेंद्र विक्रम	116
13.	रसानुभूति का सौंदर्यशास्त्र	शैलेश कुमार मिश्र	130
14.	छत्तीसगढ़ की लोक –गाथाएँ और नारी	आरती पाठक	140

रेखाचित्र

15.	भैयामाय	प्रतिभा राजहंस	148

बाल नाटक

16.	''सारा नाटक गुड़–गोबर''	सुनील गज्जाणी	155

कहानी

17. औरत जात (बांग्ला)	जीवनानंद दास अनुवाद : विजय कुमार यादव	165
18. कमाने रत्नमान (नेपाली)	वीरभद्र कार्कीढोली	182
19. मंगलसूत्र की चमक (हिंदी)	भगवान अटलानी	189
20. बख्शीश नहीं आशीर्वाद (हिंदी)	रमेश खत्री	194

कविता

21. वह सचमुच एक नदी ही थी.. (मराठी / हिंदी)	मूल एवं अनुवाद : सुनीता झाडे	204
22. समय सीमा कहाँ है? (तेलुगु / हिंदी)	सी. नारायण रेड्डी अनुवाद : मोहम्मद जमील अहमद	208
23. मेरी कविता रोटियाँ नही दे सकती (हिंदी)	तेज नारायण राय	212
24. मछली और स्त्री (हिंदी)	सत्या शर्मा 'कीर्ति	214
25. छत (हिंदी)	रंजना जायसवाल	216

परख

26. व्यंग्यात्मक दृष्टि का जीवंत दृष्टिकोण (निराली दुनिया / लालित्य ललित)	सूर्यकांत शर्मा	218
27. मेवाड़ व मराठाओं के शौर्य का वास्तविक, रक्तरंजित व रत्नजड़ित इतिहास (मेवाड़ एवं मराठाओं की सहस्र वर्षों की शौर्यगाथा / रघु हरि डालमिया, विवेक मिश्र)	अंतरा करवड़े	222
28. काव्य साधारणीकरण संपूर्ण उत्कृष्टता को परिभाषित करता है। (पवित्र मिट्टी / निशा भास्कर)	शंकर सहर्ष	229
29. आर्यावर्त की सांस्कृतिक धरोहर (भारत के चक्रवर्ती सम्राट / देवराज सिंह जादौन)	हरभजन सिंह मेहरोत्रा	236

आपने लिखा 246

सदस्यता फॉर्म 247

प्रधान संपादक की कलम से

समय और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। समय की अबाध गति साहित्य के माध्यम से बदलती सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक बदलावों को चिह्नित करती हुई परिलक्षित होती है। साहित्य बदलते समय की नब्ज पकड़ते हुए सामयिक परिवेश के साथ–साथ उसमें तकनीकी रूप से आ रहे परिवर्तनों को भी दर्ज करता है साथ ही साथ उसका स्वयं का चरित्र भी आंतरिक रूप से संशोधित और परिवर्धित होता रहता है। यही कारण है कि तकनीकी रूप से नित नूतन हो रहे शोधों एवं अनुसंधानों के परिप्रेक्ष्य में समय और साहित्य का मूल्यांकन जरूरी है।

इक्कीसवीं सदी के सूचना और तकनीक के इस युग में तकनीक की बड़ी भूमिका है। मानव द्वारा किए जा रहे परंपरागत कार्य–पद्धति की जगह तकनीक तथा स्वचालन का लगातार विस्तार हो रहा है। मनुष्य की प्रकृतिप्रदत्त तथा अर्जित बुद्धिमत्ता के समानांतर आज मशीनी एवं स्वचालित कार्यों को अधिक बढ़ावा मिल रहा है, जिससे ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों में मूलभूत बदलाव घटित हो रहे हैं। नई दिल्ली में आयोजित इंडिया एआई इम्पैक्ट समिट (16–20 फरवरी, 2026) इसी की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस समिट में वैश्विक पटल पर भारतीय मेधा का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया जा रहा है। समिट में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) पर विशेष बल दिया गया है। इस तरह के आयोजन विकास के अगले चरण के साक्षी हैं, जो आगत भविष्य के विशेष टूल हैं।

विकसित भारत के लक्ष्य की ओर बढ़ रहा हमारा देश इन प्रवृत्तियों से अछूता नहीं है। हमारे समय और समाज ने भी इस परिवर्तन को आत्मसात किया है और तदनुरूप उससे लाभान्वित भी हुआ है। साहित्य में भी कृत्रिम बुद्धिमत्ता का दखल बढ़ा है। न केवल दखल बढ़ा है बल्कि उसने व्यापक स्तर पर मनुष्य की सृजनशीलता को चुनौती भी देनी शुरू कर दी है। वास्तव में कृत्रिम बुद्धिमत्ता हमारे द्वारा सृजित ज्ञान के समृद्ध भंडार के आधार पर ही कार्य करता है, किंतु इसके द्वारा पुनरुत्पादित सामग्री का उत्पादन तथा पुनर्सृजन केवल एक व्यक्ति के वश की बात नहीं है। इस मामले में यह मशीनी ज्ञान मनुष्य निर्मित ज्ञान पर बीस ठहरता है। इसके दूरगामी प्रभाव हमारी बनी बनाई सत्ता को गहरे रूप में प्रभावित करते हैं। बावजूद इसके यह मनुष्य का स्थानापन्न नहीं हो सकता और न ही मनुष्य इससे पृथक ही रह सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारा समय और समाज इसके उपयोग को लेकर सचेत रहे तथा इसके प्रभावों के आलोक में इसे अपने व्यावहारिक प्रयोग में लाए।

साहित्य–सृजन एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में मानव को केंद्र में रखते हुए तथा मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता देते हुए सामाजिक समस्याओं तथा चुनौतियों का रेखांकन किया जाता है, जिसका व्यापक प्रभाव समकालीन समय और साहित्य पर पड़ता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बढ़ते प्रभावों को भी आँख मूँदकर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। एक तरफ यह हमें सुगमता प्रदान करता है तो दूसरी तरफ यह हमारी नैसर्गिक जिज्ञासाओं एवं प्रतिभाओं को कुंद भी करता है। इसने सुविधाओं के साथ–साथ हमें बहुत सारे मामलों में पराश्रित, परनिर्भर तथा सुविधा–लोलुप भी बना दिया है, जिसके कारण हमारी मौलिकता भी नष्ट हो रही है। यह एक चिंता का विषय है। किंतु यह साहित्य ही है जो हर समस्या को प्रमुखता से उजागर करता है एवं उसके निदान के रास्ते भी निकालने का प्रयास करता है। साहित्य सृजन तथा उसका ग्रहण हमें आंतरिक रूप से ईमानदार और सहृदय भी बनाता है और यही वह बिंदु है जो हमें हवा के रुख के बहाव में भटकने से रोकता है। 'भाषा' पत्रिका का यह अंक भी इसी दिशा में एक प्रयास है। मुझे आशा है कि पूर्व के अंकों की भाँति यह अंक भी आपको प्रभावित करेगा। आपके सुझावों का सहर्ष स्वागत है। आपके सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी। जय हिंद !

(हितेंद्र कुमार मिश्र)

संपादकीय

भारतीय सभ्यता की पहचान उसकी सांस्कृतिक, भाषिक और साहित्यिक विविधता से होती है। भारतीय भाषाओं की परंपरा केवल लिखित साहित्य तक ही सीमित नहीं रही है, बल्कि लोक साहित्य और प्रवासी साहित्य के माध्यम से उसने समाज के विविध अनुभवों और संवेदनाओं को निरंतर अभिव्यक्त किया है। भारतीय भाषाएँ, लोक साहित्य, प्रवासी साहित्य तथा तकनीकी विकास–ये चारों मिलकर हमारी सांस्कृतिक चेतना को आकार देते हैं। भाषा समाज की चेतना, सांस्कृतिक बोध और साहित्यिक विचारधारा की संवाहक होती है। समय के साथ–साथ उसके रूप, प्रयोग और विस्तार में परिवर्तन होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। तकनीकी विकास ने भारतीय भाषाओं की कार्यक्षमता को भी सुदृढ़ किया है। यूनिकोड, भाषाई सॉफ्टवेयर, डिजिटल शब्दकोश और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरणों ने भाषा के प्रयोग को सरल और व्यापक बनाया है। फिर भी यह आवश्यक है कि तकनीक के प्रयोग में भाषा की सांस्कृतिक संवेदना और साहित्यिक गरिमा बनी रहे।

तकनीकी विकास ने इस परिवर्तन को नई दिशा और गति प्रदान की है। डिजिटल माध्यमों के द्वारा लोक साहित्य का संरक्षण और प्रचार–प्रसार किया जा सकता है। ऑनलाइन अभिलेखागार, ई–पुस्तकें, ऑडियो–विडियो संग्रहों तथा डिजिटल शब्दकोश ने भाषाओं, लोक साहित्य तथा प्रवासी साहित्य को सुरक्षित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इससे नई पीढ़ी अपनी साहित्यिक विरासत से जुड़ सकेगी। डिजिटल मंचों, सरकारी ई–पोर्टलों, ऑनलाइन पत्रिकाओं तथा सामाजिक संचार माध्यमों के जरिए भाषा अब सीमित वर्ग तक नहीं, बल्कि समाज के विभिन्न स्तरों तक पहुँच रही है। इससे भाषाई लोकतंत्रीकरण को बढ़ावा मिला है। आज भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं रही, बल्कि ज्ञान–संचार, प्रशासन, शिक्षा और सामाजिक सहभागिता का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन चुकी है।

भारतीय भाषाओं की परंपरा बहुत प्राचीन और समृद्ध रही है। संस्कृत से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं तक का विकास इसका प्रमाण है कि भाषा निरंतर आगे बढ़ती रही है। इन भाषाओं में लिखित साहित्य ने समाज को नई दिशा दी है। इस दृष्टि से भारतीय भाषाओं का साहित्य भारतीय जीवन का सजीव दस्तावेज है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में मातृभाषा और भारतीय भाषाओं में शिक्षा पर बल दिया गया जो इस दिशा में एक सकारात्मक कदम माना जा सकता है।

लोक साहित्य इसी परंपरा की मजबूत नींव है। लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें और जनश्रुतियाँ सामान्य जनजीवन से जुड़ी होती हैं। इनमें लोगों का सुख–दुख, संघर्ष और आशाएँ झलकती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लोकजीवन को साहित्य की प्राणवायु कहा था।

प्रवासी साहित्य आज के समय की एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक धारा है। विदेशों में बसे भारतीय लेखकों की रचनाओं में मातृभूमि की यादें, भाषा के प्रति लगाव और नई संस्कृति के साथ तालमेल की कोशिश दिखाई देती हैं। यह साहित्य हमें बताता है कि भौगोलिक दूरी के बावजूद सांस्कृतिक संबंध कायम रहते हैं।

यदि ध्यान केंद्रित किया जाए तो लोक साहित्य की संवेदनाएँ ही भारतीय भाषाओं के माध्यम से प्रवासी साहित्य तक पहुँचती हैं। स्मृतियों में बसे लोकगीत और लोककथाएँ नए संदर्भ में सामने आकर साहित्य को नया स्वरूप देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि साहित्य निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया है। आज आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय भाषाओं, लोक साहित्य और प्रवासी साहित्य को शिक्षा, शोध और तकनीक से जोड़ा जाए। भारतीय भाषाएँ, लोक साहित्य और प्रवासी साहित्य मिलकर भारतीय संस्कृति की निरंतरता और जीवंतता को मजबूत करते हैं। इन्हें संरक्षित करना, विकसित करना और नई पीढ़ी तक पहुँचाना हमारा सामूहिक दायित्व है।

(एस. श्रीनिवासन)

जो मेरे घर कभी नहीं आएँगे

मैं उनसे मिलने
उनके पास चला जाऊँगा।

एक उफनती नदी कभी नहीं आएगी मेरे घर
नदी जैसे लोगों से मिलने

नदी किनारे जाऊँगा
कुछ तैरूँगा और डूब जाऊँगा

पहाड़, टीले, चट्टानें, तालाब
असंख्य पेड़ खेत

कभी नहीं आएँगे मेरे घर
खेल–खलिहानों जैसे लोगों से मिलने

गाँव–गाँव, जंगल–गलियाँ जाऊँगा।
जो लगातार काम में लगे हैं

मैं फुरसत से नहीं
उनसे एक जरूरी काम की तरह

मिलता रहूँगा–
इसे मैं अकेली आखिरी इच्छा की तरह
सबसे पहली इच्छा रखना चाहूँगा।

–विनोद कुमार शुक्ल

घर रहेंगे,हमीं उनमें रह न पाएँगे
समय होगा, हम अचानक बीत जाएँगे

अनर्गल ज़िंदगी ढोते किसी दिन हम
एक आशय तक पहुँच सहसा बहुत थक जाएँगे।

मृत्यु होगी खड़ी सम्मुख राह रोके,
हम जगेंगे यह विविधता, स्वप्न, खो के,

और चलते भीड़ में कंधे रगड़ कर हम
अचानक जा रहे होंगे कहीं सदियों अलग होके।

—कुँवर नारायण

पहाड़ नहीं उगते

खंडहर पत्थरों के होते हैं
फूलों के नहीं

बहुत छोटा हेाता है फूलों का जीवन

फूल पीछे छोड़ जाते हैं
अपने बीज
चुपचाप
बिना किसी से कहे
कि पत्थर बोने से पहाड़ नहीं उगते

—नरेश सक्सेना

धरोहर

काव्य–बिम्ब और काव्य–मूल्य

नगेन्द्र

क्या काव्य–बिम्ब को हम मूल्य के रूप में स्वीकार कर सकते हैं ? प्रस्तुत प्रश्न का समाधान करने के लिए यह निर्णय करना होगा कि क्या बिम्ब–प्रयोग के आधार पर हम किसी कवि की उपलब्धि या काव्य–कृति विशेष का मूल्यांकन अथवा विभिन्न कृतियों के काव्य–मूल्य के तारतम्य का निर्णय कर सकते हैं।

काव्य–बिम्बों का प्रयोग निरपेक्ष तथ्य नहीं है। उसका आकलन बिम्बों के गुण और परिमाण पर निर्भर करता है। बिम्ब का प्रमुख गुण है सजीवता अर्थात् बिम्ब की रूपरेखा इतनी सुस्पष्ट होनी चाहिए कि प्रमाता तुरंत ही उसका ऐंद्रिय साक्षात्कार कर सके। बिम्ब का एक अन्य गुण है समृद्धिः यों तो इस शब्द का अर्थ सर्वथा परिभाषित नहीं है, पर सामान्यतः यह मधुर और उदात्त अथवा कोमल और विराट तत्त्वों के प्राचुर्य का द्योतक है। इन दोनों गुणों का अनुशासक गुण है औचित्य–अर्थात् प्रसंग के प्रति अनुकूलता या सार्थकता। उधर परिमाण की परिधि में प्राचुर्य और वैविध्य आदि गुणों का अंतर्भाव है। अतः प्रस्तुत प्रश्न का निर्णय करने के लिए कतिपय संबद्ध प्रश्नों का उत्तर आवश्यक हो जाता है। क्या काव्य की दृष्टि से एक कृति दूसरी की अपेक्षा इसलिए अधिक मूल्यवान है कि उसमें प्रयुक्त बिम्ब अधिक सजीव अथवा ऐंद्रिय है– या वे अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध है; या फिर उनमें औचित्य गुण का अधिक सन्निवेश है?– अथवा वे संख्या में अधिक है या उनमें वैविध्य एवं वैचित्र्य अधिक है?

मैं समझता हूँ कि उपर्युक्त प्रश्नों का नकारात्मक उत्तर देना कठिन होगा– अर्थात् यह न मानना कठिन होगा कि बिम्ब–योजना के गुण और परिमाण के आधार पर विभिन्न कृतियों के सापेक्षिक मूल्य का निर्णय किया जा सकता है। जिस कृति में प्रयुक्त बिम्ब अधिक सजीव और ऐंद्रिय हैं वह, अन्य गुणावगुण बराबर रहने पर, दूसरी की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् है। यही बात अन्य गुणों के विषय में कही जा सकती हैः जिसके बिम्ब अधिक समृद्ध है– या अधिक प्रसंगानुकूल– सार्थक है, जिसमें बिम्बों का वैचित्र्य–वैविध्य अधिक है, उसका काव्यमूल्य, अन्य गुणावगुण बराबर रहने पर, अपेक्षाकृत अधिक है। परंतु यह उत्तर आत्यंतिक नहीं है क्योंकि बिम्ब योजना के गुण परिमाण निरपेक्ष तत्त्व नहीं हैं। एक बिम्ब दूसरे की अपेक्षा अधिक सजीव है, इसका

अर्थ यह है कि उसकी प्रेरक कविगत अनुभूति अधिक तीव्र और अनाविल है या थी– इतना ही नही वरन् यह भी कि उसके द्वारा उदबद्ध सहृदयगत अनुभूति अधिक तीव्र और अनाबिल होती है। कीट्स की बिम्ब–योजना शैले की अपेक्षा अधिक तीव्र और अनाविल होती है। कीट्स की बिम्ब–योजना शैले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और सजीव है क्योंकि उसकी प्रेरक अनुभूति भी उतनी ही अधिक प्रखर और तीव्र थी। इसी प्रकार बिम्ब की समृद्धि और सार्थकता भी मूलतः और अंततः प्रेरक अनुभूति की समृद्धि और सार्थकता भी मूलतः और अंततः प्रेरक अनुभूति की समृद्धि और सार्थकता के ही परिणामी गुण है। यही बात बिम्बों के प्राचुर्य और वैविध्य–वैचित्र्य के विषय में भी सत्य है। बिम्बों का प्राचुर्य और वैविध्य एक ओर उनकी प्रेरक कविगत अनुभूति के विस्तार व वैचित्र्य का और दूसरी और उनसे संप्रेरित प्रमातृगत अनुभूतियों के विस्तार–वैविध्य का मापक है। तुलसी के बिम्ब–विधान में सूर के बिम्ब–विधान की अपेक्षा वैचित्र्य और प्राचुर्य का कारण यह है कि तुलसी का अनुभूति–क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक था।

परंतु सवाल का दूसरा पहलू भी हैः बिम्ब–रचना ही वास्तविक कवि–कर्म है, वही कला है। कवि–कर्म की सफलता स्पष्ट और प्रखर बिम्ब के निर्माण में ही निहित है; बिम्ब का रागात्मक पक्ष काव्य–कला के लिए अप्रसंगिक है। इतना ही नहीं, राग की संकुलता बिम्ब की रूपरेखा को धूमिल बना देती है और उसकी आर्द्रता से बिम्ब की स्वच्छता बाधित हो जातीी है। अतः राग से निर्लिप्त स्वच्छ–स्फुट बिम्ब अपना माध्य आप ही है, कला के वृत्त में उसका अपना स्वतन्त्र और केन्द्रीय अस्तित्त्व हैं। विचार के सम्प्रेषण का माध्यम या अनुभूति की व्यंजना का साधन मानकर उसकी गौणता का प्रतिपादन करना कला के प्रति गलत दृष्टिकोण का परिचायक है। अनुभूति और विचार से असम्बद्ध हो जाने पर बिम्ब के सौन्दर्य आदि गुणों की कल्पना भी अप्रासंगिक हो जाती है क्योंकि वस्तुतः इन गुणों का आधार भी तो अनुभूति ही है : माधुर्य का संबंध चित्त के द्रवीभाव से और औदात्त्य का मन की ऊर्जा के साथ है। किसी बिम्ब का मूल्य इसलिए नहीं है कि वह चित्त को द्रवीभूत या ऊर्जस्वित करता है अथवा उसके द्वारा प्रमाता में किसी भाव विशेष का उद्रेक होता हैं इस प्रकार का भावपरक या आत्मपरक दृष्टिकोण बिम्ब के वास्तविक मूल्य का आकलन नहीं कर सकता; बिम्ब का मूल्य तो उसकी अपनी सजीवता एवं प्रखरता के कारण ही होता है। यह तर्क और भी आगे बढ़ता है। बिम्ब के औचित्य का विचार भी अनावश्यक हैः बिम्ब की सार्थकता प्रसंग के अनुकूल होने में ही नहीं है, प्रसंग से कटकर भी उसकी सार्थकता हो सकती है– रत्न की मूल्यवत्ता सिद्ध करने के लिए मुद्रिका का परिवेश आवश्यक नहीं है।

काव्य–बिम्ब के मूल्य के विषय में दो परस्पर–विरोधी दृष्टिकोण है। इनके सत्यासत्य का निर्णय करने में दो विकल्प हमारे सामने आते हैंः

क्या कोई पद्यबंध जिसमें बिम्ब का स्वरूप धूमिल या गौण है केवल रमणीय अनुभूति के बल पर सत्काव्य की कोटि में आ सकता है?

क्या कोई पद्यबंध, केवल अपने बिम्ब–विधान के बल पर, अनुभूति से असम्पृक्त रहकर भी, सत्काव्य माना जा सकता है?

केवल सैद्धांतिक विवेचन न कर कुछ उदाहरणों के आधार पर इन प्रश्नों का समाधान करना अधिक उपयोगी होगा। (1) पहले कुछ ऐसे काव्यबंध लीजिए जिनका काव्यगुण, बिम्ब का विशेष आकर्षण न होने पर भी, अनुभूति के बल पर ही सिद्ध है:

तत्त्व प्रेम कर मो अरु तोरा, जानत प्रिया एक मन मोरा।
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं, जान प्रीतिरस इतनेहि माहीं।

(रा.च.मा.)

'रामचरित–मानस' में राम की यह उक्ति अपनी प्रेरक अनुभूति की निश्छलता के कारण ही रमणीय है– इसमें बिम्ब का कोई विशेष आकर्षण नहीं है। इसके विपरीत सीता के प्रसंग में यही कवि अधिक सावधान हो गया है:

अवगुन एक मोर मैं जाना, बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।
नाथ सो नैनन कर अपराधा, निसरत प्रान करहिं हठि बाधा।
बिरह अनल तनु तूल समीरा, स्वास जरै छन माहिं सरीरा।
स्रवहिं नयन जल निज हित लागी, ज़रहि न पाइ देह बिरहागी।।

(रा.च.मा.)

दूसरे काव्यबंध का बिम्ब निश्चय ही अधिक भास्वर है, परन्तु कवित्व–गुण पहले में ही अधिक है।

(2) अब कुछ ऐसे पद्यबंध लीजिए जिनमें बिम्ब तो एकदम स्पष्ट हैं, परन्तु रागतत्त्व क्षीण है,

(क) चींटी को देखा?
वह सरल, विरल, काली रेखा
तम के तागे–सी जो हिल–डुल
चलती लघुपद पल–पल मिल–जुल
वह है पिपीलिका–पाँति! (पंतः युगवाणी–चींटी)
(ख) चाँद पूरा साफ़
आर्ड–पेपर ज्यों कटा ही मोल
चिकनी चमक का दलदार
यह नहीं चेहरा तुम्हारा
गोल पूनम–सा! (गिरिजाकुमार माथुरः चुन्दरिमा)

या

(ग) आज दिखता है वही–सा चाँद शीतल
कौन जाने स्याह शीशा चाँद हो कल? (गि. माथुरः हेमन्ती पूनो)

इनमें (क) और (ख) के बिम्बों में रूप–तत्त्व और (ग) के बिम्ब में रूप के

साथ–साथ स्पर्श गुण भी अत्यन्त प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। परन्तु क्या अनुभूति की माधुरी के अभाव में इनमें वांछित कवित्व–गुण का समावेश हो सका है?

(3) अब तीसरे प्रकार के बिम्ब लीजिए जिनमें अनुभूति और बिम्ब का अभिन्न सम्बन्ध है:

(क) ज्योत्स्ना–निर्झर! ठहरती ही नहीं यह आँख! (कामायनी)

(ख) जैसे रात दर्पणों की गली हो
और तुम एक चाँद बनकर निकली हो। (कुँवर नारायण)

(ग) भरी गोल गोरी कलाइयों में पहनी थीं
नयन–डोर–सी वे महीन रेशमी चूड़ियाँ;
गौर वर्ण की पृष्ठभूमि पर
चमक रहीं जो
राग रंगीली किरणों–जैसी
इस फूली चंपई सांझ में
चन्दन बाँह उठाते ही में
खिसल चलीं वे तरल गूँज से
श्वेत कमल की धुली पंखुरी पर
ज्यों ओस–बिंदु की माला। (गिरिजाकुमार माथुर)

(घ) मन का मृग भाग रहा–
सुधि की अहेरिन यह
फूलों के बाण लिए फिरती है। (श्यामसुंदर घोष)

उद्धरण सं. (क) और (ख) में रूपानुभूति की झलमलाहट से बिम्ब अनायास ही झलमला उठे हैं और गिरिजाकुमार माथुर के काव्यबंध में शृंगार की सूक्ष्म–रोमानी अनुभूति सहज रूप से सूक्ष्म–कोमल रंगीन बिम्बों में खिल उठी है। अंतिम चित्र की बिम्ब–योजना में भावना और कल्पना का अपूर्व मणिकांचन योग है; यहाँ कवि ने मीठी यादों में भटकते हुए मन का बड़ा ही रमणीय चित्र अंकित किया है।

काव्य के इन तीन रूप–भेदों का विश्लेषण करने से सत्य के संधान में सहायता मिलेगी। वर्ग (1) के दोनों उद्धरणों के तुलनात्मक विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि अनुभूति के प्रभाव से, बिम्ब की गौणता होने पर भी, कवित्व का उत्कर्ष बाधित नहीं होता– वरन् बिम्ब की प्रमुखता ही कभी–कभी अनुभूति को आच्छादित कर कवित्व के उत्कर्ष में बाधक हो जाती है। वर्ग (2) के पद्यबंधों का विश्लेषण इस तथ्य को और भी पुष्ट कर देता है कि अनुभूति से असंपृक्त कल्पना–चित्रों में काव्य–तत्त्व क्षीण होता है। बिम्ब–विज्ञान की दृष्टि से अत्यंत सफल होने पर भी, अनुभूति के अभाव में अथवा उसके क्षीण पड़ जाने पर, बिम्ब स्वयं निष्प्राण बन जाता है– कम से कम, काव्य–बिम्ब के चेतन सौन्दर्य का उसमें अभाव हो जाता है। वास्तव में, वह काव्य–बिम्ब न रहकर

केवल बिम्ब रह जाता है– क्योकि, जैसा कि लीविस आदि ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है, काव्य–बिम्ब तो अनिवार्यतः भाव–प्रेरित ही होता है।

वर्ग (3) के काव्यबन्धों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें अनूभूति और बिम्ब–योजना का समान उत्कर्ष है और इन दोनों के संयोग से ही काव्य का उत्कर्ष है। इस सन्दर्भ में तीन विकल्प सामने आते हैः (i) यहाँ अनुभूति के उत्कर्ष के कारण बिम्ब का सौन्दर्य निखर आया है, (ii) बिम्ब के सौन्दर्य के कारण अनुभूति में सौन्दर्य निखर गया है– या फिर (iii) दोनों का सौन्दर्य अन्योन्याश्रित और अविभाज्य है। सिद्धांत रूप में– इनमें तीसरा विकल्प ही सत्य है अर्थात् अनुभूति और बिम्ब को एक–दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। फिर भी, व्यवहार में इनको पृथक् मान कर चलना अनिवार्य हो जाता हैः स्वयं शंकर के अद्वैत दर्शन अथवा बौद्धों के शून्यवाद में भी व्यवहार में अहम् और इदम् का भेद करना ही पड़ जाता हैं इस प्रकार पहले और दूसरे विकल्पों में ही सत्यासत्य का निर्णय करना होगा। सामान्य व्यवहार में हम अनुभूति के कतिपय पृथक् गुणों की चर्चा करते हैंः जैसे– सूक्ष्मता, तीव्रता, प्राबल्य, विस्तार या व्यापकता आदि। इनमें कल्पना का योग हो जाने से अनुभूति में समृद्धि का समावेश हो जाता है और उधर नैतिक आदर्शों से संयुक्त होकर अनुभूति शुद्ध एवं सात्विक बन जाती है। सर्जना के क्षणों में अनुभूति के ये नाना रूप कवि की कल्पना पर आरूढ़ होकर जब शब्द–अर्थ के माध्यम से व्यक्त होने का उपक्रम करते हैं तो इस सक्रियता के फलस्वरूप अनेक मानस–छवियाँ आकार धारण करने लगती हैं– आलोचना की शब्दावली में इन्हें ही काव्य–बिम्ब कहते हैं। इस प्रकार बिम्ब अमूर्त अनुभूति को शब्द–मूर्त करने के अत्यन्त प्रभावी माध्यम–उपकरण या दूसरे शब्दों में मूर्तन–प्रक्रिया के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग हैं, इसमें सन्देह नहीं।– परन्तु इनका स्वतन्त्र महत्त्व नहीं हैः इनमें जो प्रभावी शक्ति है वह अनुभूति की ही है; काव्य–बिम्ब में जो काव्य–तत्त्व है उसका आधार अनुभूति–भावानुभूति ही है। भाव से असम्पृक्त या अत्यंत परोक्ष रूप में सम्पृक्त इन्द्रियबोध या कल्पना (क्योंकि भाव से सर्वथा असंपृक्त इन्द्रियबोध या कल्पना हो ही नहीं सकती) बिम्ब की सृष्टि कर सकती है, काव्य–बिम्ब की नहीं। अतः अनुभूति के उत्कर्ष में बिम्ब का उत्कर्ष होता है, यही सत्य है। वर्ग (2) के उद्धरणों में 'आज दिखता है दही–सा चाँद शीतल' आदि में बिम्ब पूरा है, परंतु वह रूपानुभूति का उत्कर्ष तो नहीं करता। उसका सम्बन्ध इन्द्रियबोध और उस पर आश्रित नीरस कल्पना के साथ ही बैठता है, रूप की अनुभूति के साथ नहीं जुड़ पाता; इसलिए उसमें काव्य–तत्त्व क्षीण ही बना रहता है, ऐसी स्थिति में अनुभूति से स्वतन्त्र अथवा अनुभूति के शोभाधायक तत्त्व के रूप में बिम्ब की प्रकल्पना असिद्ध है।

वास्तव में, इस विवाद का सम्बन्ध मूलतः आत्परक जीवन–दर्शन और वस्तुपरक जीवन–दर्शन के विवाद से है। आत्मपरक जीवन–दर्शन आत्म–तत्त्व पर बल देता है

और पदार्थ की स्थिति आत्म–तत्त्व के संदर्भ में– उसी के निमित्त– स्वीकार करता है, जबकि वस्तुपरक दर्शन पदार्थ की मूल सत्ता को स्वीकार करता है। यहाँ विस्तार से इस शास्त्रार्थ की आवृत्ति करना अनावश्यक है। परन्तु जीवन के संदर्भ में इन दोनों में से पहला ही अधिक ग्राह्य है जो मानव–चेतना की सापेक्षता में प्रदार्थ की सत्ता को स्वीकार करता है– जबकि वस्तुपरक दर्शन पदार्थ की मूल सत्ता को स्वीकार करता है। जो यह मानकर चलता है कि मानव–चैतन्य के सम्पर्क से और उसी के विकास–विवर्धन के माध्यम रूप में भौतिक प्रकृति का मूल्य है। मूल सत्य जो भी हो, उसका निर्णय तो तत्त्वद्रष्टा करें, किंतु व्यवहार–सत्य यही है– और इस दृष्टि से हम यह निरापद भाव से स्वीकार कर सकते हैं कि– बिम्ब काव्य का अत्यन्त प्रभावी माध्यम है और इसलिए काव्य के सन्दर्भ में उसका मूल्य असंदिग्ध है; परन्तु वह स्वतन्त्र नहीं है– माध्यम ही है, प्राणतत्त्व नहीं हैः काव्य का सहकारी मूल्य अवश्य है, प्राथमिक मूल्य नहीं है।

❑❑❑

बात बोलेगी
हम नहीं।
भेद खोलेगी
बात ही।
सत्य का मुख
झूठ की आँखें
क्या देखें।
सत्य का रुख
समय का रुख है
अभय जनता को
सत्य ही सुख है,
सत्य ही सुख।

– **शमशेर**

धूप का एक टुकड़ा

निर्मल वर्मा

क्या मैं इस बेंच पर बैठ सकती हूँ? नहीं, आप उठिए नहीं– मेरे लिए यह कोना ही काफी है। आप शायद हैरान होंगे कि मैं दूसरी बेंच पर क्यों नहीं जाती? इतना बड़ा पार्क– चारों तरफ खाली बेंचें– मैं आपके पास ही क्यों धँसना चाहती हूँ? आप बुरा न मानें, तो एक बात कहूँ– जिस बेंच पर आप बैठे हैं, वह मेरी है। जी हाँ, मैं यहाँ रोज बैठती हूँ। नहीं, आप गलत न समझें। इस बेंच पर मेरा कोई नाम नहीं लिखा है। भला म्यूनिसिपैलिटी की बेंचों पर नाम कैसा? लोग आते हैं, घड़ी–दो घड़ी बैठते हैं और फिर चले जाते हैं। किसी को याद भी नहीं रहता कि फलाँ दिन फलाँ आदमी यहाँ बैठा था। उसके जाने के बाद बेंच पहले की तरह ही खाली हो जाती है। जब कुछ देर बाद कोई नया आगंतुक आकर उस पर बैठता है, तो उसे पता भी नहीं चलता कि उससे पहले वहाँ कोई स्कूल की बच्ची या अकेली बुढ़िया या नशे में धुत्त जिप्सी बैठा होगा। नहीं जी, नाम वहीं लिखे जाते हैं, जहाँ आदमी टिक कर रहे– तभी घरों के नाम होते हैं, या फिर कब्रों के– हालाँकि कभी–कभी मैं सोचती हूँ कि कब्रों पर नाम भी न रहें, तो भी खास अंतर नहीं पड़ता। कोई जीता–जागता आदमी जान–बूझकर दूसरे की कब्र में घुसना पसंद नहीं करेगा!

आप उधर देख रहे हैं– घोड़ा–गाड़ी की तरफ? नहीं, इसमें हैरानी की कोई बात नहीं। शादी–ब्याह के मौकों पर लोग अब भी घोड़ा–गाड़ी इस्तेमाल करते हैं... मैं तो हर रोज देखती हूँ। इसीलिए मैंने यह बेंच अपने लिए चुनी है। यहाँ बैठकर आँखें सीधी गिरजे पर जाती हैं– आपको अपनी गर्दन टेढ़ी नहीं करनी पड़ती। बहुत पुराना गिरजा है। इस गिरजे में शादी करवाना बहुत बड़ा गौरव माना जाता है। लोग आठ–दस महीने पहले से अपना नाम दर्ज करवा लेते हैं। वैसे सगाई और शादी के बीच इतना लंबा अंतराल ठीक नहीं। कभी–कभी बीच में मन–मुटाव हो जाता है, और ऐन विवाह के मुहूर्त पर वर–वधू में से कोई भी दिखाई नहीं देता। उन दिनों यह जगह सुनसान पड़ी रहती है। न कोई भीड़ न कोई घोड़ा–गाड़ी। भिखारी भी खाली हाथ लौट जाते हैं। ऐसे ही एक दिन मैंने सामनेवाली बेंच पर एक लड़की को देखा था। अकेली बैठी थी और सूनी आँखों से गिरजे को देख रही थी।

पार्क में यही एक मुश्किल है। इतने खुले में सब अपने–अपने में बंद बैठे रहते हैं। आप किसी के पास जाकर सांत्वना के दो शब्द भी नहीं कह सकते। आप दूसरों को देखते हैं, दूसरे आपको। शायद इससे भी कोई तसल्ली मिलती होगी। यही कारण है, अकेले कमरे में जब तकलीफ दुश्वार हो जाती है, तो अक्सर लोग बाहर चले आते हैं। सड़कों पर। पब्लिक पार्क में। किसी पब में। वहाँ आपको कोई तसल्ली न भी दे, तो भी आपका दुख एक जगह में मुड़कर दूसरी तरफ करवट ले लेता है। इससे तकलीफ का बोझ कम नही होता; लेकिन आप उसे कुली के सामान की तरह एक कंधे से उठाकर दूसरे कंधे पर रख देते हैं। यह क्या कम राहत है? मैं तो ऐसा ही करती हूँ– सुबह से ही अपने कमरे से बाहर निकल आती हूँ। नहीं, नहीं– आप गलत न समझें– मुझे कोई तकलीफ नहीं। मैं धूप की खातिर यहाँ आती हूँ– आपने देखा होगा, सारे पार्क में सिर्फ यही एक बेंच है, जो पेड़ के नीचे नहीं है। इस बेंच पर एक पत्ता भी नहीं झरता–फिर इसका एक बड़ा फायदा यह भी है कि यहाँ से मैं सीधे गिरजे की तरफ देख सकती हूँ– लेकिन यह शायद मैं आपसे पहले ही कह चुकी हूँ।

आप सचमुच सौभाग्यशाली हैं। पहले दिन यहाँ आए–और सामने घोड़ा–गाड़ी! आप देखते रहिए– कुछ ही देर में गिरजे के सामने छोटी–सी भीड़ जमा हो जाएगी। उनमें से ज्यादातर लोग ऐसे होते हैं। जो न वर को जानते हैं, न वधू को। लेकिन एक झलक पाने के लिए घंटों बाहर खड़े रहते हैं। आपके बारे में मुझे मालूम नहीं, लेकिन कुछ चीजों को देखने की उत्सुकता जीवन–भर खत्म नहीं होती। अब देखिए, आप इस पेरेंबुलेटर के आगे बैठे थे। पहली इच्छा यह हुई, झाँक कर भीतर देखूँ, जैसे आपका बच्चा औरों से अलग होगा। अलग होता नहीं। इस उम्र में सारे बच्चे एक जैसे ही होते हैं– मुँह में चूसनी दबाए लेटे रहते हैं। फिर भी जब मैं किसी पेरेंबुलेटर के सामने से गुजरती हूँ तो एक बार भीतर झाँकने की जबर्दस्त इच्छा होती है। मुझे यह सोचकर काफी हैरानी होती है कि जो चीजें हमेशा एक जैसी रहती हैं, उनसे ऊबने के बजाय आदमी सबसे ज्यादा उन्हीं को देखना चाहता है, जैसे प्रेम में लेटे बच्चे या नव–विवाहित जोड़ें की घोड़ा–गाड़ी या मुर्दो की अर्थी। आपने देखा होगा, ऐसी जीज़ों के इर्द–गिर्द हमेशा भीड़ जमा हो जाती है। अपना बस हो या न हो, पाँव खुद–ब–खुद उनके पास खिंचे चले आते हैं। मुझे कभी–कभी यह सोचकर बड़ा अचरज होता है कि जो चीजें हमें अपनी जिंदगी को पकड़ने में मदद देती हैं, वे चीजें हमारी पकड़ के बाहर हैं। हम न उनके बारे में कुछ सोच सकते हैं, न किसी दूसरे को बता सकते हैं। मैं आपसे पूछती हूँ– क्या आप अपनी जन्म की घड़ी के बारे में कुछ याद कर सकते हैं, या अपनी मौत के बारे में किसी को कुछ बता सकते हैं, या अपने विवाह के अनुभव को हू–ब–हू अपने भीतर दुहरा सकते हैं? आप हँस रहे हैं... नहीं, मेरा मतलब कुछ और था। कौन ऐसा आदमी है, जो अपने विवाह के अनुभव को याद नहीं कर सकता! मैंने सुना है,

कुछ ऐसे देश हैं, जहाँ जब तक लोग नशे में धुत्त नहीं हो जाते, तब तक विवाह करने का फैसला नहीं लेते.... और बाद में उन्हें उसके बारे में कुछ याद नहीं रहता। नहीं जी, मेरा मतलब ऐसे अनुभव से नहीं था। मेरा मतलब था, क्या आप उस क्षण को याद कर सकते हैं, जब आप एकाएक यह फैसला कर लेते हैं कि आप अलग न रहकर किसी दूसरे के साथ रहेंगे.... जिंदगी–भी? मेरा मतलब है, क्या आप सही–सही उस बिंदु पर अँगुली रख सकते हैं, जब आप अपने भीतर के अकेलेपन को थोड़ा–सा सरका कर किसी दूसरे को वहाँ आने देते हैं?.... जी हाँ.... उसी तरह जैसे कुछ देर पहले आपने थोड़ा–सा सरककर मुझे बेंच पर आने दिया था और अब मैं आपसे ऐसे बातें कर रही हूँ, मानो आपको बरसों से जानती हूँ।

लीजिए, अब दो–चार सिपाही भी गिरजे के सामने खड़े हो गए। अगर इसी तरह भीड़ जमा होती गई, तो आने–जाने का रास्ता भी रुक जाएगा। आज तो खैर धूप निकली है, लेकिन सर्दी के दिनों में भी लोग ठिठुरते हुए खड़े रहते हैं। मैं तो बरसों से यह देखती आ रही हूँ.... कभी–कभी तो यह भ्रम होता है कि पंद्रह साल पहले मेरे विवाह के मौके पर जो लोग जमा हुए थे, वही लोग आज भी हैं, वही घोड़ा–गाड़ी, वही इधर–उधर घूमते हुए सिपाही.... जैसे इस दौरान कुछ भी नहीं बदला है! जी हाँ– मेरा विवाह भी इसी गिरजे में हुआ था। लेकिन यह मुद्दत पहले की बात है। तब सड़क इतनी चौड़ी नहीं थी कि घोड़ा–गाड़ी, सीधे गिरजे के दरवाजे पर आकर ठहर सके। हमें उसे गली के पिछवाड़े रोक देना पड़ा था... और मैं अपने पिता के साथ पैदल चलकर यहाँ तक आई थी। सड़क के दोनों तरफ लोग खड़े थे और मेरा दिल धुक–धुक कर रहा था कि कहीं सबके समाने मेरा पाँव न फिसल पड़े। पता नहीं, वे लोग अब कहाँ होंगे, जो उस रोज भीड़ में खड़े मुझे देख रहे थे। आप क्या सोचते है।.... अगर उनमें से कोई आज मुझे देखे, तो क्या पहचान सकेगा कि बेंच पर बैठी यह अकेली औरत वही लड़की है, जो सफेद पोशाक में पंद्रह साल पहले गिरजे की तरफ जा रही थी? सच बताइए, क्या पहचान सकेगा ? आदमियों की तो बात मैं नहीं जानती, लेकिन मुझे लगता है कि वह घोड़ा मुझे जरूर पहचान लेगा, जो उस दिन हमें खींचकर लाया था... जी हाँ घोड़ों को देखकर मैं हमेशा हैरान रह जाती हूँ। कभी आपने उनकी आँखों में झाँककर देखा है? लगता है, जैसे वे किसी बहुत ही आत्मीय चीज से अलग हो गए हैं, लेकिन अभी तक अपने अलगाव के आदी नहीं हो सके हैं। इसीलिए वे आदमियों की दुनिया में सबसे अधिक उदास रहते हैं। किसी चीज का आदी न हो पाना, इससे बड़ा और कोई दुर्भाग्य नहीं। वे लोग जो आखिर तक आदी नहीं हो पाते या तो घोड़ों की तरह उदासीन हो जाते हैं, या मेरी तरह धूप के एक टुकड़े की खोज में बेंच से दूसरी एक बेंच का चक्कर लगाते रहते हैं। क्या कहा आपने? नहीं, आपने शायद मुझे गलत समझ लिया। मेरे बच्चा नहीं– यह मेरा सौभाग्य

है। बच्चा होता, तो शायद मैं कभी अलग नहीं हो पाती। आपने देखा होगा, आदमी और औरत में प्यार न भी रहे, तो भी बच्चे की खातिर एक–दूसरे के साथ जुड़े रहते हैं। मेरे साथ कभी ऐसी रुकावट नहीं रही। इस लिहाज से मैं बहुत सुखी हूँ– अगर सुख का मतलब है कि हम अपने अकेलेपन को खुद चुन सकें। लेकिन चुनना एक बात है, आदि हो सकना बिलकुल दूसरी बात। जब शाम को धूप मिटने लगती है, तो मैं अपने कमरे में चली जाती हूँ। लेकिन जाने से पहले मैं कुछ देर उस पब में जरूर बैठती हूँ, जहाँ वह मेरी प्रतीक्षा करता था। जानते हैं, उस पब का नाम ? बोनापार्ट– जी हाँ, कहते हैं, जब नेपोलियन पहली बार इस शहर में आया, तो उस पब में बैठा था– लेकिन उन दिनों मुझे इसका कुछ पता नहीं था। जब पहली बार उसने मुझसे कहा कि हम बोनापार्ट के सामने मिलेंगे, तो मैं सारी शाम शहर के दूसरे सिरे पर खड़ी रही, जहाँ नेपोलियन घोड़े पर बैठा है। आपने कभी अपनी पहली डेट इस तरह गुजारी है कि आप सारी शाम पब के सामने खड़े रहें और आपकी मंगेतर पब्लिक–स्टेचू के नीचे! बाद में जो उसका शौक था, वह मेरी आदत बन गई। हम दोनों हर शाम कभी उस जगह जाते, जहाँ मुझे मिलने से पहले वह बैठता था, या उस शहर के उन इलाकों में घूमने निकल जाते, जहाँ मैंने बचपन गुजारा था। यह आपको कुछ अजीब नहीं लगता कि जब हम किसी व्यक्ति को बहुत चाहने लगते हैं, तो न केवल वर्तमान में उसके साथ रहना चाहते हैं बल्कि उसके अतीत को भी निगलना चाहते हैं, जब वह हमारे साथ नहीं था। हम इतने लालची और ईर्ष्यालु हो जाते हैं कि हमें यह सोचना भी असहनीय लगता है कि कभी ऐसा समय रहा होगा, जब वह हमारे बगैर जीता था, प्यार करता था, सोता–जागता था। फिर अगर कुछ साल उसी एक आदमी के साथ गुजार दें, तो यह कहना भी असंभव हो जाता है कि कौन–सी आदत आपकी अपनी है, कौन–सी आपने दूसरे से चुराई है... जी हाँ, ताश के पत्तों की तरह वे इस तरह आपमें घुल–मिल जाती हैं कि आप किसी एक पत्ते को उठाकर नहीं कह सकते कि यह पत्ता मेरा है, और वह पत्ता उसका।

देखिए, कभी–कभी मैं सोचती हूँ कि मरने से पहले हममें से हर एक को यह छूट मिलनी चाहिए कि हम अपनी चीर–फाड़ खुद कर सकें। अपने अतीत की तहों को प्याज के छिलकों की तरह एक–एक करके उतारते जाएँ.... आपको हैरानी होगी कि सब लोग अपना–अपना हिस्सा लेने आ पहुँचेंगे, माँ–बाप, दोस्त, पति.... सारे छिलके दूसरों के, आखिर की सूखी डंठल आपके हाथ में रह जाएगी, जो किसी काम की नहीं, जिसे मृत्यु के बाद जला दिया जाता है, या मिट्टी के नीचे दबा दिया जाता है। देखिए, अक्सर कहा जाता है कि हर आदमी अकेला मरता है। मैं यह नहीं मानती। वह उन सब लोगों के साथ मरता है, जो उसके भीतर थे, जिनसे वह लड़ता था या प्रेम करता था। वह अपने भीतर पूरी एक दुनिया लेकर जाता है। इसीलिए हमें

दूसरों के मरने पर जो दुख होता है, वह थोड़ा–बहुत स्वार्थी किस्म का दुख है, क्योंकि हमें लगता है कि इसके साथ हमारा एक हिस्सा भी हमेशा के लिए खत्म हो गया है।

अरे देखिए– वह जाग गया। जरा पेरेंबुलेटर हिलाइए, धीरे–धीरे हिलाते जाइए। अपने आप चुप हो जाएगा।.... मुँह में चूसनी इस तरह दबाकर लेटा है, जैसे छोटा–मोटा सिगार हो! देखिए–कैसे ऊपर बादलों की तरफ टुकुर–टुकुर ताक रहा है! मैं जब छोटी थी, तब लकड़ी लेकर बादलों की तरफ इस तरह घुमाती थी, जैसे वे मेरे इशारों पर ही आकाश में चल रहे हों.... आप क्या सोचते हैं, बच्चे इस उम्र में जो कुछ देखते हैं या सुनते हैं, वह क्या बाद में उन्हें याद रहता है? रहता जरूर होगा. ... कोई आवाज, कोई झलक, या कोई आहट, जिसे बड़े होकर हम उम्र के जाले में खो देते हैं। लेकिन किसी अनजाने मौके पर, जरा–सा इशारा पाते ही हमें लगता है कि इस आवाज को कहीं हमने सुना है, यह घटना या ऐसी ही कोई घटना पहले कभी हुई है... और फिर उसके साथ–साथ बहुत–सी चीजें अपने आप खुलने लगती हैं, जो हमारे भीतर अरसे से जमा थीं, लेकिन रोजमर्रा की दौड़–धूप में जिनकी तरफ हमारा ध्यान जाता नहीं, लेकिन वे वहाँ हैं, घात जगाए कोने में खड़ी रहती हैं– मौके की तलाश में– और फिर किसी घड़ी सड़क पर चलते हुए या ट्राम की प्रतीक्षा करते हुए या रात को सोने और जागने के बीच वे अचानक आपको पकड़ लेती हैं और तब आप कितना ही हाथ–पाँव क्यों न मारे, कितना ही क्यों न छटपटाएँ, वे आपको छोड़ती नहीं। मेरे साथ एक रात ऐसे ही हुआ था...

हम दोनों सो रहे थे और तब एक अजीब–सा खटका सुनाई दिया– बिल्कुल वैसे ही, जैसे बचपन में मैं अपने अकेले कमरे में हड़बड़ा कर जाग उठती थी सहसा भ्रम होता था कि दूसरे कमरे में माँ और बाबू नहीं हैं– और मुझे लगता था कि अब मैं उन्हें कभी नहीं देख सकूँगी और तब मैं चीखने लगती थी। लेकिन उस रात मैं चीखी–चिल्लाई नहीं। मैं बिस्तर से उठकर देहरी तक आई, दरवाजा खोलकर बाहर झाँका, बाहर कोई न था। वापस लौटकर उसकी तरफ देखा। वह दीवार की तरफ मुँह मोड़कर सो रहा था, जैसे वह हर रात सोता था। उसे कुछ भी सुनाई नहीं दिया था। तब मुझे पता चला कि वह खटका कहीं बाहर नहीं, मेरे भीतर हुआ था। नहीं, मेरे भीतर भी नहीं, अंधेरे में एक चमगादड़ की तरह वह मुझे छूता हुआ निकल गया था– न बाहर, न भीतर, फिर भी चारों तरफ फड़फड़ाता हुआ। मैं पलंग पर आकर बैठ गई, जहाँ वह लेटा था और धीरे–धीरे उसकी देह को छूने लगी। उसकी देह के उन सब कोनों को छूने लगी, जो एक जमाने में मुझे तसल्ली देते थे। मुझे यह अजीब–सा लगा कि मैं उसे छू रही हूँ और मेरे हाथ खाली–के–खाली वापस लौट आते हैं। बरसों पहले की गूँज, जो उसके अंगों से निकलकर मेरी आत्मा में बस जाती थी, अब कहीं न थी। मैं उसी तरह उसकी देह को टोह रही थी, जैसे कुछ लोग पुराने खंडहरों पर

अपने नाम खोजते हैं, जो मुद्दत पहले उन्होंने दीवारों पर लिखे थे। लेकिन मेरा नाम वहाँ कहीं न था। कुछ और निशान थे, जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं देखा था; जिनका मुझसे दूर का भी वास्ता न था। मैं रात–भर उसके सिरहाने बैठी रही और मेरे हाथ मुर्दा होकर उसकी देह पर पड़े रहे.... मुझे यह भयानक–सा लगा कि हम दोनों के बीच जो खालीपन आ गया था, वह मैं किसी से नहीं कह सकती। जी हाँ– अपने वकील से भी नहीं, जिन्हें मैं अरसे से जानती थी।

वे समझे, मैं सठिया गई हूँ। कैसा खटका! क्या मेरा पति किसी दूसरी औरत के साथ जाता था ? क्या वह मेरे प्रति क्रूर था ? जी हाँ.... उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी और मैं थी कि एक ईडियट की तरह उनका मुँह ताकती रही और तब मुझे पहली बार पता चला कि अलग होने के लिए कोर्ट, कचहरी जाना जरूरी नहीं है। अक्सर लोग कहते हैं कि अपना दुख दूसरों के साथ बाँटकर हम हल्के हो जाते हैं। मैं कभी हल्की नहीं होती। नहीं जी लोग दुख नहीं बाँटते, सिर्फ फैसला करते हैं– कौन दोषी है और कौन निर्दोष..... मुश्किल यह है, जो एक व्यक्ति आपकी दुखती रग को सही–सही पहचान सकता है, उसी से हम अलग हो जाते हैं... इसीलिए मैं अपने मुहल्ले को छोड़कर शहर के इस इलाके में आ गई, यहाँ मुझे कोई नहीं जानता। यहाँ मुझे देखकर कोई यह नहीं कहता कि देखो, यह औरत अपने पति के साथ आठ वर्ष रही और फिर अलग हो गई। पहले जब कोई इस तरह की बात कहता था, तो मैं बीच सड़क पर खड़ी हो जाती थी। इच्छा होती थी, लोगों को पकड़कर शुरू से आखिर तक सब कुछ बताऊँ... कैसे हम पहली शाम अलग–अलग एक दूसरे की प्रतीक्षा करते रहे थे– वह पब के सामने, मैं मूर्ति के नीचे। कैसे उसने पहली बार मुझे पेड़ के तने से सटाकर चूमा था, कैसे मैंने पहली बार डरते–डरते उसके बालों को छुआ था। जी हाँ, मुझे यह लगता था कि जब तक मैं उन्हें यह सच नहीं बता दूँगी, तब तक उस रात के बारे में कुछ नहीं कह सकूँगी, जब पहली बार मेरे भीतर माँ–बाप सोते थे.... लेकिन वह कमरा खाली था। जी, मैंने कहीं पढ़ा था कि बड़े होने का मतलब है कि अगर आप आधी रात को जाग जाएँ और कितना ही क्यों न चीखें–चिल्लाएँ, दूसरे कमरे से कोई नहीं आएगा। वह हमेशा खाली रहेगा। देखिए, उस रात के बाद मैं कितनी बड़ी हो गई हूँ!

लेकिन एक बात मुझे अभी तक समझ में नहीं आती। भूचाल या बमबारी की खबरें अखबारों में छपती हैं। दूसरे दिन सबको पता चल जाता है कि जहाँ बच्चों का स्कूल था, वहाँ खंडहर हैं; जहाँ खंडहर थे, वहाँ उड़ती धूल। लेकिन जब लोगों के साथ ऐसा होता है, तो किसी को कोई खबर नहीं होती... उस रात के बाद दूसरे दिन मैं सारे शहर में अकेली घूमती रही और किसी ने मेरी तरफ देखा भी नहीं... जब मैं पहली बार इस पार्क में आई थी, इसी बेंच पर बैठी थी, जिस पर आप बैठे हैं। और

जी हाँ, उस दिन मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि मैं उसी गिरजे के सामने बैठी हूँ, जहाँ मेरा विवाह हुआ था.... तब सड़क इतनी चौड़ी नहीं थी कि हमारी घोड़ा–गाड़ी सीधे गिरजे के सामने आ सके। हम दोनों पैदल चलकर यहाँ आए थे...

आप सुन रहे हैं, ओर्गन पर संगीत? देखिए, उन्होंने दरवाजे खोल दिए हैं। संगीत की आवाज यहाँ तक आती है। इसे सुनते ही मुझे पता चला जाता है कि उन्होंने एक–दूसरे को चूमा है, अँगूठियों की अदला–बदली की है। बस, अब थोड़ी–सी देर और है– वे अब बाहर आनेवाले हैं। लोगों में अब इतना चैन कहाँ कि शांति से खड़े रहें, अगर आप जाकर देखना चाहें, तो निश्चिंत होकर चले जाएँ। मैं तो यहाँ बैठी ही हूँ। आपके बच्चे को देखती रहूँगी। क्या कहा आपने? जी हाँ, शाम होने तक यहीं रहती हूँ। फिर यहाँ सर्दी हो जाती है। दिन–भर मैं यह देखती रहती हूँ कि धूप का टुकड़ा किस बेंच पर है– उसी बेंच पर जाकर बैठ जाती हूँ। पार्क का कोई बेंच ऐसी नहीं, जहाँ मैं घड़ी–आधा घड़ी नहीं बैठती। लेकिन यह बेंच मुझे सबसे अच्छी लगती है। एक तो इस पर पत्ते नहीं झरते और दूसरे... अरे, आप जा रहे हैं?

❑❑❑

''मैं समझती हूँ कि साहित्य का मूल उद्देश्य इस समतामूलक दृष्टि को बल देना है। शाश्वत मूल्यों की पड़ताल करके उनके और रूढ़ परंपरा के बीच के अंतर को समझना और समझाना है। पाठक को यह प्रेरणा देना है कि वह अपने विवेक का इस्तेमाल करके अपने लिए नैतिक मूल्य चुने।

– मृदुला गर्ग
(साहित्य का मनोसंधान)

आलेख

वर्णोच्चारण प्रक्रिया का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

संजय कुमार तिवारी*

भारतीय ज्ञानपरंपरा में वेदों को निखिल ज्ञान विज्ञान का उत्स स्वीकार किया गया है। वेद समस्त जागतिक प्रपंचों के व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक पक्षों का आधारतत्त्व है। भारतीय मनीषा ने वेद को सृष्टि–क्रम की आदि वाणी के रूप मे स्वीकारा है।

यह वेद निरुपाधिक ब्रह्म रूप ही है। यह जागतिक व्यवहार की सुचारुता हेतु वैखर्यादि उपाधि को धारण कर निखिल ब्रह्मांड का संवहन करता है। अर्थात् संपूर्ण जगत् उस शब्दब्रह्म का ही आर्थिक विवर्त है। तात्विक रूप से तो वह एक मात्र सत्ता है जो अनादि, अनंत है। यह शब्दब्रह्म वेदवाणी के रूप में मूर्त स्वरूप लेकर हमारे समक्ष प्रस्तुत है। इस शाब्दिक ब्रह्मराशि का प्रवचन परमात्मा ने सर्वप्रथम ब्रह्मा को या ये कहें कि ब्रह्मात्मरूप वाणी ही परा, पश्यन्ति, मध्यता और वैखरी रूप सुदीर्घ परंपरा का अनुगमन करते हुए ये हम सबका विषय बनती है। यह क्रम महाप्रलय के अनंतर संपादित होता है। पूरे परिदृश्यमान चराचर जगत का धारण एवं पोषण भी शाश्वत शब्दमूर्ति वेद के द्वारा ही होता है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, आज के वैज्ञानिक युग में भी अखिल भू भाग में प्रचीनतम ग्रंथ के रूप में वेदों को ही स्वीकृति प्राप्त है। इसके प्राचीनतमत्व के कारण ही इसे विश्व की समस्त संस्कृतियों का उद्गम स्थल माना जाता है। वस्तुतः वेद एक भाषिक निधि है। अतः मानवीय इतिहास एवं संस्कृति तथा भाषावैज्ञानिक विश्लेषण हेतु वेदाध्ययन नितांत संदर्भित है।

वेदार्थ की रक्षा के लिए कालांतर में शिक्षादि षड् वेदांगो का प्रणयन हुआ। किंतु वेदांगो की यह रचना अचानक नहीं हुई बल्कि समाज की स्खलित होती बौद्धिक संपदा के आधार पर एक विशिष्ट कालक्रम से हुई। सर्वप्रथम वेद का अर्थसाक्षात्कार निजप्रज्ञा से मूलमंत्र के द्वारा ही ऋषि करता था। किंतु कालांतर मे बढ़ते बौद्धिक ह्रास के कारण असाक्षत्कृतधर्मी जनों हेतु श्रीतपंरपरा का आश्रयण किया गया। इस

* शोध छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

स्थिति में उपदेश एवं अनुच्चारण के द्वारा मंत्रार्थ ज्ञान होता था। इस प्रकार वेदार्थज्ञान प्राप्ति का यह द्वितीय स्तर है। कालांतर में आत्मनिष्ठता की अवनति एवं बाह्यविषयता की उन्नति के कारण समाज ज्ञानसंपदा से और भी च्युत होता गया और बोध का स्तर और भी निम्न हो गया। अतः ऋषियों ने तात्कालिक समाज के बोधस्तर एवं वेदार्थ के रक्षार्थ तृतीय स्तर को विकसित किया। इस स्तर में व्यक्ति उपदेश से भी विमुख हो गया। अतः इस काल में वेदों के संरक्षणार्थ ऋषियों द्वारा युगानुकूल वेदांगो का प्रणयन किया गया।

छंदः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्यातिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। (पाणिनीयशिक्षा, 41–42)

उपर्युक्त षडंगों में प्रथमतः चार वेदांगो (शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छंद) का साक्षात संबंध भाषा से है। उनमें भी शिक्षा का स्थान प्रथम अर्थात् प्रधान है। इसी बात को भगवान भाष्यकार ने 'तैत्तरीयोपनिषद्' के द्वितीयानुवाक के प्रारंभ भाष्य में ज्ञापित किया है कि यह उपनिषद् अर्थप्रधान है अतः उनके तात्पर्यार्थ बोध में व्यक्ति की यत्नप्रशांति न हो तदर्थ शिक्षा का प्रथम प्रणयन किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में शिक्षा तथा शिक्षा पद से संकेतित षड्विध घटकों का विशद्विमर्श एवं व्याकरण शास्त्र के साथ अंतःसंबंध की मीमांसा की जाएगी। वस्तुतः दोनों भाषा के ही घटक के रूप में स्वीकृत हैं तथा प्रतिपाद्यगत साम्य भी उतना ही अधिक है। वस्तुतः दोनों परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। ऐसा कहा जा सकता है। इस तथ्य की उद्भावना दोनों के लक्षणों में निहित है। जैसे– शिक्षा में वर्ण, स्वर, मात्रा, प्राण आदि का सांगोपांग विवेचन है। वैसे ही व्याकरण में उन्हीं प्रयुक्त शब्दों के साधुत्व एवं असाधुत्व का निश्चय किया गया है। *प्रयुक्तानामन्वाख्यनमिदं व्याकरणम्, "साधुत्वानामन्वाख्यानमिदं व्याकरणम्"*। आदि निर्वचनों से दोनों के साम्य वैषम्य स्पष्ट होते हैं।

शिक्षा का सम्प्रत्य

शिक्षा का तात्पर्य शिक्षा पद के अशेषार्थ विमर्श में निहित है। अतः सर्वप्रथम शिक्षा पद का अभिधेयार्थ निरूपण प्राथम्येन करणीय है। किसी भी पद के अर्थ की मीमांसा दो प्रकार से की जाती है। एक प्रकृति प्रत्ययजन्य अभिधेयार्थ से एवं दूसरा संकेतितार्थ अर्थात् पारिभाषिकार्थ से इसलिए प्रकृति शब्द का भी द्विविध अर्थ संदर्भित है जो कि निम्न प्रकार है।

वस्तुतः शिक्षा *"शिक्ष विद्योपादाने"* धातु से *"गुरोश्च हलः"* सूत्र से घञ् प्रत्यय एवं तन्निमित्तक ङीप् प्रत्यय होकर निष्पादित होता है। जिसका वाच्यार्थ शिक्षण या विद्याभ्यास है। इसी प्रकार भाषावैज्ञानिकों ने *"शक्लृ शक्तौ"* धातु से निष्पन्न कर

ध्वनिविज्ञान के वैशिष्ट्य बोध करने का सामर्थ्य जिसके द्वारा प्राप्त होता है उसे शिक्षा कहते हैं। ऐसा व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ स्वीकार किया गया है। किंतु वेदांगो में परिगणित शिक्षा का अर्थ पारिभाषिक है, जिसे आचार्य सायण ने अपने भाष्य में उद्भाषित किया है, कि जहाँ स्वर, वर्ण, मात्रा आदि के प्रकारों का उपदेश किया जाता है उसे शिक्षा कहते है। काव्यमीमांसाकार ने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि वर्णों की स्थानकरणप्रयत्नादि के द्वारा निष्पत्ति निर्णायिका को शिक्षा कहते हैं। वर्तमान में लगभग 30 से 33 शिक्षाग्रंथ उपलब्ध हैं जो कि इस प्रकार है –

1. याज्ञवल्क्य शिक्षा 2. वाशिष्ठी शिक्षा 3. माण्डवी शिक्षा 4. अमोघनुंदनी शिक्षा 5. केशवी शिक्षा 6. स्वराङ्कुशशिक्षा 7. मल्लशर्मकृता शिक्षा 8. माध्यन्दिनीय शिक्षा 9. वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा 10. षट्लकी शिक्षा 11. अवसाननिर्णय शिक्षा 12. क्रमसंधान शिक्षा 13. गलदृक् शिक्षा 14. मनःस्वार शिक्षा 15. पाणिनीय शिक्षा 16. लोमशी शिक्षा 17. गौतमी शिक्षा 18. मांडुकी शिक्षा 19. शिक्षा प्रकाश 20 कात्यायनी शिक्षा 21. पाराशरी शिक्षा 22. प्रातिशाख्यप्रदीप शिक्षा 23. नारदी शिक्षा 24. क्रमकारिका शिक्षा 25. यजुर्विधान शिक्षा 26. षोडशश्लोकी शिक्षा 27. स्वरभक्तिलक्षण शिक्षा 28. स्वराष्टक शिक्षा 29. विसर्गाङ्कुलिप्रदर्शनप्रकार शिक्षा 30. अथर्वपरिशिष्टम् 31. आपिशली शिक्षा 32. चांद्रशिक्षा 33. गकविक् शिक्षा आदि परिगणित शिक्षाएँ समुपलब्ध हैं जिनका उल्लेख "शिक्षासंग्रह" आदि ग्रंथों में प्राप्त है। इन शिक्षा ग्रंथों में वर्णों के स्वरमात्राप्राणादि का साङ्गोपाङ्ग निर्वचन किया गया है जो कि प्रस्तुत शोधप्रबंध का व्याख्येय है। ये सभी शिक्षाएँ वैदिकवाङ्मयोपकारिका हैं इसलिए शिक्षासंग्रह ग्रंथ में उपनिबद्ध किया गया है तथा षड्वेदाङ्गों में अङ्गत्त्वेन परिगणित किया गया है।

प्रकृतस्थल में शिक्षा पदबोध्य वर्णादि षट् तत्वों का विशद् विमर्श किया जाएगा। जिसका परिगणन 'तैत्तिरीयोपनिषद्' के शिक्षावल्ली में किया गया है।

● **वर्ण**:–

वर्ण विषयक संख्या एवं स्थानादि विमर्श से पूर्व वर्णों की उत्पत्ति प्रक्रिया का निरूपण भी शिक्षा में उद्भाषित किया गया है जो अत्यंत वैज्ञानिक एवं तार्किक है। संस्कृत वाङ्मय में मूल रूप से चार प्रकार की वाणियों का उल्लेख प्राप्त होता है जो कि शरीर के तत्–तत् स्थानों में स्थित होती हैं। जैसे– परा नाम की वाणी मूल चक्र या मूलाधार में स्थित होती है। पश्यन्ति वाणी का स्थान नाभि देश है। हृदय देश में मध्यमा नाम की वाणी का निवास होता है तथा सर्व श्राव्य कंठताल्वाभिघात से शब्द रूप में समुत्पन्न वाणी वैखरी रूप में जानी जाती है। उपर्युक्तों में तुरीय वाणी का प्रयोग सामान्य जनमानस के द्वारा किया जाता है।

सर्वजनसुलभ वैखरी वाक् के प्रकाशन से पूर्व जो एक आंतरिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वैखरी प्रकाशित होती है, वह निम्न प्रकार है। सर्वप्रथम जब शब्दोच्चारण की भावना होती है तब आत्मा बुद्धि के साथ वाच्यअर्थों को समूह रूप से एकत्र करता

है। अर्थात् बुद्धिस्थ वर्णों को शब्द के द्वारा व्यक्त करने की इच्छा से मनोवृत्ति को नियुक्त करता है तथा वह मन जठराग्नि को उद्वेलित करता है एवं जठराग्नि प्राणवायु को प्रेरित करता है। प्रेरित प्राण वायु प्रातःकालीन यज्ञ से संबद्ध गायत्री छंद का आश्रयण लेकर मंद्रनाद से युक्त स्वर को जन्म देता है। इसी प्रकार यह वायु अलग–अलग शरीरस्थ भागों का अनुसरण कर अलग–अलग छंदों का अनुसरण करते हुए स्वरों को उत्पन्न करता है।

संस्कृतवाङ्मय में प्रायः 63 या 64 वर्णसमवायों का उल्लेख प्राप्त होता है तथा इन सभी वर्णों का निरूपण शिक्षा में किया गया है। महर्षि पाणिनि ने अपनी पाणिनीय शिक्षा में 64 वर्णों तथा उनके उच्चारण स्थान आदि का निरूपण किया है। वर्णों की गणना क्रम में 21 स्वरवर्ण (अ इ उ ऋ के ह्रस्व दीर्घ प्लुत भेद से 12 भेद, ए, ओ ऐ, औ के दीर्घ प्लुत भेद से 8 भेद, लृकार का 1 भेद ह्रस्व), 25 स्पर्शवर्ण (क से म पर्यंत कादि चादि टादि तादि पादि पाँच पंचको को मिलाकर 25 वर्ण होते हैं।), 8 यादि (यण संज्ञक य व र ल तथा ऊष्म संज्ञक श ष स ह), 4 यम वर्ण (वर्गों में आदि वर्ग के चार वर्ण क ख ग घ उत्तर में पंचम वर्ण परक सदृश वर्ण अर्थात् क ख ग घ हों तो पूर्व की यम संज्ञा होती है। जैसे– पलिक्न्कीः में ककारसरूप यम है। चख्न्खतुः में खकारसरूप यम है। जग्ग्मतुः में गकारसरूप यम है। जघग्घतुः में घकारसरूप यम है।) 2. अनुस्वार विसर्ग (अं. अः), 2. जिह्वामूलीय उपध्मानीय (ककार खकार के पूर्व अर्धवसर्ग तथा पकार एवं फकार से पूर्व अर्धविसर्ग को जिह्वामूलीय एवं उपध्मानीय कहते हैं।) 1. लृकार तथा 1 दुस्पृष्ट वर्ण। इस प्रकार 64 प्रकार के वर्ण सस्कृत वाङ्गय में स्वीकृत हैं। इन वर्णों की उच्चारणविषयक सभी विधाएँ शिक्षा ग्रंथों में प्राप्त हैं। अर्थात् किन वर्णों को कैसे एवं कहाँ से उच्चरित करना है इनका विधान किया गया है। जैसे– पाणिनीय शिक्षा में वर्णों के उच्चारण के लिए कहा गया है कि जिस प्रकार व्याघ्री अपने पुत्रों को अपने दाँतों से उठाकर स्थानांतरित करती है। किंतु उसके दाँतों से उन बच्चों को कोई आघात नहीं होता बल्कि वह व्यवस्थित ढंग से स्थान पर पहुँच जाता है। ठीक उसी प्रकार व्यक्ति को अपने आस्यस्थ कल्पित कंठदंततालवादि स्थानों से वर्णों का समुचित उच्चारण करना चाहिए। साथ ही बिना पीड़ित हुए शब्दों का भी स्पष्ट उच्चारण करना चाहिए। वस्तुतः यह उच्चारण विधान लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त वर्णों के लिए है। किंतु वैदिकवाङ्मय में वर्णों की उच्चारण व्यवस्था कुछ पृथक है। वेद मंत्रों के उच्चारण की मर्यादा विशिष्ट होने से उच्चारण की विधा भी विशिष्ट है। इस संदर्भ में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है कि विज्ञ वेदपाठी को वेदोच्चारण में कछुए के अंगों के समान अपनी दृष्टि चेष्टा तथा मन को एकाग्र कर प्रशांतचित्त और निर्भीक होकर वेद की ऋचाओं का उच्चारण चेष्टा करना चाहिए।

वर्णोच्चारण व्यवस्था के अध्ययन क्रम में उच्चारण व्यवस्था सामान्य से कुछ

भिन्न है जिसे अध्ययन के अलग–अलग चरणों के आधार पर व्यवस्थित किया गया है। जैसे अभ्यास काल में छात्र द्रुत गति का आश्रयण करे। किंतु प्रयोगावस्था में उन वर्णों या पदों का उच्चारण मध्यमा वृत्ति या गति से करना चाहिए। तथैव जब गुरु या शिक्षक अपने छात्र को उपदेश या अध्यापन कराए तब वह विलंबित वृत्ति का प्रयोग करे। मध्यापन कराए तब वह इस प्रकार वर्णोत्पत्ति, वर्ण प्रकार निरूपण के अनंतर वणोच्चारण का निरूपण इस प्रकार है। अकार, हकार तथा विसर्ग का कंठ स्थान होता है। इकार, चवर्ग (च छ ज झ ञ) यकार तथा शकार का उच्चारण तालु से होता है। ऋकार टवर्ग (ट ठ ड ढ ण) रेफ षकार का उच्चारण स्थान मूर्द्धा है। लृ तवर्ग (त थ द ध न) लकार, सकार दंत भाग से उच्चरित होते है। उकार पवर्ग (प फ ब भ म) उपध्मानीय (पकार, फकार से पूर्व अर्ध विसर्ग) का उच्चारण स्थल ओष्ठ है। एकार (संयुक्त स्वर अ+इ) ऐकार (संयुक्त स्वर अ+ए) इन स्वरद्वय का स्थान कंठ तालु है। तथा ओकार (अ+उ) औकर (अ+ओ) का स्थान कंठ ओष्ठ होता है। वकार का दंत ओष्ठ होता है। जिह्वामूलीय वर्णों का स्थान भी जिह्वामूलीय ही होता है एवं अनुस्वार का स्थान नासिका है।

- **स्वर**

शिक्षाध्याय का यह द्वितीय विवेचनीय विषय स्वर है। स्वर शब्द का अर्थ है *"स्वयं स्वच्छन्देन राजन्ते इति स्वराः"* अर्थात् जो बिना किसी साहाय्य के स्वच्छंद रूप से अपनी सत्ता का निर्धारक हो उसे स्वर कहते है। आशय यह है कि स्वर का उच्चारण बिना किसी वर्णांतर की सहायता से होता है। अतः इसे स्वर कहते हैं। ये स्वर 21 प्रकार के होते हैं जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। किंतु मूल रूप से स्वर 9 प्रकार के होते हैं। जिनको अच् पद से अभिहित किया गया है। *अच स्वराः* ये स्वर वर्णांतर से अनपेक्षित होते हुए हल वर्णों के लिए अत्यंत सहायक होते हैं बल्कि अचों के बिना हल वर्ण में उच्चरित होने का सामर्थ्य भी नहीं होता है।

स्वर से प्रातिशाख्य में तीन स्वरों की प्रसिद्धि है जो कि अचों के संदर्भ में निरूपित हैं जिन्हें, उदात्त अनुदात्त तथा स्वरित पद से अभिहित किया गया है। इनका विधान महर्षि पाणिनि ने अपने ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' में एवं प्रातिशाख्य ग्रंथों में तथा शिक्षा में निरूपित किया गया है। इनमें पाणिनी अष्टाध्यायीस्थ निरूपण निम्न प्रकार है– मुख में कल्पित करते हुए इसी प्रकार तालवादि स्थानों के अधो भाग से उत्पन्न अच अनुदात्त कहलाता है। तथैव जिन वर्णों में उदातत्त्व अनुदात्त्व दोनों ही धर्मो का समावेश हो उन वर्णा की स्वरित संज्ञा होती है। इसी क्रम में 'नाट्यशास्त्र' में चार प्रकार के स्वरों का उल्लेख प्राप्त होता है। वे उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, कंपित हैं तथा उनके चार प्रकार के धर्म भी निर्धारित हैं– उच्चता, नीचता, मध्यमता, एवं उच्चनीचोभयडोलालम्बन। उपर्युक्त स्वरत्रय के साक्षात् उच्चारण की परंपरा प्रारंभ से

ही रही है। जिसके उदाहरणस्वरूप *"इंद्रशत्रुर्विवर्धस्व"* आदि स्थल शास्त्रों में सर्वविदित है। प्रस्तुत दृष्टांत के माध्यम से स्वरों की महत्ता भी प्रतिपादित की गई है। इस संदर्भ में महाभाष्यकार भगवान पतंजलि ने कहा है कि स्वर से हीन वर्ण से हीन मंत्र मिथ्या प्रयुक्त हो जाता है अर्थात् जिस उद्देश्य विशेष के लिए प्रयुक्त किया गया मंत्र है उस उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती है। बल्कि वह आचार्य प्रयुक्त मंत्र यजमान के लिए वाग्वज्र के समान हानि पहुँचाना है। जैसे वृत्तासुर के संदर्भ में एक आचार्यों द्वारा एक स्वर के व्यत्यय कर देने से इंद्र की विजय हो जाती है। यद्यपि कालांतर में या वर्तमान में स्वरोच्चारण की स्पष्टता स्वरांकन से होती है। जिसे हस्त संचलन एवं अंगुलि प्रदर्शन के द्वारा किया जाता है। जिसमें अनुदात्त का निदर्शन हाथ को हृदय के समक्ष ले जाकर किया जाता है। यहाँ मूर्धा प्रदेश में हस्त सामीप्य उदात्त स्वर को प्रदर्शित करता है तथा कर्णमूल प्रदेश में हाथ का गमन करना स्वरित स्वर को प्रदर्शित करता है एवं मुख के समीप हस्त का सामीप्य प्रचय स्वर का निरूपण करता है। तथापि स्वरोच्चारण विधा तो शिक्षा एवं प्रातिशाख्यों में निरूपित है ही जो निम्न प्रकार है। जब संपूर्ण अंगों के अनुसार अत्यंत तीव्र होता है तब गात्र निग्रह होता है। गलविवर मे अणुता एवं वायु की तीव्र गति होने से स्वर में रूक्षता आती है तब उदात्त स्वर उच्चरित होता है। इसी प्रकार जब अंगों से मंद प्रयत्न होता है तब गात्र का स्रंसन होता है तब गलविवर महत्त्व भाव आता है तथा वायु में मंद गति होने से स्वर से स्निग्धता आती है तब अनुदात्त स्वर उच्चरित होता है। एवमेव स्वरित में उदात्त स्वर एवं अनुदात्त स्वर का एकत्र सन्निपात होने पर स्वरित स्वर उच्चरित होता है। गांधर्व विद्या में प्रयुक्त सप्त स्वरों का भी अंतर्भाव इन्हीं तीन स्वरों में किया जाता है जो कि इस प्रकार है। निषाद, गंधार, षड्ज, मध्यम, ऋषभ, तथा धैवत; ये सप्त स्वर गंधर्व शास्त्र या संगीत शास्त्र में प्रयुक्त होते हैं। इन सातों ही स्वरों का क्रमशः उदात्त में निषाद एवं गंधार का समावेश होता है। अनुदात्त स्वर में ऋषभ एवं धैवत स्वरों का समावेश किया जाता है। तथा षड्ज एवं मध्यम का सन्निवेश स्वरित स्वर में किया जाता है।

- **मात्रा**

मात्रा वस्तुतः स्वरों का ही धर्म है। स्वरों के ही जैसे मात्राएँ भी तीन ही हैं– एकमात्रा, द्विमात्रा, एवं त्रिमात्रा। इन मात्राओं का अभिधान क्रमशः ह्रस्व दीर्घ एवं प्लुत शब्द से किया जाता है। इनका विधान अचों के संदर्भ में किया जाता है। व्याकरण शास्त्र में महर्षि पाणिनि ने प्रातःकालीन कुकुटरुत से अचों के उच्चारण काल की तुलना किया है। जैसे प्रातःकाल में मुर्गा प्रथम बार एकमात्रिक उकार का उच्चारण करता है। दूसरी बार द्विमात्रिक तथा तीसरी बार त्रिमात्रिक का उच्चारण करता है। इसी प्रकार एक मात्रिक उकार के उच्चारण काल के समान उच्चारण काल है जिस अच का उसकी दीर्घ संज्ञा होती है। तथैव त्रिमात्रिक उकार के उच्चारण काल के समान

उच्चारण काल है जिस अच का उसकी प्लुत संज्ञा होती है। इस प्रकार मात्राओं का विधान अचों के संदर्भ में किया जाता है। इन मात्राओं के उच्चारण काल के लिए मानवेतर प्राणियों को उदाहरणार्थ स्वीकार किया गया है। नीलकंठ पक्षी एक मात्रा का उच्चारण करता है एवं कौआ दो मात्रिक काल का उच्चारण करता है। अर्थात् काक केवल दीर्घ स्वर का ही उच्चारण कर सकता है। मयूर का उच्चारण त्रिमात्रिक अर्थात् प्लुत स्वर वहीं नेवला आधी मात्रा अर्थात् केवल व्यंजन के उच्चारण काल के समान उच्चारण करता है। आशय यह है कि उपर्युक्त जीवों का रुत या ध्वनि तीन मात्राओं सहित केवल व्यंजन के उच्चारण के समान होती है।

• **बल**

प्रकृत स्थल में बल से तात्पर्य मुखस्थ परिकल्पित कंडलाल्वादिस्थानों से या आंतरिक श्वसनादि तंत्रियों में हुए अभिघात या प्रायास विशेष से है। जो कि दो प्रकार का है जैसा कि वर्णोत्पत्ति प्रक्रिया में कुछ आंतरिक व्याज तथा कुछ बाह्य व्याज होने के बाद ही तुरीय वाणी का प्रकटन होता है। अतः स्पष्ट है कि जो वर्ण के प्रति आयास है वह आंतरिक एवं बाह्य दो प्रकार के हैं। अल्पप्राण जिन वर्णों को उच्चरित करने में आंतरिक बाह्य आयास कम लगे अर्थात् कम प्रयासों से जिन वर्णों का उच्चारण होता है उन वर्णों को अल्पप्राणीय वर्ण कहा जाता है। इसी प्रकार जिन वर्णों के उच्चारण में आंतरिक एवं बाह्य प्रयास लगे उन्हें महाप्राणीय वर्ण कहा जाता है। ये वर्ण निम्न प्रकार के हैं– प्रत्येक वर्गों के प्रथम तृतीय पंचम वर्ण एवं यण वर्णों का अल्पप्राण होता है तथा वर्गों के द्वितीय चतुर्थ एवं शाल प्रत्यहार के वर्ण महाप्रणीय वर्ण होते हैं। इस प्रकार वर्णों के ही उच्चारणगत आंतरिक एवं बाह्य प्रयास को बल या प्राण कहा जाता है।

• **साम**

यह भी वर्णोच्चारण के संदर्भ में ही है। तात्पर्य यह है कि व वर्णों के निर्दिष्ट एवं माधुर्यादि गुणों से सवलित उच्चारण साम कहलाता है। इस संदर्भ में महर्षि पाणिनि ने उच्चारण के गुण दोषों का परिगणन किया है। जो कि छह प्रकार के हैं। गुणों में माधुर्य, अक्षर की स्पष्टता, पदच्चेद, सुस्वरता, धैर्य अर्थात् समुचित गति, लय इन्हें पाठक के गुणों में परिगणित किया जाता है। इसी प्रकार छह प्रकार के दोष भी कहे गए हैं। जैसे गा कर के पढ़ना, जल्दी–जल्दी पढ़ना, सिर को कंपित कर के पढ़ना, जैसे भी शुद्ध या अशुद्ध लिखा हो, उसको वैसे ही बिना विचार किए पढ़ देना, गलत उच्चारण करना, अल्पकंठ अत्यंत धीरे बोलना; इन्हें पाठक दोषों में परिगणन किया गया है। इन उपर्युक्त षड्दोषों से रहित एवं षड्गुणों से युक्त वर्णों का उच्चारण करना साम कहा जाता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस विधा का उपयोग नितांत संदर्भित है। सामान्यजन मानस में शब्दोच्चारण को लेकर जो स्खलन आज के समय में आया

है उसका कारण है कि शब्द के उच्चारण में उपर्युक्त गुणों का अभाव का होना। अतः वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में उपरोक्त मानकों का सन्निवेश अवश्य होना चाहिए।

- **संतान**

संतान का तात्पर्य वर्णों के अतिशय सन्निधि से है। इसी सन्निधि को व्याकरण शास्त्र में संहिता शब्द से अभिहित किया गया है। आशय यह है कि दो वर्णों के अत्यंत सन्निकटता को संहिता या संतान कहा जाता है। दो वर्णों के मध्य ऐसी स्थिति निर्मित होने पर ही व्याकरणशास्त्र में अनेक प्रकार के सूत्रों के माध्यम से संधि का विधान किया जाता है। जैसे– यण संधि, दीर्घ संधि, गुण संधि। ये संधियाँ अच संधि के अंतर्गत आती हैं। श्चुत्व आदि संधि हल संधि या विसर्ग संधि हैं। इस प्रकार शिक्षा एवं व्याकरण के मध्य अंतःसंबंधों से शिक्षा के सभी बिंदुओं को समझा जा सकता है।

सहायक ग्रंथ सूची

1. अवस्थी बच्चुलाल ज्ञानोपाह्व, पाणिनीय शिक्षा, श्रीनिवासरथ प्रकाशन उज्जैन, 1994
2. गोविंदाचार्यः, वैयाकरणसिद्धांतकौमुदी, (चतुर्थण्ड) चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वारणसी 2022
3. शास्त्री भीमसेन, लघुसिद्धांतकौमुदी, भैमी प्रकाशन, 1950
4. प्रो. राम प्रसाद त्रिपाठी, शिक्षा संग्रह, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1989
5. डॉ. सुनील कुमार पाठक, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी
6. वीरेन्द्र कुमार वर्मा, ऋग्वेद–प्रातिशाख्यम्, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
7. युधिष्ठिर मीमांसक, शिक्षा सूत्राणि, भारतीय प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान अलवर, 2024
8. http://www.sanskritebook.org
9. http//www.slbsrsv.ac.in/library.asp
10. http://www.sanskrit.ac.in
11. डॉ. हरेराम मिश्र, याज्ञवल्क्य शिक्षा, हिंदी अनुवाद, विद्यानिधि प्रकाशन 2015
12. महर्षि पाणिनि, वेदांगप्रकाशः, आर्य साहित्य मंडल लिमिटेड प्रकाशन, अजमेर 2018
13. मीमांसक युधिष्ठिर, वैदिकस्वरमीमांसा, रामलाल कपूर ट्रष्ट, सोनीपत, हरियाणा
14. वासुदेव काशीनाथ अभयंकर, महाभाष्य पतंजलि, डेस्कन एजुकेशन सोसायटी, 1963
15. जिज्ञासु पं. ब्रह्मदत्तः, पाणिनि अष्टाध्यायी, रामलाल कपूर ट्रष्ट, रेवली

16. श्री रामगोविंद, वाक्यपदीयम्, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 2018
17. श्री गोविंदाचार्य, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, चौखम्भा, सुरभारती प्रकाशन वाराणसी 2022
18. शर्मा रमण कुमार, महाभाष्यम् पस्पशान्हिक, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली 1982
19. आचार्य सायण, ऋग्वेद भाष्यभूमिका, चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी, 2000
20. शास्त्री हरगोविंद, मनुस्मृति, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2015

❑❑❑

संपर्क

संजय कुमार तिवारीः– एफ–366, ओमवती हाउस, कटवारिया सराय, टॉम्ब पॉर्क नई दिल्ली–110016, ईमेलः sanjaytiwariji1995@gmail.com मो. 8120809235

भाइयों, अब तो नींद से चौंको, अपने देश की सब प्रकार उन्नति करो। जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो, परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।

– **भारतेंदु हरिश्चंद्र**

शब्दकोश एवं द्वितीय भाषा अधिगम : हिंदी का विशेष संदर्भ

परमान सिंह*
कृष्ण कुमार पाण्डेय**

शब्दकोश केवल किसी भाषा के शब्दों के संचयन मात्र नहीं होते, बल्कि वे उस भाषिक समाज की भाषाई, सांस्कृतिक, सामाजिक और भौगोलिक विशिष्टताओं के संवाहक होने के साथ–साथ भाषा के आधिकारिक एवं मानक दस्तावेज भी माने जाते हैं। यही दस्तावेज मानक भाषा सीखने के प्रमुख उपकरण के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। प्रचलित धारणा यह है कि कोशों का उपयोग भाषा सीखने के लिए नहीं, बल्कि किसी शब्द का अर्थ जानने के लिए किया जाता है; किंतु अर्थ जानना भी भाषा अधिगम का एक अनिवार्य पक्ष है। भाषा शिक्षण की आवश्यकता को ध्यान में रखकर विशेष प्रकार के कोश निर्मित किए जाते हैं जिन्हें शिक्षार्थी या अध्येता कोश कहा जाता है। हिंदी को द्वितीय या विदेशी भाषा के रूप में सीखने में इन कोशों की महत्ता पर प्रकाश डालना ही इस आलेख का उद्देश्य है।

कोशों के अनेक प्रकार हो सकते हैं, जिनका व्यवस्थित वर्गीकरण करते समय भाषा, प्रयोक्ता और उद्देश्य को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। किसी विशेष परिस्थिति में शब्दकोश से प्रयोक्ताओं की प्रमुख अपेक्षाएँ क्या होती हैं, इस पर विभिन्न कोशकारों ने अध्ययन किया है (Nesi, 2022)। कोशकार बर्नहार्ट (1962) ने अपने शोध को एकभाषी कोशों के प्रयोक्ताओं तक सीमित रखा, जो उसी भाषा के वक्ता थे। अपने शोध के आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि इस परिस्थिति में कोशों का सर्वाधिक उपयोग शब्द विशेष के अर्थ को जानने के लिए किया जाता है। यहाँ तक कि न्यायालयों में या साहित्य पढ़ते समय जब किसी शब्द के अर्थ को लेकर विवाद या संशय उत्पन्न होता है, तो साधारणजन से लेकर विद्वान तक कोशों की सहायता लेते हैं और उसे ही प्रामाणिक मानते हैं।

हेनरी बेजॉइंट (1981) का शोध उन एकभाषी शब्दकोशों से संबंधित है, जो

* सहायक प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।

** कृष्ण कुमार पाण्डेय, सहायक प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।

उपयोगकर्ताओं की मातृभाषा में नहीं हैं। उन्होंने पाया कि उपयुक्त संदर्भ में उपयोगकर्ताओं द्वारा शब्दकोश का प्रयोग क्रमशः अर्थ, व्याकरण, समानार्थक शब्द, वर्तनी, उच्चारण, भाषिक विविधता और शब्दों की व्युत्पत्ति जानने के लिए किया जाता है। हार्टमैन (1983) ने द्विभाषी शब्दकोशों के संदर्भ में अध्ययन किया, जिनका उपयोग विदेशी भाषा के पाठ को समझने के लिए किया जाता है। उनके अनुसार, इस परिप्रेक्ष्य में उपयोगकर्ता शब्दकोश का प्रयोग शब्दों के अर्थ, व्याकरण, प्रयोग–संदर्भ, वर्तनी, पर्याय, उच्चारण और व्युत्पत्ति जानने के लिए करते हैं।

यद्यपि तीनों शोधकर्ताओं ने भिन्न परिस्थितियों में अपने अध्ययन किए, किंतु निष्कर्षतः सभी ने अर्थ को शब्दकोश के उपयोग का प्रमुख कारण तथा व्युत्पत्ति को सबसे अंतिम माना। यह भी उल्लेखनीय है कि मातृभाषा का वक्ता भी शब्दों के अर्थ की पुष्टि के लिए प्रायः एकभाषी शब्दकोश का ही सहारा लेता है।

विशिष्ट प्रयोजनों को अलग रखकर देखें तो सामान्य प्रयोजन वाले शब्दकोश भी, चाहे उपयोगकर्ता कोई भी हो, अनेक कार्य संपन्न करते हैं। इनमें प्रमुख हैं – शब्द प्रयोग का मानक एवं विश्वसनीय स्रोत प्रदान करना, कठिन शब्दों के अर्थ बताना, शब्द प्रयोग का संदर्भ देना, संचार को सुस्पष्ट करना और भाषा सीखने का साधन उपलब्ध कराना (Landau, 2001(Hartmann & James, 1998; Atkins & Rundell, 2008) ।

भाषा–शिक्षण में कोशों की उपयोगिता

सामान्य कोश जहाँ एक ओर जनसाधारण से लेकर विशिष्ट व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, वहीं भाषा अधिगम के उद्देश्य से बनाए गए कोश, जिन्हें अध्येता कोश (learner's dictionaries) कहा जाता है, मातृभाषा से भिन्न भाषा सीखने में विशेष सहायक होते हैं। भाषा–शिक्षण में कोशों की उपयोगिता सर्वविदित और सभी संदर्भों में प्रमाणित है। किंतु इससे पूर्व यह देखना उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि अध्येता स्वयं कोश का सही प्रकार से उपयोग करने में सक्षम हैं या नहीं। यदि छात्र शब्दकोश का प्रभावी प्रयोग करना सीख लें, तो वह उनके अध्ययन के लिए अत्यंत उपयोगी संसाधन सिद्ध हो सकता है। शब्दकोश के उचित उपयोग का प्रशिक्षण किसी दिए गए संदर्भ में उपयुक्त अर्थ चुनने में सहायक होता है। शब्दकोश प्रयोग का सबसे महत्त्वपूर्ण और आधारभूत कौशल मन में उपस्थित किसी शब्द या अभिव्यक्ति को पहचानकर उसे ढूँढ़ना है। इसके बाद शब्द का अर्थ ज्ञात करना होता है। हालाँकि जब किसी शब्द के अनेक अर्थ निर्दिष्ट हों, तो उपयुक्त संदर्भ के अनुसार सही अर्थ का चयन करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है (Takahashi, 2012)।

सामान्य रूप भाषा–शिक्षण–अधिगम में कोशों की उपयोगिता निम्न पहलुओं में देखी जा सकती है–

शब्द ज्ञान का विस्तार

मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा सीखने में शब्दावली का विशेष महत्त्व होता है। जब भाषा अधिगम की प्रक्रिया में अथवा अन्य भाषा का पाठ पढ़ते समय अध्येता किसी नए शब्द से परिचित होता है, तो वह कोश की सहायता लेता है, जहाँ उसे उस शब्द का मानक अर्थ जानना आवश्यक होता है। शब्दकोश में खोज की इस प्रक्रिया में अध्येता अक्सर उत्सुकतावश अन्य शब्द भी देखता है और इस प्रकार उसकी शब्दावली का विस्तार होता जाता है, जिससे उसका भाषा ज्ञान भी समृद्ध होता है (Schmitt, 2000; Nation, 2001)।

अध्येता कोशों का निर्माण भाषा–शिक्षण को ध्यान में रखकर किया जाता है, जिसमें शब्दों के साथ उनके पर्याय और विलोम भी दिए जाते हैं। इस क्रम में अध्येता न केवल शब्द का अर्थ जानता है, बल्कि समानार्थक, विलोम और संबंधित शब्दों से भी परिचित होता है। यही पूरी प्रक्रिया शब्द–संवर्धन कहलाती है, जिसका भाषा अधिगम में महत्त्वपूर्ण योगदान है (Hartmann & James, 1998)।

मानव मस्तिष्क शब्दों को वर्णक्रमानुसार नहीं, बल्कि अर्थ–समूहों में वर्गीकृत करके सूचना को संगृहीत करता है। इसी कारण अनेक कोशों, विशेषतः अध्येता कोशों में, शब्दों को विषयानुसार अथवा श्रेणीबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है। सामान्य कोशों में भी कुछ प्रचलित शब्दावली, जैसे फलों के नाम, पशु–पक्षियों के नाम, प्रमुख व्यवसाय और उनसे संबंधित शब्द, दिन, महीने और ऋतुएँ, नाप–तौल से जुड़े शब्द आदि, परिशिष्ट के रूप में दिए जाते हैं। इस प्रकार की श्रेणीबद्धता नई भाषा सीखने वाले विद्यार्थियों को संबंधित शब्दों के समूहों के माध्यम से शब्दावली का विस्तार करने और भाषा अधिगम को सरल बनाने में सहायक होती है (Collins & Quillian, 1969; Landau, 2001)।

मानक वर्तनी का ज्ञान

शब्दकोशों के निर्देशात्मक पहलू (Prescriptive approach) का सबसे स्पष्ट उदाहरण वर्तनी से संबंधित पक्ष में देखा जा सकता है। शब्दकोश, चाहे वे भिन्न–भिन्न वर्तनी प्रस्तुत करें अथवा सभी प्रचलित रूपों को दर्ज करें, अंततः उन्हें मुख्य शब्द के रूप में किसी एक मानक वर्तनी का चयन करना या उसका निर्देश करना आवश्यक होता है। अध्येता कोश वर्तनी पर विशेष ध्यान केंद्रित करते हैं, जिससे विद्यार्थियों को शब्दों की मानक एवं शुद्ध वर्तनी सीखने और समझने में सहायता मिलती है। शुद्ध वर्तनी का ज्ञान सही लेखन के लिए अनिवार्य है, क्योंकि गलत वर्तनी से अर्थ का विकृत होना संभव है। इसीलिए कोश सही वर्तनी के ज्ञान का विश्वसनीय स्रोत माने जाते हैं (Central Hindi Directorate, 1983 / 2024) ।

हिंदी में आज भी अनेक शब्द ऐसे हैं जिनकी एक से अधिक वर्तनी प्रचलन में हैं। उदाहरणार्थ– कर्ता / कर्त्ता, वासिष्ठ / वशिष्ठ, कौआ / कौवा, बुआ / बुवा, हौवा / हव्वा,

फ़ौवारा/फ़व्वारा, नैया/नय्या, शैया/शय्या, यह/ये, छियासठ/छाछठ, पचहत्तर/पिचहत्तर/पिछत्तर, एकतारा/इकतारा, सर/सिर, रोशनी/रौशनी, स्थायी/स्थाई, अनुयायी/अनुयाई, धराशायी/धराशाई, सुखदायी/सुखदाई, विषपायी/विषपाई, खींचना/खेंचना/खैंचना, पैजामा/पायजामा, गधा/गदहा, अंगरेज/अंग्रेज, स्थाई/स्थायी, उज्वल/उज्ज्वल इत्यादि। 'हिंदी शब्द सागर' (दास 1965) में 'व्यापारी' शब्द के अंतर्गत भी विभिन्न वर्तनियों को स्थान दिया गया है।

बैपारी – पु० दे० 'व्यापारी'।

ब्यापारी – पु० दे० 'व्यापारी'।

व्यापारी – वि० व्यापार . संबंधी।

व्यापारी(रिन्) – पु० (सं०) काम करने वाला; रोजगारी, व्यवसायी; अभ्यास करनेवाला। वि. किसी व्यवसाय या कार्य में लगा हुआ।

हिंदी शब्दों की वर्तनी के मानक रूप एवं वर्तनी में एकरूपता हेतु केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा "देवनागरी लिपि एवं हिंदी का मानकीकरण" के माध्यम से समय–समय पर निर्देश दिए जाते रहे हैं, लेकिन निश्चय ही प्रचलन में एकरूपता आने पर ही निदेशालय अपने उद्देश्यों में सफल होगा।

मानक उच्चारण का ज्ञान

यदि किसी अन्य भाषा में मातृभाषा जैसी दक्षता प्राप्त करनी हो, तो सर्वप्रथम वाचिक कौशल का परिष्कार अनिवार्य है। वाचिक कौशल की आधारशिला मानक उच्चारण पर ही सुदृढ़ होती है। कोश की सहायता से विद्यार्थी किसी भाषा का मानक उच्चारण सीख सकते हैं। सामान्यतः कोश के प्रारंभ में दिए गए 'उच्चारण मार्गदर्शक' अध्येताओं को शब्दों का सही उच्चारण ग्रहण करने में सहायक होते हैं (Bahri, 1989)।

यदि हिंदी का उदाहरण लें, तो उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में 'ल', 'ड़' और 'ढ़' ध्वनियों का उच्चारण प्रायः 'र' के रूप में किया जाता है। परिणामस्वरूप ऐसे क्षेत्रों से आने वाले हिंदी शिक्षक भी 'लड़का' को 'लरका', 'सड़क' को 'सरक', 'घोड़ा' को 'घोरा', तथा 'बाढ़' को 'बार' बोलते हैं। ऐसी स्थिति में हिंदी सीखने वाले विद्यार्थी, विशेषकर विदेशी विद्यार्थी, असमंजस में पड़ जाते हैं और यह तय नहीं कर पाते कि मानक उच्चारण कौन–सा है। ऐसे संदर्भ में शिक्षक के साथ–साथ कोश ही यह निर्धारित करता है कि मानक उच्चारण क्या होगा (Masica, 1991) ।

यहाँ एक प्रमुख समस्या उच्चारण संबंधी निर्देशों के संदर्भ में सामने आती है। केवल मानक वर्तनी प्रदान कर देने से उच्चारण की समस्या का समाधान नहीं होता। इसका सर्वाधिक प्रत्यक्ष उदाहरण अंग्रेजी भाषा है। इसमें अनेक शब्द ऐसे हैं जिनका उच्चारण केवल वर्तनी देखकर समझना कठिन होता है, और सुनकर उन्हें शब्दकोश में खोजना भी अध्येताओं के लिए चुनौतीपूर्ण सिद्ध होता है। यह समस्या केवल

अंग्रेजी ही नहीं, बल्कि विश्व की अधिकांश भाषाओं तथा भारतीय भाषाओं में भी विभिन्न रूपों में विद्यमान है। इसकी मूल वजह ध्वनि और वर्ण के बीच का अंतर है।

उदाहरण के लिए अंग्रेजी में कुल 26 वर्ण हैं, जबकि ध्वनियों की संख्या लगभग 44 है, और इन ध्वनियों को इन्हीं 26 वर्णों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। इसके विपरीत, जिन भाषाओं में ध्वनि और वर्ण के बीच का अंतर अपेक्षाकृत कम है, उन भाषाओं की वर्तनी और उच्चारण सीखना अपेक्षाकृत सरल होता है।

यदि हिंदी पर विचार किया जाए तो देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी में ध्वनि और वर्ण का अंतर अपेक्षाकृत न्यूनतम है। कुछ विद्वानों को इस कथन पर आपत्ति हो सकती है, क्योंकि परंपरागत हिंदी व्याकरणों में ध्वनि और वर्ण पर तथ्यात्मक चर्चा न करते हुए यह मान लिया गया कि हिंदी में "जो लिखा जाता है वही बोला जाता है, और जो बोला जाता है वही लिखा जाता है।" अर्थात्, हिंदी में ध्वनि और वर्ण में कोई भेद नहीं माना गया ।

वास्तविकता यह है कि हिंदी में अन्य भाषाओं के विपरीत वर्णों की संख्या ध्वनियों से अधिक है। दूसरे शब्दों में, हिंदी में वर्णों की संख्या लगभग 50 है, जबकि इसकी अपनी ध्वनियाँ अंग्रेजी की तरह केवल 44 हैं, जिनमें 10 स्वर और 34 व्यंजन ध्वनियाँ सम्मिलित हैं। अतः हिंदी कोशों में भी उच्चारण का संकेत दिया जाना आवश्यक है। इस विषय पर हरदेव बाहरी (1961) ने बहुत पहले अपने आलेख के माध्यम से विचार प्रकट किए थे।

इसके अतिरिक्त, देवनागरी लिपि के वर्णों में समय–समय पर संशोधन भी किए जाते रहे हैं, जिसकी प्रमुख जिम्मेदारी केंद्रीय हिंदी निदेशालय को सौंपी गई है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना 1960 में हुई और वर्ष 1967 में उसने 'हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' शीर्षक से एक लघु पुस्तिका प्रकाशित की। इसके बाद 1983 में 'देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें मानक हिंदी वर्णमाला, देवनागरी वर्ण, परिवर्धित देवनागरी वर्ण तथा हिंदी वर्तनी के मानकीकरण को समाहित किया गया। इस पुस्तक को भाषाविदों, पत्रकारों, हिंदी सेवी संस्थाओं और विभिन्न मंत्रालयों के प्रतिनिधियों के साथ विचार–विमर्श कर अंतिम रूप दिया गया था।

वर्ष 2003 में देवनागरी लिपि और हिंदी वर्तनी के मानकीकरण के लिए एक अखिल भारतीय संगोष्ठी आयोजित की गई, जिसके आधार पर मानक हिंदी वर्तनी के कुछ नियम तय किए गए। इन्हें वर्ष 2012 में आईएस/IS 16500 : 2012 के रूप में लागू किया गया।

निदेशालय इस दिशा में अपनी जिम्मेदारी अत्यंत दक्षता के साथ निभा रहा है। देवनागरी लिपि में विदेशी और अन्य भारतीय भाषाओं की ध्वनियों को अभिव्यक्त करने के लिए आगत ध्वनियों को समय–समय पर मानक पुस्तिकाओं में सम्मिलित किया

जाता रहा है। वर्तमान संस्करण में ऑ, नुक्ते के साथ क, ख, ग, च, छ, ज, फ, न, र, ळ, य तथा अंडरलाइन के साथ ग, ज, ड, ब आदि को जोड़ा गया है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि भारत की अधिकांश भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जा सकें और हिंदीतर भाषाओं की ध्वनिगत विशिष्टताओं पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

जैसा कि हम जानते हैं, अंग्रेजी भाषा में उच्चारण संबंधी समस्या को हल करने के लिए अंतरराष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि (IP) का प्रयोग किया जाता है, और इसके लिए अध्येताओं को इस लिपि में दक्ष होना आवश्यक होता है। इसी तर्ज पर भारतीय भाषाओं को लिखने के लिए देवनागरी में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा आवश्यक परिवर्धन किए जा रहे हैं, ताकि हिंदीतर भाषाओं को भी उनकी ध्वन्यात्मक विशिष्टता को अक्षुण्ण रखते हुए देवनागरी में लिखा जा सके। यही देवनागरी की विशिष्टता है और यह इस दूरदर्शी सोच का परिणाम है कि भारतीय भाषाओं को एक साझा आधार पर प्रस्तुत कर, भाषा–समन्वय की अवधारणा को साकार किया जा सके।

इस प्रकार देवनागरी लिपि की विशिष्टताओं से परिचित होकर हिंदीभाषी व्यक्ति हिंदीतर भारतीय भाषाओं को, और हिंदीतर भाषा–भाषी हिंदी भाषा को उसकी शुद्ध वर्तनी एवं उच्चारण सहित कोशों के माध्यम से सहजता से सीख सकते हैं। भारत सरकार इस दूरदर्शी विचार को केंद्रीय हिंदी निदेशालय और केंद्रीय हिंदी संस्थान के माध्यम से साकार करने का प्रयास कर रही है। केंद्रीय हिंदी संस्थान अब तक देवनागरी माध्यम से 50 से अधिक भारतीय भाषाओं और बोलियों के अध्येता कोश तैयार करवा चुका है, और यह प्रक्रिया निरंतर जारी है (परमान सिंह 2020)।

वर्तमान समय में संपूर्ण मानवता तकनीक का उपयोग जीवन को सुगम बनाने के लिए कर रही है, और शिक्षण–अधिगम के क्षेत्र में भी तकनीक का व्यापक प्रयोग हो रहा है। अध्येता कोशों के इलेक्ट्रॉनिक संस्करण तैयार कर उनमें शब्दों के साथ उच्चारण की ध्वनि–क्लिप जोड़ने से अध्येता मानक उच्चारण को और प्रभावी ढंग से सीख सकते हैं।

भाषा संरचना का ज्ञान

कोश भाषा की संरचना को समझने का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है, जिससे भाषा–अध्येता को विशेष लाभ होता है। कोशों में प्रायः व्याकरणिक कोटियाँ दी जाती हैं, और इन कोटियों के बदलने से शब्दार्थ पर भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणस्वरूप, साधारण–सा प्रतीत होने वाला शब्द 'सोना' संज्ञा कोटि में किसी पदार्थ अथवा व्यक्ति का नाम हो सकता है, जबकि क्रिया कोटि में इसका अर्थ सोने की क्रिया से होगा।

अक्सर कोशों में शब्दों के पहले लगने वाले उपसर्ग (Prefix), पश्चात् लगने वाले प्रत्यय (Suffix), और मूल शब्द (Root word) की जानकारी भी दी जाती है। इससे विद्यार्थी नए शब्दों की संरचना और निर्माण–नियमों को समझकर अपनी भाषिक दक्षता

का विस्तार कर सकता है। साथ ही, कोश में दिए गए उदाहरण–वाक्य अध्येताओं को भाषा की संरचना और व्याकरण को समझने में सहायक होते हैं। यह समझना कि कोई विशेष शब्द वाक्य में कहाँ और कैसे प्रयुक्त होता है, भाषा–कौशल को और अधिक सुदृढ़ बनाता है।

निम्न उदाहरण देखें–

वह चाय लाया।

रमेश मेरे लिए फल लाया।

इन दोनों वाक्यों को देखने पर स्थूल रूप से यह प्रतीत होगा कि 'लाना' क्रिया सकर्मक है (क्योंकि 'चाय' और 'फल' कर्म साथ में हैं) तथा क्रिया पूर्णभूत रूप में है। 'ने परसर्ग' का प्रयोग इन्हीं परिस्थितियों में होता है, लेकिन इन वाक्यों में जब 'ने परसर्ग' का प्रयोग करेंगे तब वास्तविक समस्या सामने आएगी। ('उसने चाय लाया। 'रमेश ने मेरे लिए फल लाया।) इस समस्या का समाधान कोश देखने पर ही होता है। 'हिंदी शब्द सागर' (दास 1965) में लाना क्रिया– लाना – क्रि. अ. [हिं लेना+आना, ले आना], 1– कोई चीज उठाकर या अपने साथ लेकर आना। लेना एक प्रकार की संयुक्त क्रिया है जिसमें एक सकर्मक तथा दूसरी अकर्मक है। साथ में प्रयोग करने पर एक क्रिया सकर्मक होने के कारण कर्म तो उपस्थित रहता है लेकिन भाषा में इसका प्रयोग अकर्मक की तरह होता है और इसकी जानकारी हमें कोश से प्राप्त होती है।

कोशों के माध्यम से शब्दों के मूल और इतिहास को समझकर अध्येता अपने भाषा–ज्ञान का विस्तार करता है। प्रायः कोशों में शब्दों की व्युत्पत्ति का विवरण भी दिया जाता है, जिससे विद्यार्थी यह जान सकते हैं कि कोई शब्द किस प्रकार और किस स्रोत से आया है। यदि उसके रूप में समय के साथ कोई परिवर्तन हुआ है तो उसकी जानकारी भी कभी–कभी उपलब्ध कराई जाती है। इस प्रकार अध्येता यह भी जान पाता है कि कोई विशेष शब्द मूलतः उसी भाषा का है या किसी अन्य भाषा से ग्रहण किया गया है।

भिन्नार्थक शब्दों का ज्ञान

कोशों के माध्यम से अध्येताओं को भिन्नार्थक शब्दों का भी ज्ञान प्राप्त होता है। ऐसे शब्द तीन प्रकार के होते हैं। पहला, वे जिनकी वर्तनी समान होती है किंतु अर्थ भिन्न होते हैं, जैसे – आम (फल और सामान्य), मन (व्यक्ति का मन और तौलने की इकाई), Bat (चमगादड़ और क्रिकेट का बैट), Right (दाहिना और सही)। दूसरा, वे जिनके अर्थ क्रमशः विस्तारित होते जाते हैं, जैसे – चोटी (व्यक्ति की शिखा और पर्वत की चोटी)। तीसरा, वे जिनकी वर्तनी भिन्न होती है लेकिन उच्चारण समान होता है। ऐसे उदाहरण अंग्रेजी में अधिक मिलते हैं, जैसे – Cell, Sale, Sail; हिंदी में इस प्रकार के शब्द अपेक्षाकृत कम हैं। इन शब्दों के वास्तविक अर्थ को कोशों और संदर्भों की सहायता से समझा जा सकता है।

हिंदी में एक और वर्ग देखने को मिलता है, जो सतही तौर पर पहले समूह का लगता है, किंतु वास्तव में भिन्न है। हिंदी और संस्कृत अथवा विदेशी भाषाओं से आए कुछ शब्द ऐसे हैं जिन्हें भिन्न वर्तनी और उच्चारण के साथ लिखा या बोला जा सकता है। फिर भी हिंदीभाषी सामान्यतः इन्हें वर्तनी या उच्चारण से नहीं, बल्कि संदर्भों से अलग पहचानते हैं।

ताक	=	ताकना यानी घूरना
ताक़	=	आला (जगह)
पाक	=	पाकशाला (रसोईघर)
पाक़	=	पवित्र, स्वच्छ
खाना	=	भोजन
ख़ाना	=	घर (दवाख़ाना)
खैर	=	कत्था (वृक्ष का नाम)
ख़ैर	=	कुशल, क्षेम
राज	=	सरकार, आधिकारिक, राजा, राज संबंधित,(राजभाषा, राजनीति)
राज़	=	रहस्य ,भेद
जलील	=	श्रेष्ठ, पूज्य, आदरणीय
ज़लील	=	नीच, अपमानित, निकृष्ट
गौर	=	धवल श्वेत (गोरा रंग)
ग़ौर	=	ध्यान (गुरुदेव की बात पर ग़ौर करें)
गज	=	हाथी
गज़	=	दूरी, कपड़ा मापने का पैमाना
फलक	=	तख़्ता, पट्टा, पटल
फ़लक	=	आकाश, अंबर
फन	=	मुख (साँप का)
फ़न	=	कला, हुनर
बेग़म	=	बिना ग़म/दुख
बेगम	=	रानी

हालाँकि कुछ व्याकरणाचार्य नुक्ते के प्रयोग को तब तक हतोत्साहित करते हैं, जब तक उसके अभाव से अर्थ में भ्रम की स्थिति न उत्पन्न हो।

भाषा प्रयोग की जानकारी

कोशों में वाक्य–प्रयोग का विशेष महत्त्व है, क्योंकि यह न केवल शब्द के अर्थ को स्पष्ट करता है, बल्कि यह भी दिखता है कि किसी शब्द का सही प्रयोग किस प्रकार और किस संदर्भ में किया जाए। वाक्य–प्रयोग से शब्दों की व्यावहारिक उपयोगिता और उनके उपयुक्त स्थान की समझ विकसित होती है। औपचारिक,

अनौपचारिक, साहित्यिक और बोलचाल के भिन्न संदर्भों में भाषा–प्रयोग विद्यार्थियों को उचित शब्द चुनने और उसे सही स्थिति में प्रयोग करने की दक्षता प्रदान करता है।

उदाहरणार्थ, "अग्नि" शब्द औपचारिक, साहित्यिक और संस्कृतनिष्ठ शैली में प्रयुक्त होता है, जबकि "आग" शब्द अनौपचारिक और बोलचाल की शैली में अधिक प्रचलित है। यहाँ उद्देश्य भाषा–प्रयोग को बाँधना नहीं है, क्योंकि "अग्नि" का प्रयोग साहित्य और औपचारिक संदर्भों में स्वाभाविक है। कहना यह है कि अध्येता कहीं "अग्निसाक्षी" के स्थान पर "आगसाक्षी" या "अग्निकांड" के स्थान पर "आगकांड" जैसे अप्राकृतिक रूप न गढ़ने लगे। इसी प्रकार, "जल" और "पानी" शब्दों को लेकर भी भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो सकती है; उदाहरणस्वरूप, कोई अध्येता "गंगापानी" या "नाली का जल" जैसी अप्रयुक्त संरचनाएँ न करने लगे। अतः ऐसे प्रसंगों में अध्येता कोशों में स्पष्ट निर्देश आवश्यक हैं।

इसी तरह "बैठिए" और "विराजिए" दोनों का अर्थ समान होते हुए भी उनके प्रयोग की स्थितियाँ भिन्न हैं। यदि इस अंतर को न बताया जाए तो अध्येता अनुपयुक्त प्रयोग कर सकता है। इसलिए कोशों में वाक्य–प्रयोग संबंधी निर्देश देना अत्यावश्यक है।

मुहावरे एवं पदबंधों के प्रयोग की जानकारी

कोश में मुहावरों और विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त पदबंधों का भी संकलन मिलता है, जो विद्यार्थियों को भाषा के जटिल तथा सांस्कृतिक आयामों को समझने और उन्हें व्यवहार में लाने में सहायक होता है। इनका पर्याप्त ज्ञान होने पर विद्यार्थी संवाद और लेखन में उनका प्रभावी प्रयोग कर सकते हैं और सीख रही भाषा में मातृभाषा जैसी दक्षता अर्जित कर सकते हैं।

उदाहरणार्थ, "आग" शब्द से बने अनेक पदबंध और मुहावरे देखे जा सकते हैं:

आग जलना, आग लगना, आग सुलगना, आग पकड़ना, आग फैलना, आग भड़कना, आग बुझना, आग जलाना, आग लगाना, आग सुलगाना, आग पकड़वाना, आग तापना, आग भड़काना, आग उगलना, आग देना (जैस– पुत्र ने पिता की चिता को आग दी), पेट में आग लगना, बदन में आग लगना, नफरत/ईर्ष्या/प्रेम/विरह की आग सुलगना, आग से खेलना, आग में घी डालना, आग बरसना, आग बबूला होना इत्यादि।

स्वतंत्र अध्ययन में सहायक

भाषा–शिक्षण में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है, किंतु वह प्रत्येक समय या प्रत्येक स्थान पर विद्यार्थी के साथ उपस्थित नहीं रह सकता। ऐसे में शिक्षक के अभाव में कोश ही अध्येता के लिए शिक्षक का कार्य करता है। अनेक लोग औपचारिक शिक्षण व्यवस्था से जुड़ नहीं पाते; उनके लिए भी स्वाध्याय की दृष्टि से कोश शिक्षक की भूमिका निभाता है।

इस प्रकार, कोशों के माध्यम से अध्येता स्वतंत्र रूप से अध्ययन कर सकते हैं और किसी भी शब्द के संबंध में तत्काल जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। परिणामस्वरूप, भाषा–अधिगम की प्रक्रिया बाधित नहीं होती, चाहे शिक्षक समय और स्थान विशेष पर उपलब्ध हो या न हो।

हिंदी–मिज़ो अध्येता कोश की समीक्षा करते समय वी. रा. जगन्नाथन (1999) ने आगत शब्दों, विशेषकर अंग्रेजी से आए उन शब्दों को सम्मिलित करने की आवश्यकता पर बल दिया जो अब हिंदी में प्रचलित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त, उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर छात्रकोश (अध्येताओं हेतु कोश) भी तैयार किया (जगन्नाथन 2009), जिसमें उच्चारण के लिए कोश के साथ एक सी.डी. संलग्न की गई थी ताकि अध्येता मानक उच्चारण सीख सकें।

इस कोश में न केवल इस आलेख में उल्लिखित लगभग सभी बिंदुओं को समाहित किया गया है, बल्कि लाक्षणिक अर्थों, व्युत्पन्न और संबद्ध शब्दों को भी एक साथ प्रस्तुत किया गया है।

इक्कीसवीं सदी सूचना–क्रांति की सदी है, और इस परिप्रेक्ष्य में हिंदी के लिए ई–अध्येता कोश तैयार किए जाने की आवश्यकता है। विद्वज्जन आशा करते हैं कि केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा इस दिशा में शीघ्र ही निर्णायक कदम उठाएगा।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि शब्दकोश केवल शब्दों के अर्थ देने वाला साधन नहीं है, बल्कि वह भाषा–अधिगम का एक अनिवार्य उपकरण है, जो वर्तनी, उच्चारण, व्याकरणिक कोटियों, मुहावरों, पदबंधों, शब्द–संवर्धन और सांस्कृतिक प्रयोगों तक का मार्गदर्शन करता है। अध्येता कोशों की विशेषता यह है कि वे विद्यार्थी को न केवल सही अर्थ चुनने और उपयुक्त संदर्भ समझने में सक्षम बनाते हैं, बल्कि भाषा की संरचना, प्रयोग और मानक रूप से भी अवगत कराते हैं। तकनीक के साथ इनके इलेक्ट्रॉनिक रूप और ध्वनि–सहायक संसाधन भाषा–अधिगम को और सुलभ बना रहे हैं। हिंदी के संदर्भ में केंद्रीय हिंदी निदेशालय और केंद्रीय हिंदी संस्थान ने मानक वर्तनी और उच्चारण निर्धारण से लेकर बहुभाषिक अध्येता कोशों की तैयारी तक महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। भविष्य में ई–अध्येता कोश इस दिशा को और आगे बढ़ाएगा और हिंदी को विश्व पटल पर एक सुदृढ़ स्थान दिलाने में सहायक होगा।

सहायक–ग्रंथ सूची:–

Atkins, B. T. S. & Rundell, M. (2008). The Oxford Guide to Practical Lexicography. Oxford: Oxford University Press.

Bahri, Hardev. (1989). Learner's Hindi&English Dictionary. New Delhi: Rajpal &Sons.

Barnhart, C.L. (1962). Problems in editing commercial monolingual dictionaries. In Householder and Saporta (ed.), 161&81.

Bejoint, Henri (1981). The foreign student's use of monolingual English dictionaries: A study of language needs and reference skills. Applied linguistics , 2 (3), 207&220.
Collins, A. M., & Quillian, M. R. (1969). Retrieval time from semantic memory. Journal of Verbal Learning and Verbal Behavior, 8(2), 240&247.
Hartmann, R. R. K., & James, G. (1998). Dictionary of lexicography. London Routledge.
Hartmann, R.R.K. (1983). The bilingual learner's dictionary and its uses. Multilinuga, 2 (4), 195&201.
Hidemitsu Takahashi,(2012). A cognitive linguistic analysis of the English imperative: With special reference to Japanese imperatives (Human Cognitive Processing 35). Amsterdam & Philadelphia: John Benjamins.
Landau, S.I. (2001). Dictionaries: The Art and Craft of Lexicography. Cambridge: Cambridge University Press.
Masica, Colin (1991). The Indo&Aryan Languages. Cambridge: Cambridge University Press
Nation, ISP (2001). Learning vocabulary in another language. Cambridge: Cambridge University.
Nesi, H. (2022). Researching Users and Uses of Dictionaries. In H. Jackson (Ed.), The Bloomsbury Handbook of Lexicography (2 ed., pp. 116&148). (Bloomsbury Handbooks). Bloomsbury Academic.
Schmitt, N. (2000). Vocabulary in Language Teaching. Cambridge University Press, Cambridge.
कुळकर्णी, सुनील बाबूराव (प्रधान संपादक) (2024) देवनागरी लिपि एवं हिंदी वर्तनी का मानकीकरण केंद्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली।
जगन्नाथन, वी. रा. (1999) समीक्षाः हिंदी मिज़ो अध्येता कोश–संपादक प्रोः अमर बहादुर सिंह एवं रवि प्रकाश श्रीवास्तव) गवेषणा वर्ष 37, अंक 73 (पृष्ठ संख्या 79–80) केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
जगन्नाथन, वी. रा. (2009) लघु छात्रकोश, जनेपा पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
दास, श्यामसुंदर एवं अन्य संपादक (1965) हिंदी शब्दसागर, द्वितीय संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
बाहरी, हरदेव (1961) हिंदी कोशों में उच्चारण की आवश्यकता भाषा वर्ष 1, संख्या 2, नवंबर 1961 (39–43) केंद्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली।
सिंह, परमान (2020) हिंदी संस्थान के अध्येता कोशों की उपादेयताः भाषावैज्ञानिक

दृष्टिकोण, गवेषणा, अंक 121, जुलाई–सितंबर 2020 (पृष्ठ संख्या–70–76) केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।

❑❑❑

संपर्कः

परमान सिंहः– सहायक प्रोफेसर (भाषाविज्ञान), अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, संस्थान मार्ग, खंदारी, उत्तरप्रदेश–282005, ईमेलः parmansingh@gmail.com, मो. 9164053999

कृष्ण कुमार पाण्डेयः– सहायक प्रोफेसर (भाषाविज्ञान), अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, संस्थान मार्ग, खंदारी, उत्तरप्रदेश–282005, ईमेलः kpkhs19@gmail.com , मो. 8126427561

''ज्ञान–राशि के संचित कोश का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो वह रूपवती भिखारिनी की तरह, कदापि आदरणीय नहीं हो सकती''।

– महावीर प्रसाद द्विवेदी

हिंदी और कश्मीरी : अंतःसंबंधों का विवेचन

शिबन कृष्ण रैणा*

भारत एक बहु भाषा–भाषी देश है। बाईस प्रमुख भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त इस देश में लगभग 1652 बोलियाँ या उपभाषाएँ बोली जाती हैं। प्रत्येक भाषाक्षेत्र की अपनी भौगोलिक एवं परिवेशगत विशिष्टता होते हुए भी अपनी एक पृथक्, स्वस्थ, सुदीर्घ एवं समृद्ध साहित्यिक–सांस्कृतिक परंपरा है। इस परंपरा में भारतीय धर्म–दर्शन, विद्या–बुद्धि, चिंतन और कलाओं की परमोत्कृष्ट संपदा समायोजित है। दूसरे शब्दों में भारतीय मनीषा और विचारणा इन्हीं भाषाओं के साधकों, रचनाधर्मियों एवं सर्जकों की समेकित अभिव्यक्ति है, जिसे हम प्रकारांतर से 'भारतीयता' या 'भारतीय–अस्मिता' भी कहते हैं।

भारतीय भाषाओं एवं हिंदी के बीच अंतःसंबंधों/एकात्मकता की व्याख्या कई आयामों से की जा सकती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से, भाषाशास्त्रीय दृष्टि से, साहित्यिक दृष्टि से या फिर सांस्कृतिक दृष्टि से। किसी भी आयाम से विचार करें तो इन अंतर्संबंधों में काफी सीमा तक एकरूपता के दर्शन होंगे जो निश्चित रूप से एक सुखद अनुभूति है। ध्यान से देखा जाए तो ज्ञात होगा कि प्राचीनकाल से अब तक अंतर्संबंधों के ये सूत्र हमारी वाणी और अभिव्यक्ति दोनों को जोड़े हुए हैं। दरअसल, हमारे देश में अनादिकाल से एक ही विचारधारा, एक ही जीवन–दर्शन तथा एक ही महान आदर्श का प्रचार–प्रसार था। कालांतर में किन्हीं राजनीतिक परिवर्तनों के कारण विभिन्न प्रदेशों में उनका विशिष्ट स्वरूप स्थिर हो गया। इस विशिष्टता के होते हुए भी उनके मूल में एक ही सांस्कृतिक सूत्र विद्यमान रहा। इस अंतर्व्यापी सांस्कृतिक सूत्र की महिमा पर श्री आर.आर. दिवाकर लिखते हैं – *"But in spite of these political and other vicissitudes, what has persisted like mighty river Ganga, is the silken thread of Indian culture which is still binding the varied people*

* पूर्व–अध्येता, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला।

* भारतीय भाषाओं से हिंदी में अनुवाद कार्य में विशेषज्ञता, कश्मीरी रामायण 'रामावतारचरित' के अनुवाद हेतु बिहार राजभाषा विभाग द्वारा पुरस्कृत।

of the whole India, from Kashmir to Cape-coumarin and Kutch to Assam--n" (Bihar Through Ages, page 26) अर्थात् *'राजनीतिक तथा अन्य प्रकार के उलट–फेरों के होते हुए भी भगवती गंगा के समान पवित्र एवं शाश्वत हमारी भारतीय संस्कृति का रेशमी धागा आज भी कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा कच्छ से असम तक इस देश के भिन्न–भिन्न लोगों को एकसूत्र में बाँधे हुए है।''* इस अविच्छिन्न सूत्र के कई आयाम हैं जिनका अन्वेषण हिंदी के संदर्भ में विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध शब्द और साहित्य की संपदा के अध्ययन से किया जाना संभव है।

भारतीय भाषाओं और हिंदी के मध्य विशेष रूप से कश्मीरी–हिंदी के मध्य उक्त अंतर्संबंधों/सूत्रों को दो प्रकार से खोजा जा सकता है:–

1– भाषा के स्तर पर और

2– कथ्य/साहित्य के स्तर पर

भाषा के स्तर पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि संस्कृत से उद्भूत होने के कारण प्रायः समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं पर तत्सम शब्दावली की छाप स्पष्टतया दिखाई पड़ती है। परिवर्तनशीलता के बावजूद शब्दों की यह एकरूपता हमारी भाषाओं की आंतरिक अखंडता अथवा एकसूत्रता को दर्शाती है। कश्मीरी भाषा में आज भी संस्कृत के अनेक शब्द उनके मूल रूप या फिर तनिक परिवर्तन के साथ प्रयुक्त होते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं:–

संस्कृत	कश्मीरी	अर्थ	संस्कृत	कश्मीरी	अर्थ
लक्ष	लछ	लाख	श्वसुर	हिहुर	ससुर
द्राक्ष	दछ	अंगूर	शत	हथ	सौ
चंद्र	च़ंअद्र	चन्द्र	कृमि	क्योम	कीड़ा
भिक्षक	बेछअ	भिखारी	गणेश	गनीश	गणेश
सप्त	सथ	सात	गुरु	गोर/ग्वर	गुरु
पोथी	पूथ्य	पोथी	दंत	दंद	दांत
कर्ण	कन	कान	जन्म	ज़नम	जन्म

अन्य भारतीय भाषाओं में भी इसी तरह की भाषिक निकटता देखी जा सकती है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में व्याप्त अंतर्संबंधों के प्रसंग में उनके साहित्य पर दृष्टिपात कर उनमें उपलब्ध उन सूत्रों को अन्वेषित करना अनुचित न होगा जो भारतीय साहित्य की समेकित अवधारणा को पुष्ट करते हैं। यह भारतीय संस्कृति या अस्मिता की विशिष्टता ही है कि प्रायः समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य का आदिकाल संतवाणी या भक्तिप्रधान काव्य से युक्त है। इस काल के प्रत्येक संत/भक्त कवि ने जो रचना की, उसकी भाषा भले ही भिन्न रही हो पर कथ्य के स्तर पर उसमें अद्भुत साम्य/एकसूत्रता दृष्टिगोचर होती है। भाषा–साहित्य के स्तर पर भारतीय साहित्य में इस तरह की एकरूपता सचमुच अभिनंदनीय है। एकसूत्रता

का यह प्रभाव भारतीय मनीषा एवं सृजनशीलता में व्याप्त आंतरिक अखंडता एवं भावनात्मक एकता को रेखांकित करता है। चाहे बांग्ला के चण्डीदास हों या गुजराती के नरसिंह मेहता, मराठी के संत ज्ञानेश्वर हों या तमिल के कंबन या आलवार भक्तिन आंडाल, तेलुगु के पोतना हों या मलयालम के तुंजन, असमिया के माधव कंदली हों या कश्मीरी की संत कवयित्री ललद्यद या शेख नूरुद्दीन वली/नुंद ऋषि या फिर हिंदी के कबीर, दादू, नानक, रैदास आदि। ये सभी कवि अपनी–अपनी भाषाओं के आदिकाल के अत्यंत प्रतिष्ठित एवं कृती रचनाकार हैं जिनका काव्य संतवाणी से मुखरित है और ज्ञान, सदाचार, धर्म, दर्शन आदि की अंतःसलिला से इन भाषाओं का साहित्य रससिक्त है। यहाँ पर कश्मीरी साहित्य की आदि संत–कवयित्री ललद्यद के कतिपय पद/वाक् प्रस्तुत किए जाते हैं जिनकी तुलना हिंदी के इसी काल के कवियों कबीर, दादू आदि से करके यह प्रतिपादित किया जा सकता है कि भारतीय भाषाओं, विशेषकर कश्मीरी–हिंदी के अंतर्संबंधों में कितनी निकटता अथवा एकसूत्रता है–

हिंदी उदाहरण

मैमंता मन मारि रे, घट ही माहैं घेरि
जब ही चाले पीठि दे, अंकुश दै दे फेरि। (कबीरदास)

कश्मीरी उदाहरण

मार दे काम, क्रोध और लोभ को
नहीं तो मारेंगे ये हत्यारे पलट के,
खाने को दे इन्हें सुविचार–संयम
तब होंगे सब के सब असहाय ये। (ललद्यद)

हिंदी उदाहरण

कबीर पढ़िबो दूरि करि, पुस्तक देइ बहाइ,
बावन आषिर साधि करि,ररै ममै चित्त लाइ। (कबीरदास)

कश्मीरी उदाहरण

अविचारी पढ़ते हैं पोथियों को
ज्यों पिंजरे में तोता रटता 'राम–राम',
दिखलावे को ये ढोंगी पढ़ते हैं गीता
पढ़ी है मैंने गीता, पढ़ रही हूँ अविराम। (ललद्यद)

हिंदी उदाहरण

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल,
जो बकरी को खात है, ताको कौन हवाल? (कबीरदास)

कश्मीरी उदाहरण

तेरी लाज ढकता, शीत से भी रक्षा करता है
स्वयं; बेचारा दुध तृणजल का करता आहार है,

फिर दिया किसने तुझे यह उपदेश, रे पंडित!
जो अचेतन पत्थर पर तू चेतन बकरे को बलि चढ़ाता है। (ललद्यद)

हिंदी उदाहरण

कोई दौड़े द्वारिका, कोई कासी जांहि
कोई मथुरा को चलै, साहिब घट ही मांहि। (कबीरदास)

कश्मीरी उदाहरण

प्रभु को ढूंढने घर से निकली मैं
ढूंढते–ढूंढते रात–दिन गए बीत,
तब पंडित/प्रभु को निज घर ही में पाया
बस, मुहूर्त्त साधना का निकल आया मेरे मीत! (ललद्यद)

हिंदी उदाहरण

सब घट एकै आत्मा, क्या हिंदू मुसलमान (दादू)

कश्मीरी उदाहरण

शिव व्याप्त हैं जल–थल में
तू हिंदू–मुसलमान में भेद न जान,
प्रबुद्ध है तो पहचान अपने आप को
यही साहिब से है तेरी पहचान (ललद्यद)

समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्यों में मध्यकाल में कथ्य की विविधता या फिर प्रतिपाद्य विषयों की अधिकता के कारण पूर्वोक्त अंतर्संबंधों के तंतु बिखरे हुए अवश्य मिलते हैं किंतु आधुनिककाल में, विशेषकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के आसपास से, ये संबंध पुनः संगठित और एकनिष्ठ होते हुए दिखाई पड़ते हैं। परिस्थितियाँ और परिवेश भिन्न होते हुए भी काव्य–चेतना के स्तर पर समस्त भारतीय भाषाओं में रचित इस काल की रचनाओं की अभिव्यक्ति में उल्लेखनीय समानता मिलती है। ध्यान से देखा जाए तो भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम के महायज्ञ में जहाँ देश के बड़े–बड़े नेता, समाज–सेवी, देशभक्त आदि आहुतियाँ दे रहे थे, वहीं विभिन्न भारतीय भाषाओं के कवि एवं लेखक भी अपनी क़लम की ताक़त से इस राष्ट्रव्यापी जन–आंदोलन को मजबूत कर रहे थे। टैगोर/बांग्ला, भारती/तमिल, गोपबन्धुदास/ओड़िया, जोश मलीहाबादी/उर्दू, श्रीश्री/तेलुगु, वीरसिंह/पंजाबी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त व माखनलाल चतुर्वेदी/हिंदी, गुलाम अहमद महजूर, अब्दुल अहद आज़ाद व दीना नाथ नादिम/कश्मीरी आदि, ऐसे कुछ रचनाकार हैं, राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में जिनके योगदान ने समूचे भारतीय साहित्य को ऊर्जा प्रदान कर स्वतंत्रता–संग्राम के महायज्ञ में मंत्रोच्चार का कार्य किया।

अन्य भारतीय भाषाओं की तरह कश्मीरी भाषा में भी राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ी काव्यचेतना की मुखरता साफ तौर पर देखने को मिलती है। इतना जरूर है कि

राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा की अनुवर्ती बनकर यह चेतना 'देसी आंदोलन' के रूप में अधिक मुखर रही। स्वतंत्रतापूर्व रची हिंदी कविता की तरह ही कश्मीरी कविता में भी राष्ट्रीयता एवं जनचेतना की अनुगूँज सुनाई पड़ती है। बीसवीं शती के प्रारंभ में कश्मीर सिक्खों के दौर से गुजरकर डोगरा शासकों की सामंती शासन–व्यवस्था की जकड़ में आ चुका था और जम्मू व कश्मीर राज्य की स्थापना भी हो चुकी थी। उधर, अंग्रेज़ी शिक्षा और सभ्यता तथा भारतीय नवोन्मेष का प्रभाव इस भू–भाग में भी परिलक्षित होने लगा था। कालांतर में रेज़ीडेंटशाही के दमनचक्र के विरुद्ध कश्मीरियों ने कमर कस ली और अपने ऊपर हो रही ज्यादतियों का विरोध किया। राजनीतिक व सामाजिक दृष्टि से पराभूत तत्कालीन कश्मीरी जनमानस में नवचेतना का संचार किया गुलाम अहमद महजूर, अब्दुल अहद आज़ाद, नूर मुहम्मद रोशन, दीनानाथ नादिम, अर्जुन देव मजबूर आदि कवियों ने। हिंदी में जो कार्य साहित्य के मोर्चे से सर्वश्री भारतेंदु हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी आदि कर रहे थे, वही कार्य कश्मीरी में महजूर, आज़ाद, रोशन, नादिम आदि कर रहे थे। राजनीति के मोर्चे पर जहाँ शेख अब्दुल्ला आदि नेताओं की अगुआई में डोगरा शासकों के सामंती वर्ग को चुनौती देता हुआ राजनीतिक आंदोलन तीव्र हो चला, वहीं साहित्य के मोर्चे पर महजूर, आज़ाद, नादिम आदि ने जनजागरण व राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत सुंदर कविताएँ लिखीं। 'नया कश्मीर' ज़िंदाबाद का नारा घर–घर गूँजने लगा। शायर–ए–कश्मीर 'महजूर' ने इकबाल के 'सारे जहाँ से अच्छा–––' की तर्ज़ पर 'गुलशन वतन छु म्योनुय' / गुलशन है वतन मेरा..', 'वलो हो बागवानो...'ओ बागबान,आओ...' आदि कविताओं में अपने मन व समय के अंतर्संघर्षों को वाणी दी। 1938 की सांकेतिक क्रांति के उद्घोषक के रूप में 'महजूर' ने प्रतीकों के माध्यम से स्वाधीनता की बात कही–

रे बागवान! तू नव–बहार की शान पैदा कर,
खिलें गुल, पंख फैलाए बुलबुल–
ऐसा तू सामान पैदा कर।
तूफान ला, भूकंप ला या फिर तू
गर्जन पैदा कर–––।

'महजूर' ने देशभक्ति से ओतप्रोत जो कविताएँ लिखीं उन्हें पढ़ व सुनकर कश्मीरी जनता में नई उमंग व स्फूर्ति का संचार हुआ। 'नोव कश्मीर' कविता में महजूर ने 'नए कश्मीर' के सपनों को यों संजोया–

काँटे करेंगे बाग की रखवाली
ताकि फूलों को तोड़कर न ले जाए कोई,
भेद मिट जाएगा–
छोटे–बड़े,कमज़ोर–ताकतवर का

सभी एकसमान होंगे, और
आदमी इंसान बन जाएगा।
महज़बदारों के हथियार खोल दिए जाएँगे
ताकि एक–दूसरे के साथ लड़ते–मरते न रहें, और
मज़हब मात्र एक चिह्न रह जाएगा।

आगे चलकर 'महजूर' की कविता में उद्वेलन एवं क्रांति के स्वर गूँज उठे। वे निर्भय होकर कहने लगे–

रे भूख से पीड़ित मज़दूर!
तू गफ़लत की नींद से जाग,
उठ और अपने पैरों पर खड़ा होना सीख।
जुल्म ने तुझ को पौरुषहीन बना दिया है–
देख, इंकलाब का प्रकाश लेकर नया सूरज
पूर्व से उगा है..... ।

हिंदी में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कविता में भी कुछ ऐसे ही तेवर देखने को मिलते हैं–

धरती हिलाकर नींद भगा दे
वज्रनाद से व्योम जगा दे
दैव, और कुछ लाग लगा दे। (स्वदेश संगीत)

अब्दुल अहद 'आज़ाद' के साथ आधुनिककालीन कश्मीरी कविता का एक ऐसा युग जुड़ा हुआ है जिसमें राष्ट्रीय संचेतना,देशभक्ति तथा जनजागरण के समवेत स्वर गूँजते मिलते हैं। उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद ने जिस तरह अपने उपन्यासों द्वारा अपने युग का चित्रण किया था, ठीक उसी तरह 'आजाद' ने अपनी कविताओं द्वारा अपने समय का प्रतिनिधित्व किया। प्रगतिवादी एवं राष्ट्रीय संचेतना से ओतप्रोत 'आज़ाद' की कविताओं में कवि की बेचैनी एवं विक्षुब्ध हृदय से निकली क्रांति की उद्दाम धड़कनें समाहित हैं–

रे देशवासी!
तेरे सजदा–ए–नियाज़मंदी से
ज़मीन–ओ–आसमान हिल सकते थे, मगर–
हाय अफसोस! तू ने वह सजदा गैर–मुल्की हाकिमों की
दहलीज़ पर कर दिया नज़र।
फर्ज़ को भुलाकर तूने
खून किया इंसानियत का–
क्या यही उचित है?

आज़ाद के अन्य प्रयाण व भक्ति गीतों में 'म्योन वतन', 'हा वतनदारो', 'नग्मा–ए–बेदारी', 'इनकलाब', शायर – लीड़र – कौम, 'महात्मा गांधी', 'शिकवा–कश्मीर', 'सरमायरदारी' आदि काफी प्रसिद्ध हैं।

यहाँ पर इसी काल के हिंदी कवियों की कुछ कविताओं के उदाहरण देना अनुचित न होगा जो राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत कविताएँ लिख रहे थे और जिनका वर्ण्य–विषय लगभग वही था जो कश्मीरी कवियों का रहा –

1. *किस के आगे हाथ पसारें*
   कौन हमें है देने वाला?
   अपनी छिनी हुई आज़ादी
   भारत खुद ही लेने वाला। (जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद')
2. *ले अंगड़ाई उठ हिले धरा*
   कर निज स्वर में निनाद
   तू शैल विराट्! हुंकार भरे
   फट जाए कुहा, भागे प्रमाद। (रामधारी सिंह 'दिनकर')
3. *प्राण प्रेम का खेल हो चुका अब आकर्षणहीन पुराना*
   ब्रज की बंशी छोड़ हमें अब कुरुक्षेत्र का शंख बजाना। (हरिकृष्ण प्रेमी)

ऊपर दिए गए उदाहरणों का ध्यान से अध्ययन करने पर इस सुखद निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि हिंदी और कश्मीरी में प्रत्यक्षतया भाषा–भेद होते हुए भी दोनों भाषाओं में कथ्य के स्तर पर आशातीत आंतरिक समानता है और यह समानता उनके अंतर संबंधों को न केवल प्रमाणित करती है अपितु पुष्ट भी करती है।

यहाँ पर यह रेखांकित करना अनुचित न होगा कि भारतीय वाङ्मय के दो अनुपम ग्रंथों 'रामायण' और 'महाभारत' ने लगभग सभी भारतीय भाषाओं में स्थान पाकर इस बात को सिद्ध कर दिया है कि इस देश में प्राचीनकाल से वैष्णव भक्ति, विशेषकर राम और कृष्ण भक्ति की अंतःसलिला ने भारतीय साहित्य को न केवल सिंचित किया है अपितु सभी भारतीय भाषाओं को जोड़ने, उनमें पारस्परिक सद्भाव एवं सौमनस्य को बढ़ाने में अद्भुत योगदान दिया है। कश्मीरी भाषा की लोकप्रिय रामायण प्रकाशराम कृत 'रामावतारचरित' इस बात का प्रमाण है। भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ के लिए इस बहुमूल्य रामायण का हिंदी अनुवाद सहित देवनागरी में लिप्यंतरण इन पंक्तियों के लेखक ने 1975 में किया है। अपनी विशिष्ट भौगोलिक एवं सांस्कृतिक छवि–छटा को समेटते हुए भी यह रामायण उस मूल कथा से जुड़ी हुई है जिसका आधार वाल्मीकि कृत रामायण है। सीता–जन्म, राम द्वारा सीता परित्याग, मक्केश्वर प्रसंग, लंका–निर्माण प्रसंग, सीता का शंकरपुर गाँव में पृथ्वी–प्रवेश आदि कथा–विलक्षणताएँ कश्मीरी की इस लोकप्रिय रामायण के महत्त्व और सौंदर्य को कम नहीं करती अपितु बढ़ाती हैं। एक तरह से ये विलक्षणताएँ दो तरह की संस्कृतियों के

बीच अंतर संबंधों के सूत्रों को न केवल पुष्ट करती हैं अपितु नूतनता का भी उन्मेष करती हैं।

हिंदी–कश्मीरी के अंतर–संबंधों की व्याख्या करते समय एक बात स्पष्ट हो जाती है, और जो बड़ी महत्त्वपूर्ण है, कि कश्मीर में चूँकि काफी लंबे समय तक संस्कृत की यथेष्ट परंपरा रही है, इसलिए हिंदी का व्यवहार करने में यहाँ के भाषा–भाषियों ने कभी दिक्कत महसूस नहीं की। संभवतः यही कारण है कि यहाँ के कवियों ने जहाँ अपनी मातृभाषा कश्मीरी में कविताएँ रचीं, वहीं हिंदी में भी काव्यरचना की। कृष्णभक्त कवि परमानंद, मास्टर ज़िंदा कौल, पृथ्वीनाथ पुष्प, हरिकृष्ण कौल, रतनलाल शांत आदि के नाम इस संदर्भ में गिनाए जा सकते हैं। कविवर परमानंद (1791–1879) की हिंदी में रचित यह कविता देखिए–

श्रीकृष्ण का जन्म होने पर भगवान शंकर के मन में उन्हें देखने की इच्छा हुई। वे एक योगी का रूप धारणकर तथा हाथ में भिक्षा–पात्र लिए गोकुल गाँव की ओर चल दिए–

भिख्या माँगन साँग बनायो, आयो सदासिव गोकुल में।
दर्शन करने को ध्यान धरायो, आयो सदाशिव गोकुल में।
नंगे सिर और नंगे पैर, नंदिकेश्वर का सवारी था,
अंग में भस्मा भभूत चढ़ाए, आयो सदाशिव गोकुल में।
हाथ में त्रिशूला, कान में मुंदरा, सुदर मुख को करा कराल,
घंटा शब्द और शंख बजायो, आयो सदाशिव गोकुल में।
गल में नागेंद्र, हारा पग में, जल में जैसे उठी तरंग,
गोकुल में भूकंप मचायो, आयो सदाशिव गोकुल में... ।।

परमानंद ने पंजाबी–हिंदी–कश्मीरी के मिश्रित रूप में भी कुछ सुंदर कविताएँ लिखी हैं।

एक बात और। हिंदी की बढ़ती हुई लोकप्रियता (इलैक्ट्रॉनिक मीडिया की बदौलत) ने कश्मीरी–भाषी समुदाय को अपनी भाषा में हिंदी के अनेक शब्दों का व्यवहार करने की यथेष्ट प्रेरणा दी है। ऐसा हिंदी के दबाव के कारण नहीं वरन् उसकी हर क्षेत्र में बढ़ती हुई व्यावहारिक उपयोगिता के कारण है। संरचना एवं व्याकरणिक दृष्टि से भी चूँकि हिंदी और उर्दू में कोई विशेष अंतर नहीं है, इसलिए यहाँ के भाषा–भाषियों में हिंदी के प्रति कोई दुराग्रह भी नहीं है। रूप, जनता, राजनीति, भारत, प्रधानमंत्री, युद्ध, देश, भाषा, अध्यक्ष, विधान सभा आदि ऐसे अनेक शब्द हैं जो इधर, कश्मीरी भाषियों की जुबान पर चढ़ गए हैं और इन शब्दों का अपनी भाषा में प्रयोग करते समय जन–सरोकारों से संबंध रखने वाला शिक्षित कश्मीरी भाषी न केवल अपने को मुख्यधारा से जुड़ा हुआ पाता है, अपितु इन शब्दों का प्रयोग करने पर आनंदित भी होता है। यहाँ पर मैं कश्मीरी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री अमीन कामिल की उन

पंक्तियों को उद्धृत करना चाहूँगा जो उन्होंने आज से लगभग 40 वर्ष पहले एक इंटरव्यू के दौरान मुझसे कही थीं– *'हम तो नहीं, पर हमारी संतान को अब हिंदी सीखनी चाहिए क्योंकि यही वह भाषा है जो हमें और हमारे बच्चों को समूचे देश के साथ जोड़ सकती है––'*। कामिल साहब के कथन में जो सहमति का भाव दर्ज है, वह निश्चित रूप से किसी दबाव या विवशता का सूचक नहीं है, अपितु हिंदी की बढ़ती हुई लोकप्रियता एवं उसकी सर्वग्राह्यता के कारण है। एक सूचना के अनुसार आज कश्मीर में, राजनीतिक अफ़रा–तफ़री के बावजूद, वहाँ के विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्ययन–अध्यापन हो रहा है, हिंदी में शोधकार्य हो रहा है, विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिंदी विभाग से 'वितस्ता' नाम की हिंदी पत्रिका निकल रही है आदि–आदि।

यहाँ पर भारतीय भाषाओं में उपलब्ध अंतर संबंधों की व्याख्या के प्रसंग में यदि भाषाई–सद्भावना पर थोड़ा–सा विचार लें तो अनुचित न होगा। भारत में स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद ज्यों–ज्यों शिक्षा का प्रचार–प्रसार बढ़ा तथा व्यक्ति की दृष्टि व्यापक होती चली गई, त्यों–त्यों अपने देश तथा अपने देशवासियों के बारे में और अधिक जानने की इच्छा उसमें बलवती होती चली गई। उधर, देश के विचारकों, राजनेताओं, हितचिंतकों आदि का ध्यान इस ओर भी गया कि विविधता वाले इस देश में सांस्कृतिक एकता अथवा सद्भाव कैसे कायम हो? यहाँ अलग–अलग धर्म हैं, अलग–अलग जातियाँ हैं, अलग–अलग भाषाएँ हैं और अलग–अलग जीवन–शैलियाँ हैं। इन सबके बीच सामंजस्य बिठाना बहुत जरूरी समझा गया। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'अनेकता में एकता' वाली बात को रेखांकित किया था।

आज देश के सामने यह प्रश्न चुनौती बनकर खड़ा है कि बहुभाषी भारतवर्ष देश की साहित्यिक–सांस्कृतिक धरोहर को कैसे अक्षुण्ण रखा जाए? देशवासी एक–दूसरे के निकट आकर आपसी मेलजोल और भाई–चारे की भावनाओं को कैसे आत्मसात् करें? वर्तमान परिस्थितियों में यह और भी आवश्यक हो जाता है कि देशवासियों के बीच सांमजस्य और सद्भाव की भावनाएँ विकसित हों ताकि प्रत्यक्ष विविधता के होते हुए भी हम अपनी सांस्कृतिक समानता एंव सौहार्दता के दर्शन कर अनेकता में एकता की संकल्पना को मूर्त रूप प्रदान कर सकें। भाषाई सद्भावना इस दिशा में एक महती भूमिका अदा कर सकती है। सभी भारतीय भाषाओं के बीच सद्भावना का माहौल बने, वे एक–दूसरे से भावनात्मक स्तर पर जुड़ें और उनमें पारस्परिक आदान–प्रदान का संकल्प दृढ़तर हो, यही भारत की भाषाई सद्भावना का मूलमंत्र है। इस पुनीत एवं महान् कार्य के लिए संपर्क भाषा हिंदी के विशेष योगदान को हमें स्वीकार करना होगा। यही वह भाषा है जो संपूर्ण देश को एकसूत्र में जोड़कर राष्ट्रीय एकता के पवित्र लक्ष्य को साकार कर सकती है। स्वामी दयानंद ने ठीक ही कहा था, *''हिंदी के द्वारा ही सारे भारत को एकसूत्र में पिरोया जा सकता है।''* यहाँ पर यह स्पष्ट कर

देना आवश्यक है कि हिंदी को ही भाषाई सद्भावना की संवाहिका क्यों स्वीकार किया जाए? कारण स्पष्ट है। हिंदी आज एक बहुत बड़े भू–भाग की भाषा है। इसके बोलने वालों की संख्या अन्य भारतीय भाषा–भाषियों की तुलना में सर्वाधिक है। लगभग 50 करोड़ व्यक्ति हिंदी बोलते हैं। इसके अलावा अभिव्यक्ति, रचना–कौशल, सरलता–सुगमता एंव लोकप्रियता की दृष्टि से भी वह एक प्रभावशाली भाषा के रूप में उभर चुकी है और उत्तरोत्तर उसका प्रचार–प्रसार बढ़ता जा रहा है। अतः देश की भाषाई सद्भावना एवं एकात्मकता के लिए हिंदी भाषा के बहुमूल्य महत्त्व एंव वर्चस्व को हमें स्वीकार करना होगा।

भाषाई सद्भावना की जब हम बात करते हैं तो 'अनुवाद' की तरफ हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है। दरअसल, अनुवाद वह साधन है जो 'भाषाई सद्भावना' की अवधारणा को न केवल पुष्ट करता है अपितु भारतीय साहित्य एवं अस्मिता को गति प्रदान करने वाला एक सशक्त और आधारभूत माध्यम है। यह एक ऐसा अभिनंदनीय कार्य है जो भारतीय साहित्य की अवधारणा से हमें परिचित कराता है तथा हमें सच्चे अर्थों में भारतीय बनाम क्षेत्रीय संकीर्णताओं एंव परिसीमाओं से ऊपर उठाकर 'भारतीयता' से साक्षात्कार कराता है। देश की साहित्यिक–सांस्कृतिक विरासत के दर्शन अनुवाद से ही संभव हैं। आज यदि सुब्रहमण्य भारती, महाश्वेता देवी, उमाशंकर जोशी, विजयदान देथा, कुमारन् आशान्, वल्लत्तोल, ललद्यद, हब्बाखातून, सीताकांत महापात्र, टैगोर आदि भारतीय भाषाओं के इन यशस्वी लेखकों की रचनाएँ अनुवाद के ज़रिए हम तक नहीं पहुँचती, तो भारतीय साहित्य संबंधी हमारा ज्ञान कितना सीमित, कितना क्षुद्र होता, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

सच पूछा जाए तो अनुवाद–कर्म राष्ट्रसेवा का कर्म है। यह अनुवादक ही है जो दो संस्कृतियों, राज्यों, देशों एवं विचारधाराओं के बीच 'सेतु' का काम करता है। और तो और यह अनुवादक ही है जो भौगोलिक सीमाओं को लांघकर भाषाओं के बीच सौहार्द, सौमनस्य एवं सद्भाव को स्थापित करता है तथा हमें एकात्मकता एवं वैश्वीकरण की भावनाओं से ओतप्रोत कर देता है। इस दृष्टि से यदि अनुवादक को समन्वयक, मध्यस्थ, संवाहक, भाषाई–दूत आदि की संज्ञा दी जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी। कविवर बच्चन जी, जो स्वयं एक कुशल अनुवादक रहे हैं, ने ठीक ही कहा है कि अनुवाद दो भाषाओं के बीच मैत्री का पुल है। वे कहते हैं– *''अनुवाद एक भाषा का दूसरी भाषा की ओर बढ़ाया गया मैत्री का हाथ है। वह जितनी बार और जितनी दिशाओं में बढ़ाया जा सके, बढ़ाया जाना चाहिए।'' (साहित्यानुवादः संवाद और संवेदना, डॉ. आरसू पृ. 85)*

कश्मीरी–हिंदी के अंतर संबंधों को पुष्ट करने में अनुवाद ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनुवाद दोनों ओर से हुआ है। कश्मीरी से हिंदी में तथा हिंदी से कश्मीरी

में भी। हाँ, यह बात अलग है कि कश्मीरी से हिंदी में अनुवाद–कार्य मात्र में अधिक और सिलसिलवार तरीके से हुआ है। कश्मीरी की लोकप्रिय रामायण 'रामावतारचरित', संत कवयित्री ललद्यद के वाख/वचन, नंद ऋषि के श्रुक/श्लोक, हब्बाखातून के प्रेमगीत, महजूर, आज़ाद, दीनानाथ नादिम, ज़िंदा कौल, आदि की कविताएँ, अख्तर मोही उद्दीन, बंसी निर्दोष, अमीन कामिल, हरिकृष्ण कौल आदि की कहानियाँ हिंदी में अनुदित हो चुकी हैं। इसी प्रकार हिंदी के रचनाकार पंत, प्रेमचंद, प्रसाद आदि अनुवाद के माध्यम से कश्मीरी साहित्य जगत् तक पहुँच चुके हैं। जम्मू व कश्मीर राज्य की कल्चरल अकादमी ने कई वर्ष पूर्व एक प्रकाशन–योजना बनाई थी जिसके अंतर्गत कश्मीरी भाषा की श्रेष्ठ कहानियों, कविताओं, लोकगीतों, लोक–कथाओं आदि को हिंदी में रूपांतरित करने का काम अकादमी ने हाथ में लिया था। निसंदेह यह कश्मीरी द्वारा हिंदी के प्रति बढ़ाया गया मैत्री का हाथ था और इसका परिणाम भी बहुत अच्छा रहा। इसी योजना के अंतर्गत इन पंक्तियों के लेखक ने कश्मीरी के प्रसिद्ध कवि गुलाम अहमद महजूर की श्रेष्ठ कविताओं का हिंदी में अनुवाद किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस अनुवाद के माध्यम से हिंदी जगत् शयर–ए–कश्मीर की रचनाओं से पहली बार परिचित हुआ और दोनों भाषाओं के बीच अंतरसंबंधों को पुष्ट होने का अवसर मिला।

ऊपर विस्तार से हिंदी और कश्मीरी के बीच अंतर संबंधों को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि हिंदी समन्वय और एकता की भाषा है। इसने प्रायः सभी भारतीय भाषाओं से सामंजस्य स्थापित कर अपने स्वरूप को संवर्द्धित किया है। भारतीय भाषाओं को अपने साथ लेकर चलने की उसकी क्षमता अद्भुत है। अपनी इसी विशेषता के कारण, कुछ अपवादों को छोड़कर, वह समूचे देश में उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक जन–जन की भावाभिव्यक्ति का सहज माध्यम बनी हुई है। आशा की जानी चाहिए कि भविष्य में भारतीय भाषाओं से अपने अंतरसंबंधों के आधार पर उसका व्यक्तित्व और निखरेगा।

❑❑❑

संपर्कः

शिबन कृष्ण रैणाः– 2/537 अरावली विहार (अलवर) राजस्थान–301001, ईमेलः skraina123@gmail.com, मो. 9414216124

विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियों में चित्रित किसान जीवन का बदलता स्वरूप

देबी देबांगना*
एच. सुवदनी देवी**

हिंदी साहित्य के प्रमुख लेखक विवेकी राय और असमिया साहित्य के महिम बोरा ने समकालीन समाज को अपने कहानियों के माध्यम से चित्रित किया है। दोनों लेखक अपनी कहानियों के माध्यम से साधारण लोगों तक अपनी बात पहुँचाने में सक्षम हुए हैं। प्रेमचंद द्वारा हिंदी साहित्य में ग्रामीण जीवन और किसान की स्थिति का चित्रण यथार्थपरक रूप में किया गया है। मधुरेश ने अपनी पुस्तक 'हिंदी कहानी का विकास' में लिखा है *"भारतीय ग्राम्य–जीवन का अंकन प्रेमचंद के लिए आंदोलन या नारा नहीं था। प्रेमचंद इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि अपनी सारी सादगी, सहजता और स्वेच्छा के बावजूद ध्वंसप्रायः सामंती–व्यवस्था और नवागत पूँजीवाद के दोहरे दबाव के फलस्वरूप भारतीय किसान की नियति को बदल पाने के लिए एक महत्त्व और निर्णायक संघर्ष अपेक्षित है"*[1]। किसान जीवन की सादगी, सरलता एवं सहजता को सामंती व्यवस्था ने किस रूप से ग्रासित किया है प्रेमचंद ने उसे दिखाया है। सामंती एवं पूँजीवादी व्यवस्था के कारण किसान अपने अधिकारों से वंचित होने लगे थे। ग्रामीण किसान की सामाजिक स्थिति को प्रेमचंद ने अपने साहित्य में प्रमुखता से उठाया है। विवेकी राय एक ऐसा प्रमुख नाम हैं, जिन्होंने पूर्वांचल की मिट्टी, बोली और किसान की आत्मा को अपनी कहानियों में जीवंत रूप प्रदान किया है। उनका साहित्य गाँव के किसान के संघर्ष, सपनों, विषमताओं और सांस्कृतिक चेतना का दस्तावेज है। उनकी कहानियाँ ग्रामीण जीवन पर आधारित हैं, जिसमें किसानों के जीवन के संघर्षों को चित्रित किया गया है। विवेकी राय और महिम बोरा ने अपनी कहानियों के माध्यम से किसान जीवन के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक आयामों को दर्शाया है। किसानों के

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, इंफाल, मणिपुर
** आचार्य हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, इंफाल, मणिपुर

1. मधुरेश, हिंदी कहानी का विकास, लोकभारती प्रकाशन, 2020 ई.

जीवन संघर्ष एवं बदलते समय में उनके सामने आने वाली तमाम चुनौतियों पर दोनों ही कहानीकारों ने ध्यान केंद्रित किया है। उनकी कहानियाँ साधारणतः ग्राम्य जीवन पर केंद्रित हैं, जिसमें किसानों के जीवन की गरीबी, शोषण, पलायन आदि संवेदनशील पहलूओं को शामिल किया गया है। समाज के बिना साहित्य अधूरा है। समाज ही साहित्य के लिए कथानक बनाता है। विवेकी राय और महिम बोरा ने समकालीन समाज के एक महत्त्वपूर्ण अंग्र किसानों के जीवन के विभिन्न पहलूओं को अपनी कहानियों के माध्यम से चित्रित किया है।

समाज की आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था के केंद्र किसान हैं। भारत एक कृषिप्रधान देश है। भारत की आत्मा और आबादी ग्रामीण जीवन पर निर्भरशील है, जिसके कारण अधिकांश लोग कृषि से जुड़े होते हैं। किसानों को भारत की आत्मा कहा जा सकता है, जो दिन–रात खेतों में काम करके देश के लोगों के सामने दो वक्त की खाने की व्यवस्था करते हैं। भारत की अर्थनीति में किसानों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

विवेकी राय का साहित्य गाँव और किसान जीवन से जुड़ा है। उनकी कहानियों में किसान केवल एक चरित्र नहीं है, वह एक संस्कृति है। उनकी कहानियों में किसान जीवन का चित्रण गरीबी और दुःख तक सीमित नहीं, बल्कि उसमें संघर्ष, सामूहिकता, मानवीय रिश्तों और ग्रामीण सौंदर्य का समावेश है। उनकी रचनाओं में गाँव की मिट्टी की महक पाठकों को महसूस होती है। विवेकी राय ने हिंदी एवं भोजपुरी दोनों में अपना योगदान दिया है। हिंदी साहित्य के सभी विधाओं में उनका साहित्य प्राप्त है। कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, आलोचना एवं कथेतर गद्य में भी विवेकी राय का महत्त्वपूर्ण योगदान है। ग्रामीण जीवन, ग्रामीण प्रकृति का साकारात्मक और नकारात्मक रूप उनके साहित्य में देखा जा सकता है। स्वतंत्रता के बाद भारत के ग्रामीण जीवन की दयनीय स्थिति, लोक जीवन में आने वाली परिवर्तन, लोगों में बढ़ने वाली दूरियाँ, संबंधों में आने वाली तिक्तता, मोहभंग एवं सांस्कृतिक परिवर्तन को विवेकी राय ने अपने साहित्य के माध्यम से दिखाया है। वेदप्रकाश अमिताभ के अनुसार *"अपनी जमीन से जुड़ी हुई रचना संवेदना, ग्राम जीवन के प्रति अकृत्रिम लगाव और गाँव के प्रति चिंता की आत्मीय किंतु सर्जनात्मक अभिव्यक्ति डॉ. विवेकी राय के लेखन के प्रमुख आकर्षण बिंदु है"*[2]। विवेकी राय का साहित्य जमीन से जुड़े हुए साधारण लोगों के जीवन को लेकर लिखा गया साहित्य है। शहरों के कृत्रिमता से दूर साधारण गाँव के लोगों की संवेदना, प्रेम की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति विवेकी राय की कहानियों की मूल विशेषता है।

'जीवन परिधि', 'नई कोयल', 'गूँगा जहाज', 'बेटे की बिक्री', 'कालातीत', 'चित्रकूट के घाट पर', 'अतिथि' विवेकी राय कहानी संग्रह हैं। गाँव की मिट्टी से

2. वेदप्रकाश अमिताभ, अपनी बात, अक्षर बीज की हरियाली, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2002 ई.

जुड़ी संवेदनशीलता विवेकी राय के साहित्य में देखी जा सकती है। विवेकी राय के साहित्य में भारतवर्ष के गाँवों की सच्ची तस्वीर हमें देखने को मिलती है। किसानों की जीवन शैली बहुत ही साधारण है। उनके जीवन का आधार प्रकृति, खेती, जंगल, पहाड़, नदी है। आर्थिक दृष्टि से वे गरीब तो हैं परंतु प्रकृति ने उनको सबसे अधिक धनी बनाया है। विभिन्न सुख–सुविधाओं से वंचित उनका जीवन, समाज में रहने वाले जमींदार और अधिक कष्टकर बना देते हैं। परंतु वे कभी अपने कर्मों से पीछे नहीं हटे। तमाम कठिनाईयों, शोषण के बाद भी वे अपना काम निरंतर करते रहे। विवेकी राय अपनी कहानियों में ग्राम्य समाज एवं संस्कृति में किसानों के श्रम और उनके समर्पित व्यक्तित्व को उजागर करने में सफल हुए हैं।

महिम बोरा की पहली कहानी 'बरदौचिला' पत्रिका में प्रकाशित हुई। उन्होंने असमिया कहानी, कविता, उपन्यास, हास्य–व्यंग्य साहित्य, निबंध, बाल साहित्य, अनूदित साहित्य, संपादित पुस्तक, रेडियो नाटक आदि सभी विधाओं में अपना योगदान दिया है। साहित्यकार अपने साहित्य सृजन के समय अपनी जीवन परिक्रमा, समाज के प्रति अपने दृष्टिकोण, अपने बचपन की यादें आदि अनेक स्मृतियों को अपनी साहित्यकृतियों में स्थान देते हैं एवं अपने अनुभवों को साझा करते हैं। महिम बोरा ने भी अपने साहित्य में अपने बचपन, ग्राम्यजीवन की तमाम अनुभूतियों एवं अनुभवों को अपने साहित्य में स्थान दिया। उन्होने अपने साहित्य में असमिया समाज–जीवन का जो वर्णन किया है, वह कहीं न कहीं उनके अनुभवों की ही प्रतिछाया है। महिम बोरा के साहित्य सृजन की आलोचना करते समय उनकी जीवन–परिक्रमा एवं उनके जीवन दर्शन की आलोचना करना भी महत्त्वपूर्ण है। महिम बोरा के कहानी संग्रह इस प्रकार हैं– 'काठनि बारी घाट', 'देहा गरका प्रेम', 'मई पिपलि आरू पूजा', 'बहुभूजी त्रिभूज', 'एखन नदीर मृत्यु', 'राति फुला फुल', 'बरयात्री', 'मोर प्रिय गल्प'।

स्वतंत्रता से पूर्व ही महात्मा गांधी द्वारा किए गए गाँवों में समाज सुधार, ग्राम सुधार, साम्यवादी और समाजवादी हवा चलने लगी थी जिसमें जमींदार और किसानों के बीच एक नया संघर्ष सामने आया था। स्वतंत्रता के बाद विभिन्न कानूनों के आगमन से इनमें भारी मात्रा में बदलाव आया। सन् 1952 ई. में जब जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ, उसके पश्चात किसानों में आर्थिक मुक्ति की सुखानुभूति की लहर छा गई। जमींदारी–अत्याचार का वर्णन विवेकी राय ने अपनी कहानी "मछरिया" में किया है। कहानी में मंजु प्रसाद, गाँव का धनी व्यक्ति पाँच सौ बीघे जमीन का मालिक था। नए कानून के पारित होने पर उसने अपने ही घर–परिवार के लोगों में उन जमीनों को बाँट दिया था। डॉ. मांधाता राय के अनुसार *"विवेकी राय ने केवल दैवीय एवं मानवीय विपत्तियों का कोरा उल्लेख करने के बजाय उनसे प्रभावित किसानों के थके–हारे, मुरझाए– बोझिल मन की हर उदास गतिविधि को*

परत–दर–परत उघाड़कर कथ्य को और धराधर, गहरा और नुकीला बनाया है जो पढ़ने के बाद अपनी कसक पाठकीय मन पर सदा के लिए छोड़ जाते हैं"[3]। विवेकी राय के 'गूंगा जहाज' कहानी संग्रह में स्वतंत्रता के बाद की गाँवों में किसानों की दयनीय स्थिति को दर्शाया गया है। सरकार द्वारा पारित विभिन्न कानून साधारण लोगों तक कभी पहुँच ही नहीं पाए। साधारण किसान अपनी गरीबी से जुझते रहे। विवेकी राय ने अपने कहानियों के माध्यम से साधारण लोगों की एवं किसानों की व्यथा को दिखाया है। कांग्रेस द्वारा "गरीबी हटाओं" नारा हर गाँव तक गया परंतु असल जिंदगी में साधारण लोगों की गरीबी नहीं हटी बल्कि वह एक चुनावी नारा बनकर रह गया। आजादी के इतने साल बाद भी गाँव के लोगों की स्थिति दयनीय थी। सरकार से साधारण लोगों का मोहभंग आरंभ हो चुका था। विवेकी राय ने 'चुनाव–चक्र' कहानी में साधारण लोगों की अनुभूतियों के साथ सरकारी लोगों के द्वारा खेले गए खेल को दिखाया है। कहानी का पात्र घुरहू अपनी व्यथा व्यक्त करके कहता है *"मालिक अधिक दिन बीत जाने पर बीज नहीं जमता है तो समझा जाता है कि सड़ गया अथवा जमते हुए मुरझा जाता है तो शंका होती है। बीस वर्ष देखते हो गया न?"*[4] लोगों में आरंभ होने वाले आजादी के मोहभंग को उपरोक्त कथन के माध्यम से दिखाया है। साधारण लोग भी प्रश्न करने लगे हैं कि आजादी के बीस साल बाद भी कोई परिवर्तन नहीं आया तो अब क्या परिवर्तन आएगा। लोगों ने सरकार से उम्मीदें छोड़ दी हैं।

महिम बोरा की कहानी 'एखन नदीर मृत्यु' में लेखक ने किसान के जीवन में अपनी जमीन की क्या महत्ता है, उसे दिखाया है। जमींदारों के बढ़ते कर ने साधारण लोगों को त्रासित कर दिया है। कहानी की पात्र नालिया की पत्नी कहती है *"माटि–बारी थका बोलाँते आमाके बुजाइछे यदिउ आमार माटिर मुदा मारि थौ आहिछे। निमख–तेल, रजार खाजानात लागि महाजनेइ माटि खिनि बेचि दियार ठीक करिछे। बाम माटि आगेये कलंगखन बोइ थकात एइ अंचलर पथारबिलाकत जिप आछिल, खेतिउ हौछिल। कलंग शुकाइ योवार लोगे लगे खेति एकेबारेइ नोहोवा ह'ल। नामत माटि थाकि योदि खाजानाटोवेइ नोलाय तेनेह'ले माटिगिरि हौ लाभ कि? ताके आमार ल'राहतँर देउताके कौछे, माटि–बारी बेचि एइ गाँव एरि उत्तरपारर फालेहे उठि याव लागिब"*[5]। अर्थात् अपनी खुद की जमीन रहने के बावजूद खाने का सामान और कर देते–देते नालिया के घर में पैसे के नाम पर कुछ नहीं बचता है। पहले जब कलंग नदी बहती थी तब उसके आस–पास के जगह भी खेत से भरे रहते थे परंतु जब से कलंग सूख गई तब से खेत भी धीरे–धीरे कम होते गए। जमीन तो है परंतु वह

3. विजय शिंदे, सामलगमला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2011 ई.
4. विवेकी राय, सामलगमला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2011 ई.
5. हिरेन गोहाँई (सं.), गल्प समग्रः महिम बोरा, बनलता, 2012 ई.

उपजाऊ नहीं रही, जिसके कारण नालिया अर्थात् उसका पति सोच रहा है कि जमीन बेचकर उत्तर दिशा की ओर चला जाए। जिस जमीन ने घर के लिए रोजी–रोटी दी और जिससे कर का जुगाड़ होता था, धीरे–धीरे वह जमीन केवल जमींदारों को कर देने के लिए ही रह गई है। उस जमीन की उपजाऊ शक्ति कम हो गई है। इसीलिए वे लोग अभी उस जमीन को जमींदार को बेचकर किसी अलग जगह चले जाने के बारे में सोच रहे हैं।

प्रकृति किसान के जीवन में सबसे बड़ी भूमिका निभाती है। प्रकृति पर ही किसान की पूरे साल की खेती निर्भर होती है। प्रकृति जिस तरह फसल देती है उसी तरह बाढ़ के माध्यम से सभी कुछ छीनकर भी ले जाती है। भारत में बाढ़ की समस्या किसानों के लिए बुरे सपने से कम नहीं है। परंतु प्रकृति के सामने सभी बराबर होते हैं। 'बाढ़ की यमदाढ़' में विवेकी राय की अन्य एक महत्त्वपूर्ण कहानी है, जिसमें बाढ़ की समय की स्थिति को दिखाया गया है। बाढ़ के आगमन के बाद लोग बाकी दुनिया से पिछड़ जाते हैं। *"गाँव वाले हैं कि जिनके धीरज की सीमा नहीं है। दो–तीन दिन तक तो कुछ चहल–पहल सी रही। डूबे हुए खेतों से साँवा, टाँगुन आदि छान–छानकर लाते थे। चारे के खेत से बैर बना–बनाकर बोझ–का–बोझ पानी में ढाठा तैराते लाते थे। जिन खेतों में अथाह पानी हो गया उनमें गोते लगा–लगाकर काटते थे। उस बुड़ाह पानी में काटना, इकट्ठा करना और बोझ बनाना और फिर तैरते हुए घसीटकर लाना, सब खतरे से भरा और मशक्कत का काम रहा। अब तो सब फसल डूबकर चौपट हो रही है, जो कुछ भी आ जाय, भगते भूत जी लँगोटी भली"*[6]। बाढ़ की समस्या किसानों के लिए एक दयनीय समस्या है। खेती पर निर्भर रहने वाले साधारण लोग और किसानों के सपने तहस–नहस हो चुके थे। किसानों के सामने से ही हरा–भरा खेत पानी से भर गया। दो वक्त के खाने के लिए लोग तरस रहे थे। जो प्रकृति अपनी हरियाली से किसानों का जीवन रंगीन बनाकर रखती थी वही अभी त्रास का कारण बन चुकी है। बाढ़ की समस्या किसानों के जीवन की सबसे बड़ी चुनौती बन जाती है। इसी तरह उनकी कहानी 'आकाश वृत्ति'. 'हाय रे परान', 'आदमी का पइया' में किसानों के जीवन की दूर्दशाओं को दिखाया गया है। विवेकी राय ने अपनी कहानियों में किसानों के भोगे हुए यथार्थ का चित्रण किया है। विवेकी राय ने आत्मकथात्मक शैली में किसानों की दयनीय स्थिति को चित्रित किया है। स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण जीवन में आए हुए बदलाव, अभावग्रस्तता, खेती–बारी पर लोगों की कम होती रुचि सरकार द्वारा किए गए झूठे वादे, स्वतंत्रता के बाद के मोहभंग का वर्णन विवेकी राय के कहानियों में देखा जा सकता है।

6. विवेकी राय, विवेकी, सामलगमला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2011 ई.

महिम बोरा ने अपनी कहानी 'एखन नदीर मृत्यु' (एक नदी की मृत्यु) में किसान जीवन में नदी की क्या प्रधानता होती है, उसे दिखाया है। कलंग नदी मध्य असम के मूल रूप से नगाँव जिले के लिए आय का स्रोत है। परंतु स्वाधीनता के बाद सरकार धीरे–धीरे कलंग नदी के ऊपर पुल निर्माण करने के लिए योजनाएँ बना रही है। फलस्वरूप आस–पास के जमीनों की उर्वरता शक्ति धीरे–धीरे कम होती जा रही है। स्वाधीनता के बाद प्रगति की जो लहर आई उसने शहरों के लोगों का जीवन सहज बनाने के चक्कर में गाँव के लोगों का जीवन दुखद बना दिया। लोग त्रासित हो चुके थे। पुल बनाने के कारण जो नदी उनके जीवन जीने का सहारा थी वह अब उनके लिए आय का स्रोत नहीं रही। *कलंग के साथ जिनका जीवन जुड़ा हुआ था वह अभी कही के नहीं रहे। लेखक लिखते हैं "कलंगर बानपानीये गाँवर पथारत पलस नेपेलाय आरू ब्रह्मपुत्र नाना धरणर माछे एइ कलंगर पारर एखन जिलार राइजक पुष्टिकर खाद्यर योगान आरू निदिए"*[7]। अर्थात् हर साल आने वाली बाढ़ के बाद नदी के आस–पास की जमीनों पर गाद पड़ जाती है जिससे उसकी ऊपजाऊ शक्ति बढ़ जाती है, साथ ही वह विभिन्न प्रकार के पुष्टियुक्त खाना और मछली लोगों को देकर जाती है। परंतु अभी पुल बनने के बाद इन सबसे लोग वंचित हो जाएँगे। नदी केवल बाढ़ ही नहीं लाती, उसके साथ–साथ लोगो के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन भी लाती है। इसी प्रकार महिम बोरा ने अपनी कहानी 'माछ आरू मानुह' (मछली और मनुष्य) और 'एटा नतुन खोज' (एक नई खोज) कहानी में किसान–जीवन को दिखाया है। असमिया समाज धीरे–धीरे शहरों की तरफ जाने लगा है। लोग खेतों को बेचकर शहरों में जाने लगे हैं जिसके कारण किसानों का भी धीरे–धीरे अपने खेत के प्रति मोह कम होने लगा है। जिसके कारण लोग आज अपनी जड़ों को भूल चुके हैं। किसान अपने अधिकारों से वंचित हो चुके हैं। महिम बोरा ने अपनी कहानियों में बेरोजगारी और उसके कारण उत्पन्न होने वाले शिक्षित बेरोजगार लड़के, जिन्हें किसान होने में शर्म महसूस होती है। वे दूसरों के ऊपर निर्भर होने लगे हैं, उसे दिखाया है। इस परिवर्तन के कारण असमिया समाज आज कही न कही किसानी कामों में पीछे रह गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के बाद के गाँव का यथार्थ चित्रण विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियों में देखा जा सकता है। धीरे–धीरे बढ़ने वाले शहरीकरण, लोगों के मन में आने वाले बदलाव, साधारण गाँव के लोगों की बदलती सोच, प्राकृतिक आपदाओं से साधारण किसानों के जीवन में होने वाली दुर्गति, जमींदारों एवं सरकार द्वारा किए गए शोषण से लोगों का मोहभंग हो चुका था। किसान अपने खेतों पर निर्भरशील थे, परंतु बदलते समय के साथ–साथ वे भी सरकारी

7. हिरेन गोहाँई (सं.), गल्प समगः महिम बोरा, बनलता, 2012 ई.

नौकरियों की तरफ उन्मुख होने लगे। इसके चलते आर्थिक व्यवस्था में भी एक बदलाव आया। गरीबी, मानसिक तनाव, शोषण से जुझे किसानों की जीवन दशा को विवेकी राय और महिम बोरा ने अपने साहित्य में चित्रित किया है।

वैविध्यता और विशिष्टता के दृष्टि से विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियों की किसान जीवन के आधार पर आलोचना करना उचित है क्योंकि दोनों कहानीकारों ने प्रकृति, गाँव एवं किसान जीवन का जो वर्णन किया है वह अत्यंत प्रांसगिक है। वर्तमान समय में भारतीय समाज में किसानों की आत्महत्याएँ, न्यूनतम समर्थन मूल्य और कृषि कानूनों जैसे विषयों को लेकर किसान समाज संघर्ष कर रहा है, ऐसे समय में विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियाँ और अधिक प्रासंगिक हो उठती हैं। उनका साहित्य न केवल इतिहास का दस्तावेज़ है बल्कि वर्तमान की सामाजिक चेतना को जाग्रत करने वाला भी है। विवेकी राय और महिम बोरा की कहानियाँ किसान जीवन के विविध पक्षों का बहुआयामी चित्र प्रस्तुत करती हैं। उनका कथासाहित्य केवल यथार्थ का चित्रण ही नहीं है बल्कि एक सांस्कृतिक पुनरुत्थान का माध्यम भी है। दोनों कहानीकारों ने अपने लेखन के माध्यम से किसान वर्ग को विशेष स्थान दिया है जो साहित्य में अक्सर हाशिए पर रहा करता था। उनके साहित्य में किसान एक जीवंत इकाई है– जो संघर्षशील, आशावान और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध है।

❑❑❑

संपर्क:

देबी देबांगना:– शोधार्थी, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, इंफाल, मणिपुर–795001, ईमेलः debanganatezu.1996@gmail.com , मो. 8876636151

एच. सुवदनी देवी:– आचार्य, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय कांचीपुर, इंफाल, मणिपुर–795001, ईमेलः hsubadani.devi@gmail.com , मो. 9774452826

''सब जानते हैं कि गिरता वही है जो घोड़े पर चढ़ता है। जरूरी नहीं कि हमेशा सफलता ही मिले लेकिन कोशिश करने में, दत्तचित्त होकर लगे रहने में कोई हर्ज है? (एक लुप्त होती हुई नस्ल)

– **काशीनाथ सिंह**

जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन

रवि रंजन कुमार*

प्रसाद के नाटक मुख्यतः ऐतिहासिक, पौराणिक और रोमांटिक होते हैं। उनके प्रमुख नाटक जैसे 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', और 'ध्रुवस्वामिनी' में राष्ट्रीयता, प्रेम, त्याग और आदर्शवाद का चित्रण मिलता है। उनकी भाषा काव्यात्मक, अलंकृत और भावुक है। बावजूद उनके नाटक सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय जागरण के प्रेरणास्रोत हैं। उनकी यह रचनाएँ छायावादी भावना से ओतप्रोत हैं, जहाँ प्रकृति, प्रेम और आध्यात्मिकता का मिश्रण है। मोहन राकेश के नाटक आधुनिक जीवन की जटिलताओं, मनोवैज्ञानिक संघर्षों और अस्तित्ववादी प्रश्नों पर केंद्रित हैं। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे–अधूरे' नाटक मध्यवर्गीय शहरी जीवन, संबंधों की टूटन, अकेलेपन और सामाजिक विद्रूपताओं को यथार्थवादी ढंग से उजागर करते हैं। राकेश की शैली संवाद–प्रधान, सरल और मनोविश्लेषणात्मक है, जो पश्चिमी नाटककारों जैसे इब्सेन और चेखव से प्रभावित दिखती है। दोनों नाटककारों में समानता यह है कि वे मानवीय भावनाओं और सामाजिक मुद्दों को केंद्र में रखते हैं, लेकिन प्रसाद का दृष्टिकोण आदर्शवादी परंपराबोध और ऐतिहासिक है, जबकि राकेश का यथार्थवादी परंपराबोध और समकालीन। यह तुलना हिंदी नाटक के विकास को दर्शाती है– परंपरा से आधुनिकता की ओर। अध्ययन में हम उनके नाटकों की थीम, पात्र–चित्रण, भाषा–शैली और सामाजिक प्रभाव की गहन पड़ताल करेंगे, जो हिंदी साहित्य की समृद्धि को उजागर करेगी। यह तुलनात्मक विश्लेषण न केवल साहित्यिक समझ को बढ़ाएगा, बल्कि वर्तमान संदर्भ में भी प्रासंगिक सिद्ध होगा।

जब भी अतीत में जाता हूँ, मुर्दों को नहीं जिलाता हूँ।
पीछे हटकर फेंकता वाण, प्रकंपित हो जिससे वर्तमान।।[1]

गौरतलब है कि जयशंकर प्रसाद से लेकर मोहन राकेश तक अगर अपने नाटकों में ऐतिहासिक महत्त्व के तथ्यों का पुनरावलोकन करते हैं तो यह महज़ इतिहास को

---

* विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में शोध आलेख प्रकाशित। वर्तमान में नागालैंड विश्वविद्यालय, कोहिमा के हिंदी विभाग में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत।

1. रामधारी सिंह दिनकर, उर्वशी; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करणः 2014; पृ. सं. 86

दुहराने की बात नहीं है बल्कि यह चिन्हित करने का विषय है कि वे इतिहास और परंपरा को बिल्कुल नए युगबोध के साथ गुंफित करते हैं। वे अपना वर्तमान अपने अतीत को खारिज़ करके नहीं बल्कि उसमें संशोधन और उसका परिष्कार कर निर्मित करते हैं। अगर कोई लेखक अतीत को प्रेरणा के केंद्रबिंदु के रूप में ग्रहण कर वर्तमान जीवन को गति प्रदान करने के लिए ही उसका चित्रण करे तो अवश्य ही वह स्वस्थ प्रगति का विधायक माना जायेगा। जयशंकर प्रसाद हों या मोहन राकेश इन दोनों ही रचनाकारों ने अतीतकालीन कथावस्तु का चुनाव इसी दृष्टिकोण के आधार पर किया है। उन्हें आधुनिकता की सही अर्थों में पहचान थी। वे जनमानस में व्याप्त पौराणिक आख्यानों और चरित्रों को नितांत आधुनिक संदर्भों में व्यक्त करने वाले रचनाकार हैं। मोहन राकेश के बारे में तो यह भी कहा जाता है कि "निराला के बाद हिंदी साहित्य में जिस आदमी के चारों ओर सबसे अधिक 'मिथ' *बुनी गई, वह थे मोहन राकेश।*"[2] *इसलिए वे एक अर्थ में आत्महंता थे।*[3] उनकी इस प्रवृत्ति की छाप कहीं–न–कहीं उनके नाटकों के मुख्य पात्रों में भी समाहित दिखाई दे जाती है। हर आनेवाले कल को बिल्कुल अलग और नए रूप में देखने की आकांक्षा रखनेवाले पर मन को बार–बार मारनेवाले इस नाटककार ने एक ही क्रम में जीने की मानवीय नियति को झुठलाने का प्रयास किया।[4] अकारण नहीं उनके 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'लहरों के राजहंस' नाटक में परंपरा अपने भीतर समकालीनता को समाहित कर लेती है। बेशक, वह नाटककार के स्वतःस्फूर्त रचना–कौशल से जन्म लेता है। उन्होंने अपने नाट्य–पात्रों में परंपराबोध का निदर्शन महज़ अनुकरण या रूढ़िता के रूप में नहीं लिया बल्कि उसे समकालीन जीवन, परिवर्तनशील समाज और आधुनिक संवेदनाओं के साथ जोड़कर देखा। उनका परंपराबोध मानवीय संबंध, संघर्ष और चेतना की धरातल पर खड़ा है, जिसमें अतीत और वर्तमान समान रूप से खड़े दिखाई देती है।

मोहन राकेश का प्रकृति के प्रति प्रेम प्रसादोत्तर नाटककारों में उल्लेखनीय है। प्रकृति में मनुष्य के मन को आकर्षित करने की अद्‌भुत शक्ति मौजूद है। मोहन राकेश ने प्रकृति के सौंदर्य को विशेषकर पर्वतीय सौंदर्य को अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया है। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की शुरुआत आषाढ़ के पहले दिन के बारिश के मौसम और उसके बीच मल्लिका के संवाद से होती है। मल्लिका कहती है, "*आषाढ़ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ... ऐसी धारासार वर्षा! दूर–दूर तक की उपत्यकाएँ*

2. वीरेंद्र मेंहदीरत्ता, मोहन राकेश का साहित्य; हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़; संस्करणः 1990; पृ.सं. 1.
3. गोविंद चातक; आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करणः 2003; पृ.सं. 31
4. गोविंद चातक; आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करणः 2003; पृ.सं. 31

भींग गईं।...और मैं भी तो देखो न माँ, कैसी भीग गई हूँ!...गई थी कि दक्षिण से उड़कर आती बकुल–पंक्तियों को देखूँगी, और देखो सब वस्त्र भिगो आयी हूँ।"[5] आषाढ़ के पहले मेघों का गिरना, बरसना और मल्लिका का भींगना केवल उसके स्थूल शरीर के आक्रोश होने तक सीमित नहीं, वह भीतर मन और यौवन तक रसासिक्त हो उठा है अपने प्रिय कालिदास से जुड़कर। प्रेम की विलक्षण एवं सुखद अनुभूति उसके रोम–रोम से निकल रही है। भींगने का अनुभव और दृश्यों की यह सुंदरता मन को मोह लेने वाली है। यूँ कहें कि इन दृश्यों को कभी भुलाया नहीं जा सकता। क्योंकि यहाँ पर प्रकृति की सारी सुंदरता साकार हो उठी थी। मल्लिका कहती है *"आज के वे क्षण मैं कभी नहीं भूल सकती। सौंदर्य का ऐसा साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौंदर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी। तभी मुझे अनुभव हुआ कि वह क्या है जो भावना को कविता का रूप देता है। मैं जीवन में पहली बार समझ पाई कि क्यों कोई पर्वत–शिखरों को सहलाती हुई मेघ–मालाओं में खो जाता है, क्यों किसी को अपने तन–मन की अपेक्षा आकाश से बनते–मिटते चित्रों का इतना मोह हो रहता है।"*[6] इस नाटक में जिस भावनात्मक सृजन के साथ मल्लिका का चित्रण किया गया है, वह हिंदी नाटकों में मोहन राकेश के बाद तो दिखता ही नहीं है, इनसे पूर्व स्त्री की प्रेम–भावना को प्रदर्शित करने के लिए प्रकृति का इतना सशक्त प्रयोग मात्र जयशंकर प्रसाद के नाटकों में ही दिखता है।

भारत की प्राकृतिक और नैसर्गिक सुषमा से परिपूर्ण धरती का वर्णन प्रसाद जी के 'चंद्रगुप्त' नाटक की एक विदेशी स्त्री पात्र, कार्नेलिया चंद्रगुप्त के सामने करती है। यह दृश्य जितना ही राष्ट्रीय है उतना ही प्रकृति प्रेम और आधुनिकता के उच्च मानदंडों से लैस। यह दृश्य कुछ यूँ आता है– *"यहाँ के श्यामल कुंज, घने जंगल, सरिताओं की माला पहने हुए शैल श्रेणी, हरी–भरी वर्षा, गर्मी की चाँदनी, शीतकाल की धूप और भोले कृषक तथा सरल कृषक बालिकाएँ बाल्यकाल की सुनी कहानियों की जीवित प्रतिमाएँ हैं। यह स्वप्नों का देश, त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि – भारतभूमि क्या भुलाई जा सकती है ? कदापि नहीं! अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है, यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।"*[7] यह विदेशी स्त्री मात्र इतने ही से संतुष्ट नहीं होती बल्कि वह भारत की धरती की प्रकृति और संस्कृति की सुंदर गीत भी गाती है। वह हमारे भारतवर्ष की धरती को दग्ध और अज्ञान विश्व का एकमात्र अवलंब मानकर इस देश को 'मधुमय' कहती है –

---

5. मोहन राकेश, आषाढ़ का एक दिन; राजपाल एंड सन्स, दिल्ली; संस्करणः 2016; पृ.सं. 2
6. मोहन राकेश, आषाढ़ का एक दिन; राजपाल एंड सन्स, दिल्ली; संस्करणः 2016; पृ.सं. 4
7. जयशंकर प्रसाद; चंद्रगुप्त (नाटक); भारती भंडार, इलाहाबाद; संस्करणः 2012; पृ.सं: 50–51

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।[8]

इस पूरे गीत में भारत की धरती का मनमोहक सौंदर्य ही नहीं इसके द्वारा ज्ञान का प्रकाश और असीम सहृदयता का भी संकेत मिलता है। 'स्कंदगुप्त' नाटक का एक पात्र मातृगुप्त भारत की महिमा का राष्ट्रप्रेम इस प्रकार व्यक्त करता है– *"किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं। हमारी जन्म–भूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं। जिये तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष। न्यौछावर कर दे हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।"*[9] कितनी बड़ी बात है कि 'किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।' कहने की आवश्यकता नहीं कि, प्रकृति, प्रेम, परंपरा और आधुनिकता का ऐसा बिंब संपूर्ण हिंदी साहित्य में कहीं देखने के लिए नहीं मिलता। प्रसाद जी ने प्रेम को विशुद्ध और व्यापक बनाया है। उनके प्रेम में असफलता का अनुभव उसकी अपूर्णता या उसके वासना–मिश्रित भाव का द्योतक नहीं है। उनका प्रेम आत्मसमर्पणमय है, जिसमें उत्सर्ग–ही–उत्सर्ग छलकता है। उसका स्वभाव देना ही है, कुछ लेना नहीं। जो जितना देता है, वह उतना ही अधिक प्रेमी है। यह उनके नाटकों के रचनात्मक–विकास का उत्तरार्द्ध है। मैं उनके द्वारा लिखित उनके प्रारंभिक नाटकों में एक 'राज्यश्री' की चर्चा करना चाहूँगा। जिसके कथानक में परंपरा के चित्र दिखते हैं लेकिन जहाँ भी प्रेम का चित्रण हुआ है वहाँ प्रेम की स्वतंत्रता और उच्चता पर बल दिया गया है। यह प्रेम का स्वच्छंद रूप है। इस नाटक में सुरमा एक ऐसी ही स्त्री है जो देवगुप्त से स्वच्छंद प्रेम प्रकट करती है। वैसे ही 'विशाख' नाटक में प्रसाद जी ने प्रेम और संघर्ष का अद्‌भुत फलाफल दिखलाया है। प्रसाद की नाट्यकथा और उनकी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के अनुकूल इस नाटक की प्रणय–कहानी में सामान्य और विशेष का संघर्ष है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में प्रेम कथा का मूल भाव ध्रुवस्वामिनी के चंद्रगुप्त के प्रति प्रेम का है, जिसे वह अपने पति रामगुप्त के वश में रहने के बावजूद वरण करती है। यह प्रेम पुरुषप्रधान समाज की बेड़ियों से मुक्ति पाने और अपनी एक स्वतंत्र पहचान स्थापित करने के संघर्ष से जुड़ा है। उसके प्रेम में उच्छृंखलता नहीं है वह धर्म के बंधन को स्वीकार करती है पर धर्म के विधान में स्त्री के स्वत्व की, उसकी स्वतंत्रता की और उसके सहयोग की रक्षा चाहती है। वह चाहती है कि स्त्री को अनुचित विवाह में जकड़कर उसके अपने आनंद को समाप्त न किया जाए। जहाँ मिलन नहीं, वहाँ आनंद नहीं। वह पति राजाधिराज रामगुप्त के साथ रहकर भी प्रणय की भूखी है, वह विवश है। किसी अन्य पुरुष के प्रति आकर्षित होने के लिए चंद्रगुप्त के आलिंगन के सुख की मादकता का वह इस प्रकार चित्रण करती है, वह अन्य कहीं दुर्लभ है– *"कितना अनुभूतिपूर्ण था वह एक क्षण का आलिंगन !*

8. जयशंकर प्रसाद, चंद्रगुप्त (नाटक); भारती भंडार, इलाहाबाद; संस्करणः 2012, पूर्वोद्‌धृत; पृ.सं. 89
9. जयशंकर प्रसाद, स्कंदगुप्त (नाटक); प्रसाद मुदिर, वाराणसी; संस्करणः 1989; पृ.सं.143–144

कितने संतोष से भरा था। नियति ने अज्ञात भाव से मानों लू से तपी हुई वसुधा को क्षितिज के निर्जन से सायंकालीन शीतल आकाश में मिला दिया हो।"[10] इसी नाटक में जयशंकर प्रसाद ने कोमा को शकराज की प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है। यद्यपि वह एक भावुक निश्छल स्त्री है। वह पुरुष के दर्प पर आसक्त होकर अपने को पुजारिन बना लेती है। वह प्रेम की परिभाषा नहीं जानती पर प्रेम के आवेग एवं उसके आलोक को पहचानती है। प्रेम की दीवाली उसके हृदय में जलती है और वह अपना सर्वस्व दान कर देती है। यह प्रेम के लिए प्रेम करती है। वह प्रेम को अंधा मानती है। कोमा का अंतर्द्वंद्व उसके हृदय की सच्चाई और वास्तविक संसार से प्राप्त कठोर अनुभव के बीच का द्वंद्व है। उसका जीवन दुःखांत है।

मोहन राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में कालिदास को ऐसे महाकवि के रूप में चित्रित किया है जिसका हृदय अत्यंत विशाल एवं उदार है और जिसके हृदय में केवल मल्लिका के प्रति प्रेम ही नहीं है, वरन संपूर्ण प्राणिमात्र के प्रति प्रेम है। जब राज्य के कर्मचारी एक हिरण को आहत कर देते हैं तब कालिदास के हृदय का अंतर मन तक हिल उठता है। यह प्रभाव इतना तीव्र था कि पूर्णरूप से वे अपने को भूल गए और क्षणभर के लिए उनका तादात्म्य शोकाकुल हरिण शावक के साथ हो गया। उन्हें ऐसा लगा जैसे बाण हरिणशावक के नहीं बल्कि उन्हीं को लगा है। उन्हें केवल अपने ग्राम प्रांत के व्यक्तियों से ही प्रेम नहीं है, बल्कि वहाँ के पशु, पक्षी, फूलों पत्तों तक से उन्हें उतना ही प्रेम है। इसलिए हम कह सकते हैं कि इस नाटक की मूल भावना रोमानी ही है। किंतु कहीं–कहीं इसी रोमानियत के समीप आधुनिक सोच की मानसिक बुनावट आ खड़ा होता है। कालिदास और मल्लिका का संपर्क इसी बात की गवाही देता है। दोनों में एक दूसरे के प्रति प्रेम का जो सूत्र है वह बिना कटे–टूटे एक सिरे से दूसरे सिरे तक चला गया है। मल्लिका को कालिदास की अनुपस्थिति में भी उपस्थिति का अहसास है, उसे बराबर यही लगता रहा है कि कोई है, कहीं कोई है जो उससे दूर नहीं है और हर पल उसके साथ है। इसे हम रोमांटिक कला–बोध कह सकते हैं। साथ ही, प्रकृति के कुछ सुंदरतम अंशों की प्रस्तुति कर उन्होंने नाटक को कालजयी बना दिया है। मेघ, गर्जन–तर्जन, विद्युत की कौंध, पर्वत–उपत्यका एवं पर्वतीय वातावरण, बकुल–पक्षियों आदि तक ही ये पहुँचे हैं परंतु इनके माध्यम से उन्होंने प्रेम की सशक्त अभिव्यक्ति की है। प्रकृति के माध्यम से अतीत के चित्रों की उपस्थिति में प्रेम की अंतर्वेदना और भी गहरी हो जाती है। मसलन, "*सोच रहा हूँ वह आषाढ़ का ऐसा ही एक दिन था। ऐसे ही घाटी में मेघ भरे थे उपत्यकाओं का विस्तार वैसा ही है। पर्वत–शिखर की ओर जाने वाला मार्ग वही है। वायु में वही नमी है। वातावरण की ध्वनियाँ वैसी ही हैं। वही चेतना है जिसमें कंपन होता है।*

10. जयशंकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करणः 2016; पृ.सं. 32

वही हृदय है जिसमें आवेश जागता है। परंतु...परंतु कोरे पृष्ठों का महाकाव्य तब नहीं लिखा गया था।"[11]

मोहन राकेश ने प्रकृति के सीमित अंश की तीव्र प्रेमानुभूति को अभिव्यक्त करने में अद्‌भुत कौशल का परिचय दिया है। वस्तुतः उनकी मायावर प्रवृत्ति का इसमें महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्हें पर्वत– शृंखलाओं, घाटियों–मेघमालाओं, पर्वत–स्थली पर सम–विषम रेखाओं द्वारा रेखांकित टेड़ी–मेढ़ी पगडंडियों पर चलने एवं धारासार वर्षा में निमग्न होने की सघन अनुभूति थी और प्रकृति के इस अंश से उन्हें स्नेह रहा है जिसे वे बखूबी अपने इस नाट्यकृति में उतार पाए हैं। साथ ही, इस नाट्यकृति में मल्लिका का निस्वार्थ प्रेम उच्चकोटि का है। कालिदास को उज्जयिनी भेजकर जीवन की स्थूल आवश्यकताओं को नकारकर वह मात्र अपनी कोमल भावनाओं के आधार पर ही शेष जीवन जीने का संकल्प करती है। दूसरी तरफ उज्जयिनी जाकर कालिदास महान कवि के रूप में प्रतिष्ठित होते है, किंतु मल्लिका का जीवन बिल्कुल सूना एवं रीता हो जाता है। वह किसी भी परिस्थितियों में कालिदास के प्रारंभिक जीवन की संगिनी है और उसे कालिदास से अत्यंत स्नेह है। उसकी अभाव की पीड़ा में पलता यह प्रेम नैतिकता के आधुनिक भावबोध के स्तर पर ही संभव है जहाँ बिना विवाह–संबंध के भी प्रेम का अस्तित्व स्वीकृत किया जाता है। तन और मन को विभाजित कर व्यक्ति अनेक के साथ तथा मन को एक के साथ जोड़कर अपने को सार्थक कर सकता है।

'लहरों के राजहंस' में मोहन राकेश ने यशोधरा को महात्मा बुद्‌ध की सहायिका के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसलिए सुंदरी के जीवनवाद पर 'यशोधरा' के जीवनवाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। कहना न होगा कि जिस प्रकार की तन्मयता 'चित्रलेखा' के चित्रण में भगवतीचरण वर्मा ने दिखलाई है वैसी ही तन्मयता मोहन राकेश ने सुंदरी के चित्रण में दिखलाई है। सुंदरी इस नाटक की केंद्रबिंदु है। यौवन–सौंदर्य एवं प्रणय से परिपूर्ण, वह हर लहज़े में आभिजात्य से पगी हुई है। आत्मनिर्भरता और सहज अधिकार–भावना से भरी–पूरी सुंदरी अपने अधिकार मद से आपूरित है। नंद और सुंदरी का प्रेम वासनात्मक है। सुंदरी नंद को अपना अंतिम लक्ष्य मानती है तथा उसका संपूर्ण भोग करती है। सुंदरी भी अपनी रूप–माधुर्य के प्रभाव से भिज्ञ है, इसलिए वह पुरुष को प्रेम में बाँधने के लिए स्त्री आकर्षण को अनिवार्य मानती है। इसकी बानगी कुछ यूँ, जब सुंदरी अलका से बातें करती हुई कहती है– *"नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्‌ध बना देता है।"*[12] कहने की आवश्यकता नहीं और यह मोहन राकेश के नाटकों की खास विशेषता है कि उन्होंने अपने नाटकों में परंपरा और आधुनिकता का इतना सुंदर और

11. मोहन राकेश, आषाढ़ का एक दिन; पृ. सं.117
12. मोहन राकेश, लहरों के राजहंस; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करणः 2017; पृ.सं. 46

सहज सामंजस्य स्थापित किया है कि यह हिंदी नाट्य–संसार में बस जयशंकर प्रसाद के यहाँ ही दिखता है। बल्कि मोहन राकेश कई स्तरों पर प्रसाद जी से आगे निकल जाते हैं। मसलन, सुंदरी नंद की पत्नी है, उसके सुख–दुख की सहचरी है, लेकिन इसके विपरीत वह नंद पर शासन ज्यादा करती है और उसे अपने आदेश से नचाती है। उसका पति नंद भी उसकी इच्छा के अनुसार चलता है। मृगया के लिए जाना और समय पर ही लौटकर आना। सुंदरी का अपनी अपमान–वेदना को मिटाने के लिए पति के हाथ में दर्पण पकड़ाकर स्वयं अपना प्रसाधन करना एवं पति के हाथ से दर्पण हिल जाने अथवा टूट जाने पर भरपूर क्रोध करना, ये ऐसे तथ्य हैं जो सिद्ध करते हैं कि सुंदरी अपने पति नंद पर भरपूर शासन करती है, लेकिन प्रेम भी करती है। बेशक, यह आधुनिक होती स्त्री का सबल पक्ष है जिसे मोहन राकेश अंकित करने से नहीं चूकते। उन्होंने यह लिखा भी है, *"सुंदरी नंद से वास्तव में बहुत प्रेम करती है, पर इस प्रेम में गहरा आत्मविश्वास भी है जिसका पोषण सुंदरी के जीवन–दर्शन से होता है। नाटक का मूल द्वंद्व पार्थिव और अपार्थिव मूल्यों का द्वंद्व है। सुंदरी, पृथ्वी के प्रतीक में, पुरुष और उसकी चेतना को अपने तक बाँधे रखना चाहती है – पुरुष बँधना चाहकर भी उससे ऊपर उठना, एक अपार्थिव जिज्ञासा में अपने लिए उपलब्धि ढूँढ़ना चाहता है।"*[13] लेकिन यह भी सत्य है कि नंद सुंदरी से अधिक प्रेम करता और स्वयं को सुंदरी के चेहरे का दर्पण मानता है। यह वाक्य देखें– *"यह तो मैं बता सकता हूँ, जो तुम्हारे चेहरे का दर्पण हूँ।"*[14]

सुंदरी और नंद के अतिरिक्त नाटक में गौतम बुद्ध और यशोधरा का पति–पत्नी का संबंध है। लेकिन ये दोनों ही पात्र संपूर्ण नाटक में अदृश्य रहे हैं, सशरीर वर्तमान नहीं दिखते। परंतु नाटक की वस्तु का प्रारंभ ही उनके कारण हुआ। नाटकीय वस्तु में संघर्ष की उत्पत्ति यशोधरा का ही प्रभाव है। कुछ वैसे ही जैसे जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भारतीय इतिहास और परंपरा साथ–साथ चलता है। मोहन राकेश ने भी उसे साधने का प्रयत्न किया है लेकिन आधुनिकता के नए कोण से। हालाँकि जयशंकर प्रसाद के पात्र भी आधुनिक भावबोध से लैस हैं लेकिन उनके यहाँ प्रेम की रोमानी छवि, स्वच्छंदतावादी तत्त्वों को साथ लेकर चलने में ज्यादा सहज महसूस करती है और मोहन राकेश के यहाँ प्रेम, प्रकृति और परंपरा स्वतंत्र भारत के यथार्थवादी तत्वों को संजोकर आई है। मसलन, 'लहरों के राजहंस' में प्रकृति–चित्रण प्रतीकात्मक और नंद के द्वंद्व–ग्रस्त व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए लाया गया है। नाटक के अंत तक भी नंद की स्थिति तरंगों पर तैरते राजहंस की सी है। इस एक दृश्य में देखें– *"बोल नहीं चुपचाप सुन ! इस स्वर की कहीं तुलना है ? नहीं कह सकती क्या अधिक सुंदर है ओंस से लदे कमलों के बीच राजहंसों के इस जोड़े की*

13. मोहन राकेश; लहरो के राजहंस; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करणः 2012; नाटक की भूमिका से।
14. मोहन राकेश; लहरो के राजहंस; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करणः 2012; पृ.सं. 63

किलोल या झुटपुटे अँधेरे में इससे सुनायी देता इनका कूजन !.....(हल्के से हँसकर) कोई गौतम बुद्ध से कहे कि कमलताल के पास आकर कभी इनसे भी वे निर्वाण और अमरत्व की बात कहें। ये चोंच से चोंच मिलाकर चकित दृष्टि से उनकी ओर देखेंगे– फिर काँपती लहरें जिधर ले जायेंगी, उधर को तैर जायेंगें। सोचती हैं उस दिन एक बार गौतम बुद्ध का मन नदी–तट पर जाकर उपदेश देने को नहीं होगा, चाहूँगी उस दिन... /"[15] यहाँ स्त्री का पुरुष से संबंध केवल आसक्ति का है जिसका कि मूल आधार उसका बाहरी आकर्षण है। क्योंकि स्त्री का आकर्षण ही पुरुष को पुरुष बनाता है और उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है। सुंदरी का नंद से वास्तव में अत्यधिक प्रेम है और इस प्रेम में गहरा आत्मविश्वास भी है।

'आधे अधूरे' नाटक आधे–अधूरों का जमानानामा है जिसमें प्रेम का आधुनिक भाव–बोध, आधुनिकता की समग्र चेतना–तत्वों . तलाश और अलगाव, परिवेश, पीड़ा और आत्मबोध तथा आक्रोश और संवेदना के साथ चित्रित हुआ है। सावित्री का कई पुरुषों से संपर्क स्थापित करने का अर्थ रति–सुख की प्राप्ति के लिए लगाया गया, जबकि सावित्री के लिए प्रेम ही जीवन का सबकुछ है और यही प्रेम उसकी चरम उपलब्धि है। वह अपने रुचि के अनुकूल प्रेम के चयन में ही उलझकर रह जाती है और वह चयन तो करती है किंतु उसे सार्थक रूप देने में जिस प्रकार के निर्णय की आवश्यकता होती है, उसे नहीं ले पाती। सावित्री सदैव मानवीय जीवन की लालसा और स्वयं को सार्थक बनाने की आकांक्षा के लिए हुए आनंद के क्षणों के तलाश में लगी रहती है। हालाँकि उसके जीवन में व्याप्त निरर्थकता और टूटते दाम्पत्य की पीड़ा को नाटककार ने सेक्स के माध्यम से व्यक्त किया है। महेंद्रनाथ सावित्री से असंतुष्ट होते हुए भी बहुत प्रेम करता है। हालाँकि उसका यह प्रेम इस नाटक में उसके व्यवहार में कहीं सामने नहीं आता। केवल हर बार घर लौट आने और जुनेजा के कथन से उसका प्रेम स्पष्ट होता है। इस दृश्य में देखें– *"फिर भी कहता हूँ कि वह इसे बहुत प्यार करता है।... कोई समझा सकता है उसे? वह इस औरत को इतना चाहता है, इतना चाहता है अंदर से कि...!"*[16] हालाँकि सावित्री ने महेंद्रनाथ को जितना अधिक क़रीब से जानना चाहा, उससे उसे वितृष्णा होने लगी, वह उसे 'लिजलिजा' . 'चिपचिपा' सा आदमी लगता गया, जिसका जिम्मेदार वह दूसरे को मानती गई। महेंद्र के बेरोजगार होने से वह कहीं और ज्यादा कटु होने लगती है। अपनी आंतरिक आकांक्षा की पूर्ति के लिए ही वह अलग–अलग पुरुषों के संपर्क में आती है लेकिन भारतीय समाज में पुरुष स्त्री से सहज रूप–संबंध बनाए रख नहीं पाता, सभी का अपना–अपना स्वार्थ स्त्री को और अधिक तीखा और अंदर से टूटा हुआ बनाता चलता

15. मोहन राकेश; लहरो के राजहंस; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करणः 2012; पृ.सं. 43
16. मोहन राकेश; आधे–अधूरे; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करणः 2008; पृ.सं. 91

है तथा पति–पत्नी के बीच एक और दरार बना देता है। पति–पत्नी के बीच की यह दरार लगातार घर के वातावरण को खंडित करती रहती है।

'आधे–अधूरे' के मंचीय निर्देशक ओम शिवपुरी अपने निर्देशकीय वक्तव्य में इस नाटक की सार्थकता के बारे में जो कहा है, वह गौरतलब है– *"एक दिग्दर्शक की दृष्टि से आधे–अधूरे मुझे समकालीन जिंदगी का पहला सार्थक नाटक लगता है। यह मौजूदा जीवन की विडंबना के कुछ सघन बिंदुओं को रेखांकित करता है। इसके पात्र, स्थितियाँ एवं मनःस्थितियाँ यथार्थपरक तथा विश्वसनीय हैं।"*[17] क्योंकि सुविधा से भरे संसार में सभी सुविधा के लिए भागे फिर रहे हैं, यह एक यथास्थितिवादिता है। इसी सुविधा के मूल्य पर उनके लिए विद्रोह अकल्पनीय बन जाता है। स्वाभाविक है यह यथास्थिति बनी की बनी रहती है। सावित्री की बड़ी लड़की ठीक माँ की प्रतिनिधि है। माँ की गृहस्थी की तरह उसकी गृहस्थी भी उजड़ी हुई है। बिन्नी अपने माँ के प्रेमी मनोज के साथ घर से भागकर शादी करने के बाद भी संतुष्ट नहीं रहती। परिवार के व्यक्तियों के बीच जिस तरह का प्रेम होता है उसका इन सबके जीवन में सर्वथा अभाव दिखाई देता है। किसी को किसी से प्रेम नहीं है और न ही लगाव है। सभी एक तरह की अलगाव की स्थिति में जी रहे हैं। दूसरे कोण से देखें तो, बेशक– *"शहरों में भीड़ के फैलाव के साथ आदमी सिकुड़ता जा रहा है और जितना वह सिकुड़ता जाता है, उतनी ही उसकी यह जरूरत बढ़ती जाती है कि कोई उसे अपना समझे, कोई तो उसकी अलग से पहचान करे, कहीं तो वह इंसानियत का रिश्ता क़ायम करे!"*[18] इसलिए यहाँ जो एक बात संभावित और दृश्य दिखती है, वह सभी के व्यवहार से पता चलता है। परिवार के सभी व्यक्ति बात–बात पर एक–दूसरे को नोचते हुए भी एक–दूसरे से काफी जुड़े हुए हैं। महेंद्रनाथ घरवालों के बिना नहीं रह पाता और वापस लौट आता है। सावित्री को घर के प्रत्येक सदस्य की चिंता रहती है। उन सब के लिए वह अपनी जिंदगी को मशीन बना डालती है। अशोक के हृदय में अपने पिता महेंद्रनाथ के प्रति हार्दिक वेदना है तो बिन्नी के हृदय में माँ सावित्री के प्रति। छोटी किन्नी भी अपनी सहेली के मुँह से माँ और बहन के बारे में बुरी–बुरी बातें सुनकर क्रोध और अपमान से भर जाती है और माँ–दीदी से उस बात का निराकरण चाहती है। इस प्रकार सभी व्यक्ति एक–दूसरे से कहीं बहुत अधिक जुड़े हुए हैं। वास्तव में मानवीय संबंधों की जिन इकाइयों में पारंपरिक मूल्यों का विघटन बड़ी तीव्रता से महसूस किया जा रहा है। उनमें परिवार ही एक ऐसी इकाई है, जहाँ स्थापित नैतिकता के कई मूल्य खोखले एवं नाकारा साबित हुए हैं। वस्तुतः परिवार ही एक ऐसा बिंदु है जिस पर खड़े होकर व्यक्ति

17. मोहन राकेश, लहरों के राजहंस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्लीः संस्करणः 2012 निर्देशक के वक्तव्य से उद्धृत।
18. गोविंद चातक; आधुनिक हिंदी नाटक के अग्रदूतः मोहन राकेश; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करणः 2003; पृ.सं. 91.

और समाज के व्यापक संबंधों को नापा जा सकता है। 'आधे–अधूरे' नाटक के परिवार की आधारभूमि में कई दरारें पड़ गई हैं, बावजूद वे साथ हैं।

जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश के नाटकों के तुलनात्मक अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि दोनों नाटककारों ने अपने–अपने युग की आवश्यकताओं के अनुसार हिंदी नाट्य साहित्य को समृद्ध किया है। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में प्रेम उदात्त रूप में चित्रित किया गया है। उनके प्रेम चित्रण में विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। 'ध्रुवस्वामिनी' में ध्रुवस्वामिनी और चंद्रगुप्त के प्रेम में आदर्शवादी दृष्टिकोण दिखता है। मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में मल्लिका का कालिदास के प्रति प्रेम उच्चकोटि का है। कहीं–कहीं यह प्रेम सफलता और प्रेम के द्वंद्व को दर्शाता है। अन्य नाटकों में प्रेम व्यावहारिक और यथार्थवादी रूप में आता है। 'आधे–अधूरे' में पारिवारिक संबंधों की टूटन और मध्यवर्गीय जीवन में प्रेम की जटिलता दिखाई गई है।

❑❑❑

संपर्क:

प्रो. रवि रंजन कुमार:– प्रोफेसर, हिंदी विभाग, नागालैंड विश्वविद्यालय, कोहिमा परिसर, मेरिएमा कोहिमा, नागालैंड–797004, ईमेलः raviranjan@nagalanduniversity.ac.in, मो. 9935399853

मैं बोलता हूँ तो
इल्ज़ाम है बग़ावत का
मैं चुप रहूँ तो
बड़ी बेबसी सी होती है

– **बशीर बद्र**

असम की मिसिंग भाषा : स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

दिनेश कुमार चौबे*

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र बांग्लादेश, भूटान, म्यांमार, चीन और तिब्बत की अंतरराष्ट्रीय सीमा पर अवस्थित है। इसके आठों राज्यों को भाषिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं जैव वैविध्य की दृष्टि से लघु भारत कहा जाता है। असम पूर्वोत्तर क्षेत्र का सबसे बड़ा प्रांत है, जो अनेक जाति एवं जनजाति के लोगों का प्रदेश है। असमिया लोगों के साथ बोडो, कारबी, डिमासा, देउरी, राभा, कछारी, ताई आहोम, मिसिंग का अपना भाषिक सांस्कृतिक वैशिष्ट्य है। मिसिंग जनजाति के लोग असम प्रदेश के ब्रह्मपुत्र नदी को केंद्र में रखकर लखीमपुर, शिवसागर, दरंग और सदिया जिलों में ब्रह्मपुत्र तथा उनकी सहायक नदियों के किनारों पर बसे हैं। अरुणाचल प्रदेश के लोहित, सियांग और सोवनशिरि क्षेत्रों में मिसिंग लोग रहते हैं। यहाँ मिसिंग लोग अपनी भाषा को तानी– आगम (तानी– मनुष्य, आगम– भाषा) कहते हैं। आज कल ये लोग अपनी भाषा को मिसिंग आगम कहते हैं। असमिया में मिसिंग आगम को मिरि–दुआन (मिरि जनजाति की बोली) कहा जाता है। असम के दूसरे लोग मिसिंग लोगों को 'मिरि' कहते हैं। 'मिरि' तिब्बती भाषा का शब्द है, मि – मनुष्य, रि – पहाड़ी अर्थात पहाड़ी लोग। ये लोग अपने को 'आबा–तानि' की संतान कहते हैं। ये अपना परिचय मिसिंग या मिसिंग – आमि अथवा तानि – आमि से देते हैं। मिसिंग का शाब्दिक अर्थ है, मि – मनुष्य, सिंग– शांत या शीतल अर्थात् शांत प्रकृति के लोग।

मिसिंग लोग मूलतः पहाड़ी थे, किंतु कालांतर में मैदानों में कब आए इसका लिखित प्रमाण नहीं है। इनकी भाषा की कोई लिपि नहीं है। रोजी–रोटी की तलाश में ब्रह्मपुत्र घाटी में इनके आगमन का अनुमान किया जाता है। मिसिंग भाषा में तिब्बती भाषा का पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरण–

* तुलनात्मक भाषा एवं साहित्य (पूर्वोत्तर भारत के विशेष संदर्भ में) में विशेष अध्ययन। वर्तमान में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, नेहू, शिलांग, मेघालय।

तिब्बती	मिसिंग	हिंदी
मि	आमि	मनुष्य
मिक	आमिक्	आँख
छि / सि	आसि	पानी
लाक्	आलाक्	हाथ

आदी और मिसिंग लोगों की भाषा में पर्याप्त समानताएँ हैं। सदियों से मिसिंग ब्रह्मपुत्र घाटी में रह रहे हैं। ये लोग घुमंतू प्रकृति के हैं, जिस स्थान में कृषि के लिए उपजाऊ भूमि मिलती है, वहीं गाँव बसाकर रहते हैं। आहोम राजाओं के समय में ये लोग आदी लोगों के साथ द्विभाषिए की भूमिका में व्यापार किया करते थे। मिसिंग लोग मंगोल वंशीय तिब्बती–बर्मी भाषा परिवार में उत्तर–असम और अरुणाचल प्रदेश के अंतर्गत आते हैं। पूर्वोत्तर में तिब्बती–बर्मी भाषा–भाषियों को चार भागों में बाँटा जा सकता है। तिब्बती–बर्मी, ताई चीन, का चीन, मैतेई / मणिपुरी, असम–बर्मी, शाखा चार भागों में विभक्त है – बड़ो, मनखमेर, नागा और कुकी। मिसिंग आगम की लिपि में वर्णमाला के आधार पर सात ह्रस्व स्वर, सात दीर्घ स्वर और बीस व्यंजन स्वीकृत हैं।

ह्रस्व स्वर ध्वनि : अ आ ऑ ॠ
इ उ ए।

दीर्घ स्वर ध्वनि : अः आः ऑः ॠः
इः उः एः।

व्यंजन वर्ण : क ग ङ, त द न,
प ब म, च ज ञ,
र ल य व ह अं ँ।

इस भाषा के लिए नागरी लिपि की सभी ध्वनियों की आवश्यकता नहीं है। नागरी में प्रचलित बारह स्वर वर्ण, हलंत और चंद्रबिंदु (ँ) तथा अठारह व्यंजनों द्वारा संपूर्ण मिसिंग आगम लिखी जा सकती है। मिसिंग में महाप्राण ध्वनि नहीं है। ट वर्ग का उच्चारण यहाँ आवश्यक नहीं है। अनुनासिक ङ और ञ अक्षर मिसिंग भाषा में विशेष रूप से उच्चरित होते हैं।

मिसिंग में देलु, पाग्र, सायाङ् आदि कई उपबोलियाँ हैं, एक ही शब्द के उच्चारण में विभिन्नता देखी जाती है। उदाहरण के लिए घर को देलु में 'उकुम' पाग्र 'अकुम' और सायाङ् में 'एकुम' कहा जाता है। मिसिंग आगम की सभी ध्वनियों का उच्चारण नागरी लिपि में हो सकता है।

लिंग व्यवस्था

मिसिङ्ग–आगम्' (मिसिंग भाषा) में पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग – तीन प्रकार के लिंग हैं। जैसे –

पुलिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
यामे (युवक)	मिम्बिर/मिङम् (युवती)	कंकाङ् (बच्चे)
बिर (भाई)	बिर्मे (बहन)	सासि (बड़ा भाई/बड़ी बहन)
मिलबङ् तुम्ब (विधुर)	नेङ् तुम्ब (विधवा)	तुम्ब (विधुर/विधवा)

'मिसिंग भाषा' में पुलिंग और स्त्रीलिंग का ही प्रयोग अधिक देखा जाता है। जैसे–

पुलिंग।	स्त्रीलिंग
मिजिङ् (बूढ़ा)	मिने/एज (बूढ़ी)
तातः (दादा/नाना)	याय (दादी/नानी)
मिगम् (राजा)	नङेमिगम (रानी)

मिसिंग भाषा में 'पेत्ता' (पक्षी), 'उई' (देव/देवी), 'सुमय' (बाघ/बाघिन), 'ऐ' (कनिष्ठ/कनिष्ठा; प्रिये/प्रिया) आदि शब्दों के पुलिंग और स्त्रीलिंग के प्रतिरूप शब्द नहीं मिलते हैं। 'मिसिंग भाषा' में 'तानि/आमि' (आदमी), 'सासि' (बड़े भाई या बड़ी बहन), 'अम्मा' (सन्तान), 'मेन्जेक' (भैसा/भैंस), 'परक' (मुर्गा/मुर्गी) आदि नपुंसकलिंग के रूप में भी प्रयोग होते हैं। स्त्रीलिंग प्रायः 'ने' जोड़कर बनाया जाता है। जैसे . 'इग्ने' (देवरानी/साली/ननद), 'मिने' (बूढ़ी), 'पाक्ने' (दासी) इत्यादि।

वचन व्यवस्था

मिसिंग भाषा में संस्कृत की ही भाँति तीनों वचनों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण–

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तम	ङ (मैं)	ङञि (हम दोनों)	ङलु (हम लोग)
मध्यम	न (तुम)	नाञि (तुम दोनों)	नलु (तुम लोग)
अन्य	बि (वह)	बिञि (वह दोनों)	बिलु (वे)
	से (यह)	सेबिञि (यह दोनों)	सेबिलु (ये)

सामान्यतया मिसिंग भाषा में सर्वनाम में 'ञि' जोड़ने पर द्विवचन होता है। 'ञि' 'आञि' (दो) का संक्षिप्त रूप है। और 'बिलु' जोड़ने पर बहुवचन होता है। मिसिंग भाषा में शब्द अथवा वाक्य के अंत में 'किदिङ्' या 'किदिदे' जोड़ने पर भी बहुवचन होता है।

एकवचन	बहुवचन
मिजिङ् (बूढ़ा)	मिजिङ् किदिङ् (बूढ़े लोग)
नेङ् (स्त्री)	नेङ् किदिङ् (स्त्रियाँ)
मेन्जेक (भैंस)	मेन्जेक किदिङ् (भैंसे)

मिसिंग भाषा में कुछ शब्द केवल द्विवचन के लिए ही प्रयोग किए जाते हैं। जैसे–

आनेकुम्सु – माँ बेटी दोनों।

आबोकुम्सु – बाप बेटे दोनों।

बिरमेकुम्सु – दोनों बहनें।

कारक

मिसिंग भाषा में कारकों का प्रयोग निम्नलिखित रूप में होता है।

1. **कर्ता कारक** : मिसिंग भाषा में कर्ता कारक हेतु विभक्ति चिह्न 'बि' (ने) का प्रयोग होता है।

उदाहरण : **बाबु बि** (पिता ने)

नान बि (माँ ने)

'मिसिंग–भाषा' में संज्ञा के अंत में 'बि' जोड़ने पर कर्ता–कारक का बोध होता है। किंतु इसका प्रयोग मिसिंग–भाषा में बहुत कम किया जाता है। कुछ कर्ता–कारक के वाक्य निम्न प्रकार से प्रयोग में लाए जाते हैं –

1. **ङ आपिन दकाबङ** – मैंने भात खा लिया है।
2. **न आपिन् दकाबन** – तुमने भात खा लिया है?
3. **बि आपिन दकाबङ्** – उसने भात खा लिया है।

2. **कर्म कारक** : मिसिंग भाषा में कर्म कारक हेतु विभक्ति चिह्न 'एम्' (को) का प्रयोग होता है।

उदाहरण : **बबबि मापाल मेम् देम्त** (बब ने मापाल को मारा)

मापाल मेम् लुबित। (मापाल को बता दो)

3. **करण कारक** : मिसिंग भाषा में करण कारक हेतु विभक्ति चिह्न दक्कि/ कक्कि/क्कि (से) का प्रयोग प्राप्त होता है।

उदाहरण : **मापालबि ग'र कक्कि आल गिदुङ्** (मापाल बैल से हल चलाता है)

गुवाले सरि कक्कि ग'रम रिन्दुङ (गुवाल रस्सी से बैल को बाँधता है।)

युक्तुङ्क्कि तेग्दुङ् (दाव से काटता है)

4. **संप्रदान कारक** : मिसिंग भाषा में संप्रदान कारक हेतु विभक्ति चिह्न लेगाङ् /केपे/अलपे (के लिए) का प्रयोग प्राप्त होता है।

उदाहरण : **ङक्केपे/ङक् लेगाङ्** (मेरे लिए)

ङक लेगाङ्/ङ क्केपे बि कुसेरे बम्ताक् (मेरे लिए वह औषध लाया है।)

दुग दक लेगाङ् बुद्द बि उकुम मेम् मेपाक्त (दुःख के लिए बुद्ध ने घर छोड़ा।)

5. **अपादान कारक** : मिसिंग भाषा में अपादान कारक हेतु विभक्ति चिह्न लक्के/ बक्के(से) का प्रयोग होता है।

उदाहरण : **उकुम्लक्के लेंदुङ्** (घर से निकलता है।)

आबुङे आदि लक्के लेंदुङ् (नदी पहाड़ से निकलती है।)

ललित दले गुवाति बक्के गिदुङ् (ललित दले गुवाहाटी से आए हैं।)

6. **संबंध कारक :** मिसिंग भाषा में संबंध कारक हेतु विभक्ति चिह्न के/क्के (का, के, की) का प्रयोग होता है।

उदाहरण : **से मापाल के उकुमे** (यह मापाल का घर है।)

एदे ङक्के आत्तारे। (वे मेरी चीजें हैं)

7. **अधिकरण कारक :** मिसिंग भाषा में अधिकरण कारक हेतु विभक्ति चिह्न एले/तेले (में, पर) का प्रयोग प्राप्त होता है।

उदाहरण : **क'दे उकुम एले/तेले दुङ** (लड़का घर में है)

आम्मे उकुम एले दुङ् (आदमी घर में है।)

पेत्तादे हसिङ् तेले दुङ् (पक्षी पेड़ पर बैठा है।)

8. **संबोधन कारक :** मिसिंग भाषा में संबोधन कारक हेतु विभक्ति चिह्न इसरा / देइया (हे, अरे, ओ) का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण : **इसरा, कापिन् आमिकन्** (दैव कैसा आदमी है!)

देइया, सिकाबङ् तुर्ला दुलामाङ् (हे भाग्य, मर गया जीवित नहीं रह सकता।)

सर्वनाम

मिसिंग भाषा में सर्वनाम का प्रयोग कुछ इस प्रकार से किया जाता है।

पुरुषवाचक सर्वनाम

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
उत्तम	**ङ** – मैं	**ङञि**– हम दोनों	**ङलु** – हम लोग
मध्यम	**न** – तुम	**नञि** – तुम दोनों	**नलु** – तुम लोग
अन्य	**बि**– वह	**बिञि** – वह दोनों	**बिलु** – वे

निश्चयवाचक सर्वनाम

निकटवर्ती –	**से** – यह	**सेबिञि** – यह दोनों	**से बिलु**– ये
दूरवर्ती –	**एदे** – वह	**एदेबिञि** – वह दोनों	**एदेबिलु**– वे

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

सेकाई– कोई, **अकई**– कुछ

प्रश्नवाचक सर्वनाम

अक्क – क्या, **सेक**– कौन

निजवाचक सर्वनाम

आएँ – आप, अपने

वाक्य के भेद

वाक्यों के अर्थानुसार अनेक भेद होते हैं। उन पर मिसिंग–भाषा के वाक्यों के माध्यम से कुछ उदाहरण अधोलिखित है–

1. **विधि सूचक वाक्य**

मिसिंग	**हिंदी**
आम्मे आरिग इदुङ्	लोग खेती करते हैं।
आरिग अलपे गिदुङ्	खेत में जाते हैं।
मिम्बिरे सदुङ्	युवतियाँ नाचती हैं।

2. **निषेधसूचक वाक्य**

ङ नक् लिदिल गिमाङ् – मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा/जाऊँगी।
न ङम् लिदिल गियक् – तुम मेरे साथ मत आओ।
आरिग्ल गिमाङ् – खेत में नहीं जाता है।

3. **आज्ञासूचक वाक्य**

उकुम् गित	घर चलो।
आगेरे इतक	काम करो।
आने आबु आगम् तात्तक्	माता–पिता का आदर करो।

4. **प्रश्नसूचक वाक्य**

सिल न अकल गिकान्	आज तुम कहाँ गए थे?
न सेकम् माला गिदुङ्	तुम किसे खोजते हुए आए हो ?

5. **विस्मयादिसूचक वाक्य**

अक एराङेन् जाद्–जादे	कैसा घराना, विचित्र है।
इसरा, आमिदे सिकाङ्	दैवा आदमी मर गया।
उईपे इगेला गिआदुङ्	प्रेत बनकर आता है!

6. **सम्भावनासूचक वाक्य**

देम्बुरुबि गियेपे	देम्बुरु आता होगा।
बि आरिग्पे गियेपे	वह खेत को जाता होगा।
कमुल बियेपे	शायद माँगने पर देगा।

7. **आशंकासूचक वाक्य**

न आईपे दुलाङ्का	– तुम अच्छी तरह रहो।
आप्पुङ् एसायेपे	– सबका मंगल हो।

8.संकेतसूचक वाक्य

आईपे मयामुल आरिग	– अच्छी तरह करता तो
ईसिङ् आईयापे	फसल अच्छी होती।

बिउ इयेमुल नितम् मपादाक् बिहु (उत्सव) मनाने पर गीत गाना होता है।

क्रिया के रूप

मिसिंग भाषा के क्रिया रूपों के तीनों कालों के उदाहरण निम्नलिखित हैं–

'दनाम्' (खाना)

भूतकाल

पुरुष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
उत्तम	**ङ दका** (मैंने खाया था)	**ङञि दका** (हम दोनों ने खाया था)	**ङलु दका** (हमने खाया था)।
मध्यम	न दका (तुमने खाया था)	नञि दका (तुम दोनों ने खाया था)	नलु दका (तुम लोगों ने खाया था)।
अन्य	बि दका (उसने खाया था)	बिञि दका (उन दोनों ने खाया था)	बिलु दका (उन सबने खाया था)।

भविष्यत् काल

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तम	ङ दये (मैं खाऊँगा)	ङञि दये (हम दोनों खाएँगे)	ङलु दये (हम खाएँगे)
मध्यम	न दये (तुम खाओगे)	नञि दये (हम दोनों खाएँगे)	नलु दये (हम खाएँगे)
अन्य	बि दये (वह खाएगा)	बिञि दये (वह दोनों खाएँगे)	बिलु दये (वे खाएँगे)

वर्तमान काल

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तम	ङ ददुङ् (मैं खाता हूँ)	ङञि ददुङ् (हम दोनों खाते हैं)	ङलु ददुङ् (हम खाते हैं)

मध्यम	न ददुङ् (तुम खाते हो)	नञि ददुङ् (तुम दोनों खाते हो)	नलु ददुङ् (तुम लोग खाते हो)
अन्य	बि बदुङ् (वह खाता है)	बिञि ददुङ् (वह दोनों खाते है)	बिलु ददुङ् (वे खाते हैं)

इस तरह मिसिंग भाषा का स्वरूप एवं व्यवहार संक्षेप में समझा जा सकता है। यह भाषा रोमन लिपि में लिखी जाती है, किंतु समस्त ध्वनियों के परिप्रेक्ष्य में इसके लिए नागरी लिपि सर्वाधिक उपयुक्त है। वर्तनी एवं उच्चारण की दृष्टि से नागरी लिपि इसके लिए व्यवहार में लायी जा सकती है, कारण ङ और ञ ध्वनि का प्रयोग रोमन लिपि में सम्यक ढंग से नहीं हो पाता।

सहायक पुस्तकें

1) भाषा विज्ञान का रसायन, कैलाश नाथ पांडेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2) भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3) आधुनिक भाषा विज्ञान, डॉ. राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4) भाषा विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद।
5) सामान्य भाषा विज्ञान, बाबूराम सक्सेना, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
6) भाषा विज्ञान, डॉ. विजयपाल सिंह, संजय बुक सेंटर, वाराणसी।
7) हिंदी भाषा विज्ञान, डॉ. रामदेव त्रिपाठी, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना।
8) भाषा विज्ञान, श्यामसुंदर दास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
9) पूर्वोत्तर भारत की लोक भाषा, भिक्षु कौंडिन्य, नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली।

❑❑❑

संपर्क:

प्रो. दिनेश कुमार चौबे:– प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, नेहू (NEHU), शिलांग, मेघालय–793022, ईमेल: dkcnehu760@gmail.com, मो. 9436312134

नेपाल में मैथिली भाषा : इतिहास तथा वर्तमान

अमित कुमार जायसवाल*

बिहार के उत्तरी सीमा से लेकर संपूर्ण पश्चिम बिहार के हिस्सों के साथ–साथ झारखंड के कुछ जिलों के अलावा नेपाल के सात जिलों (सर्लाही, महोत्तरी, धनुषा, सिरहा, सप्तरी, सुनसरी और मोरंग) तक विस्तृत भू–भाग को मिथिलांचल के नाम से जाना जाता है, जो धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि के साथ ही साथ भाषाई दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। मिथिलांचल क्षेत्र के अनुसार ही यहाँ की भाषा को मैथिली के नाम से जाना जाता है, जो अपनी सरलता और सरसता के कारण प्रारंभ से ही हिंदी की अन्य बोलियों से अलग पहचान बनाए हुए हैं।

नेपाल में मैथिली भाषा के विकास की एक लंबी विरासत और समृद्ध परंपरा रही है। जैसे भारत में मैथिली और हिंदी की अन्य बोलियों का विकास हुआ था, ठीक उसी प्रकार नेपाल में भी मैथिली भाषा का विकास हुआ। जिसकी शुरुआती अवस्था सिद्धो तक देखी जा सकती है। मैथिली भाषा का विकास आठवीं शताब्दी से ही शुरू हो गया था, जिस संदर्भ में संजीता वर्मा ने प्रफुल्ल कुमार सिंह 'मौन' के उद्धरण का उल्लेख किया है। जिसमें मैथिली भाषा के विकास को तीन काल खंडों में बाँटा गया है। जो निम्न प्रकार से है–

"पंडित गोविंद झा, पंडित राजेश्वर झा, डॉ. दुर्गानाथ झा श्रीश, डॉ. रामावतार यादव, डॉ. यजकांत मिश्र और प्रफुल्ल कुमार सिंह जैसे विद्वानों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से मैथिली साहित्य के इतिहास का काल विभाजन किया है। उन सभी विद्वानों के विचारों को यहाँ उल्लेख करना संभव नहीं है इसके बावजूद अध्ययन के दृष्टिकोण से काल विभाजन आवश्यक है इसलिए प्रफुल्ल कुमार सिंह 'मौन' के काल विभाजन को यहाँ दिया गया है। मौन ने नेपाल के मैथिली साहित्य के इतिहास को तीन भागों में विभाजित किया है–

---

* युवा अध्येता। भाषा और सामाजिक चिंतन से जुड़े कई लेख प्रतिष्ठित पत्रिकाओं और पुस्तकों में प्रकाशित।

क. *आदिकालीन मैथिली साहित्य : 8 से 14 वीं शताब्दी तक*

ख. *मध्यकालीन मैथिली साहित्य : 14 से 18 वीं शताब्दी तक*

ग. *आधुनिक मैथिली साहित्य : 1950 से अद्यपर्यंत।*"[1]

मिथिला क्षेत्र वैदिक काल से ही दर्शन साहित्य और कला संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है। मिथिला क्षेत्र वाल्मीकि, जनक, गौतम बुद्ध, याज्ञवल्क्य, गार्गी, अष्टावक्र आदि ज्ञानी ऋषियों की पूर्णभूमि के रूप में प्रसिद्ध है। विद्यापति के समय में मिथिला में भाषा, शिक्षा, संस्कृति का बहुत महत्त्व था। उस समय नालंदा और काशी की तरह इसकी भी ख्याति थी। मिथिला क्षेत्र के प्रभाव के कारण यहाँ प्रयोग की जा रही बोली का नाम मैथिली पड़ा। मैथिली भाषा नेपाल में मुख्यतः तराई (पूर्वी) की भाषा है। इसका सांस्कृतिक केंद्र बिंदु जनकपुर है। नेपाल के सात जिलों में इसका प्रभाव देखा जा सकता है, जिनके नाम– धनुषा, महोत्तरी, सिरहा, सप्तरी, सुनहरी और मोरंग है। पहले मैथिली की अपनी एक लिपि हुआ करती थी, जिसे तिरहुता या मिथिलाक्षार कहा जाता था। परंतु समय के साथ इसका प्रयोग घटता चला गया और वर्तमान में इसे देवनागरी में ही लिखा जाता है।

नेपाल शुरू से ही एक धर्म प्रधान देश रहा है। जिस कारण यहाँ भी संस्कृतियों की विविधता देखने को मिलती है। धार्मिक दृष्टि से भी यहाँ अलग–अलग धर्म और परंपराओं को मान्यता मिली हुई है। जहाँ एक ओर हिंदू धर्म व पशुपतिनाथ की महिमा है, वहीं दूसरी ओर बौद्ध धर्म का शांत वातावरण भी है। एक तरफ घाटियों में संतों की परंपरा है तो तराई में राम और जानकी की भक्ति भावना भी। तराई के मिथिलांचल में स्थित जनकपुर माता जानकी का जन्म स्थान होने के कारण जनकपुर भक्ति साहित्य का भी केंद्र रहा है, जहाँ राम और सीता (किशोरी जी) को लेकर कई सारी रचनाएँ की गई हैं। यहाँ राम–जानकी साहित्य की एक पूरी की पूरी परंपरा सदियों से चली आ रही है, जो अभी तक वास्तविक रूप से साहित्य की मुख्यधारा से नहीं जुड़ पाया है। जनकपुर के इसी भक्ति परंपरा को बताते हुए कृष्णचंद्र मिश्र लिखते हैं कि–

वर्तमान जनकपुर का पुनरुत्थान प्रायः दो–ढाई सौ वर्ष पूर्व हुआ। तबसे यहाँ वैष्णव मठों और मंदिरों की भरमार हो चुकी है। यहाँ के प्रसिद्ध जानकी मंदिर, रसिक निवास, रामानुंदाश्रम आदि प्राचीन सांप्रदायिक मठों में विद्वान संत–महंतों की परंपरा अब तक कायम है। वे अब तक अवधी–ब्रज में काव्य–रचना करते हैं। कुछ नए साधुओं ने खड़ी बोली में भी काव्य–रचना की है। इनका विपुल साहित्य आश्रमों में कुछ प्रकाशित तथा अन्य अप्रकाशित रूप में मिलता है। यहाँ के संतों पर रामभक्ति की शृंगारिक साधना का प्रभाव है। इनमें सबसे प्राचीन रचना 'सीतायन' (रामायण) है।

1. नेपाल में मैथिली भाषा और साहित्य, संजीता वर्मा, पृष्ठ संख्या 137, वर्ष, 2024, नेपाल में हिंदीः स्थिति और संभावना, संपादक– विमलेश कांति वर्मा, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली।

सीतायन के रचयिता महात्मा सूर किशोर माने जाते हैं, जो जनकपुर की सबसे प्राचीन जानकी मूर्ति (किशोरीजी) के अधिष्ठाता थे। उनका समय ईसवी की सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना गया है। वे प्रायः अयोध्या से मिथिला की ओर आए थे, जिसका संकेत उन्होंने स्वयं यों किया है–

"वरणाश्रम धर्म विचार गयो, द्विज, तीरथ, देव भए शिथिला।
रहि और न ठौर कहूँ जग में, तब सूर किशोर तकी मिथिला।"[2]

नेपाल मे मैथिली लोक की भाषा रही है और इसका विकास वहाँ की लोक परंपराओं के अनुरूप ही हुआ है। मैथिली साहित्य के प्रारंभिक स्वरूप की स्पष्ट छवि के दर्शन सिद्धों की रचनाओं की समय से ही होने लगती हैं, जिसके आधार पर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सिद्धों के समय तक मैथिली भाषा का थोड़ा–बहुत विकसित होकर लोक प्रचलन में आ चुका था तथा धीरे–धीरे अपने स्वरूप को गढ़ना शुरू कर दिया था। बात करें नेपाल में मैथिली के विकास की तो नेपाल में भी मैथिली का शुरुआत सिद्धों के दौर से हुआ किंतु साहित्यिक स्वरूप को जिस तरह उभरकर सामने आने की आवश्यकता होती है, वह उसे मल्लकालीन शासकों के दौर में मिला। मल्लकालीन शासन के दौरान मैथिली को फलीभूत होने का पूरा अवसर मिला। इस शासन काल के दौरान सामान्य लेखक, कवि और न सिर्फ दरबारी लेखक विद्वानों ने अपनी लेखनी मैथिली भाषा में चलाई बल्कि मल्लकालीन कई सारे राजा–महाराजाओं ने भी मैथिली भाषा में साहित्यिक रचनाएँ की और विद्यापति की परंपरा को आगे बढ़ाया। इस संदर्भ में रूद्रेन्द्र नाथ लिखते हैं कि–

"इस काल में हिंदी के अंतर्गत अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी आदि की अपेक्षा मैथिली साहित्य (नाटको और गीतों) की अधिक रचना हुई क्योंकि मल्ल राजाओं का मिथिला से बहुत निकट का संबंध था। संवत 1381 ई. में तुगलक सुलतान गयासुद्दीन के मिथिला पर अधिकार कर लेने पर वहाँ के शासक हरिसिंह देव भागकर नेपाल गए थे। उनके साथ मिथिला के अनेक ब्राह्मण विद्वान भी नेपाल गए थे जिन्होने नेपाल उपत्यका में मैथिली–हिंदी साहित्य का पर्याप्त निर्माण किया। हरिसिंह देव के प्रपौत्र–श्याम सिंह की कन्या का विवाह नेपाल के जयस्थिति मल्ल के साथ हुआ था। जयस्थिति मल्ल के राजा बनने पर अनेक मैथिल विद्वानों को नेपाल में राज्याश्रय मिला। यही कारण है कि इस काल में नेपाल उपत्यका में मैथिली साहित्य को अधिक पल्लवित पुष्पित होने का अवसर मिला।

मल्लों का शासनकाल नेपाल में स्थूलतः बारहवीं शताब्दी से प्रारंभ होकर अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक रहा। इस शासनकाल की अंतिम दो (सत्रहवीं, अठारहवीं) शताब्दियों का समय नेपाल में मल्ल–शासन काल का सर्वश्रेष्ठ समय माना

2. नेपाल में हिंदी, डॉ. कृष्ण चंद्र मिश्र, पृष्ठ सं–78, वर्ष–2023, संपादक–डॉ. स्वेता दीप्ति, डॉ. कृष्ण चंद मिश्र, पब्लिकेशन प्रा. लि. काठमांडू।

जाता है। संस्कृत और मैथिली साहित्य का इस काल में अभूतपूर्व विकास हुआ। इस काल के अधिकांश मल्ल शासक स्वयं भी विद्वान और कवि थे जिन्होंने मैथिल विद्वानों को राज्याश्रय देकर नेपाल में मैथिली साहित्य का पर्याप्त विकास कराया और स्वयं भी अनेक सुंदर मैथिली नाटकों और गीतों की रचना की।

डॉ. जयकांत मित्र ने अपने शोध प्रबंध "ए हिस्ट्री आफ मैथिली लिटरेचर" में नेपाल के निम्नलिखित मल्ल शासकों को मैथिली के प्रगीत लेखक के रूप में विद्यापति के पश्चात् उसी परंपरा में माना है। 1. सिद्ध नरसिंह, 2. श्रीनिवास मल्ल, 3. नृप मल्ल देव, 4. भूपतींद्र मल्ल, 5. जगज्योर्तिमल्ल, 6. जगत प्रकाश मल्ल, 7. चंद्रशेखर सिंह, 8. जिता मित्र मल्ल, 9. रणजीत मल्ल।

इन सभी राजाओं ने इस काल में विद्यापति के गीतों के अनुकरण पर अनेक सुंदर मैथिली गीतों की रचना की।" [3]

साहित्यिक विकास परंपरा की उन्नति और लोकप्रियता के आधार पर यदि नेपाल के मल्लकालीन शासन के दौर को मैथिली भाषा और साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा जाए तो यह अतिश्योक्ति नहीं होगी।

नेपाल के मैथिली साहित्य की चर्चा की जाए तो मैथिली भाषा में जो विधा सर्वाधिक रूप से निखरकर हमारे सामने आई तो वह है नाट्य साहित्य। यह नेपाल में मैथिली के प्राचीनतम रूप में उपलब्ध है। नाटक विधा पर नेपाल में व्यापक स्तर पर रचनाएँ हुई साथ ही साथ स्थान पर नाटक खेलने के लिए भी व्यवस्थाएँ बनी हुई थी। मैथिली भाषा के प्रथम नाटक के रूप में उमापति उपाध्याय का सामने आता है। राजा हरिसिंह देव की सभा में ज्योतिश्वर ठाकुर के साथ उमापति उपाध्याय भी रहते थे, इन्होंने 'पारिजात हरण' नामक नाटक लिखा जो संस्कृत, प्रकृति और मैथिली भाषा का संगम है। वहीं नेपाल में खेला गया पहला मैथिली नाटक भैरवानंद है। जिस संदर्भ में रूद्रेन्द्र नाथ बताते हैं कि–

"नेपाल में सर्वप्रथम, माणिक द्वारा– "भैरवानंद" नाटक लिखा गया था जो भक्तपुर के राजा, जयस्थित मल्ल के विवाह के अवसर पर खेला गया था। जयस्थित मल्ल के पुत्र के जन्मोत्सव पर, धर्मगुप्त कृत ''रामायण'' नाटक अभिनीत हुआ था। इस काल में नेपाल में प्रत्येक विशेषोत्सव के अवसर पर, कोई नाटक लिखवाकर अभिनय करने की प्रथा चल निकली थी। उक्त ''भैरवानंद'' और ''रामायण'' नाटको की भाषा संस्कृत मिश्रित मैथिली है।

सन् 1674 ई. में नेपाल उपत्यका के राजा यक्षमल्ल ने अपने राज्य को चार भागो– भक्तपुर, काठमांडू, पाटन और बनेपा में विभाजित कर अपने पुत्रों में बाँट दिया। इस विभाजन के पश्चात् नेपाल में मैथिली नाटकों का बड़े सुंदर ढंग से विकास हुआ।

3. नेपाल के हिंदी साहित्यकार, डॉ. रुद्रेन्द्र नाथ शर्मा, पृष्ठ संख्या 23–24, वर्ष 2008, प्रिया प्रकाशन, निराला नगर, लखनऊ।

सबसे अधिक मैथिली नाटकों की रचना "भक्तपुर राज्य" के आश्रय में हुई। यहाँ के विश्वमल्ल, त्रैलोक्य मल्ल, जगज्योर्तिमल्ल, जगत प्रकाश मल्ल, जितामित्र मल्ल, भूपतींद्र मल्ल तथा रणजीत मल्ल के राज्याश्रय में लगभग 50 मैथिली नाटक लिखे गए। काठमांडू के मल्ल शासकों में प्रताप मल्ल, भूपालेंद्र मल्ल तथा जगज्जयमल्ल के समय में क्रमशः "गीतदिगंबर", "नलचरितनाटक" तथा "अभिनव प्रबोध चन्द्रोदय" नाटक लिखे गए। पाटन राज्य में सिद्धि नरसिंह, श्री निवास मल्ल तथा विष्णुमल्ल के राज्याश्रय में भी क्रमशः "हरिश्चंद्र नृत्यम्", "ललित कुवलयास्व" तथा "उषाहरण"– ये तीन नाटक लिखे गए।"[4]

इस तरह नेपाल में मल्ल राजाओं के शासन काल में मैथिली नाटकों का सकारात्मक विकास लगातार जारी रहा।

नेपाल में मैथिली कथा साहित्य लेखन का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। नेपाल में पहली कहानी का लेखन कार्य जो किया गया, वह 1955 ई. के आस–पास का है और सुंदर झा 'शास्त्री' जी पहले नेपाली मैथिली कथाकार। नेपाल में राणाशाही के अंत के बाद बदलती राजनीति का शिकार भाषाओं को भी होना पड़ा और जिस तरह की राजनीति नेपाल में भाषाओं को लेकर हुई, उसने नेपाल में हिंदी को जड़ से उखाड़ने का काम किया। जिसका सीधा प्रभाव मैथिली भाषा पर भी पड़ा। नेपाल के साथ ही भारत में मैथिली पत्रिकाओं के लगातार बंद होने के कारण मैथिली साहित्यकारों को अभिव्यक्ति के लिए उचित मंच नहीं मिल पा रहा था, जिस कारण नेपाल में मैथिली कथा साहित्य का बहुत विस्तृत क्षेत्र नहीं उभर पाया। इस संदर्भ में धीरेंद्र प्रेमर्षि जी लिखते हैं कि–

"नेपाल के मैथिली साहित्य मे अन्य विधाओं के साथ–साथ कथा विधा की रचनाएँ भी लिखी जा रही हैं। आधुनिक काल के मैथिली साहित्यकार शुरू में विशेषतः काव्य–लेखन में केंद्रित थे, लेकिन विश्व साहित्य में प्रभावशाली साबित हो रही कथा विधा से ये प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। फलतः प्रारंभ में केवल काव्य में कलम चलाने वाले साहित्यकार कथा भी लिखने लगे। इस तरह नेपाल में धीमी गति से प्रारंभ हुई मैथिली कथा लेखन परंपरा ने साठ–सत्तर के दशक में परिणात्मक और गुणात्मक दोनों दृष्टि से उल्लेखनीय स्थान हासिल की। अस्सी के दशक तक भी नेपाल में मैथिली कथा की स्थिति उत्साहजनक ही थी। लेकिन भारत से प्रकाशित होने वाली मिथिला मिहिर, पल्लव आदि पत्रिकाएँ बंद हो जाने के बाद संपूर्ण मैथिली जगत् प्रभावित हुआ। कहना न होगा, नेपाल की मैथिली कथा लेखन परंपरा भी प्रभावित हुई। लेकिन कहा जाता है सृजना अपनी अभिव्यक्ति के लिए कोई न कोई रास्ता ढूंढ़ ही लेती है। मैथिली के साथ भी यही हुआ। पत्रिकाओं का अभाव होते हुए मैथिली

4. नेपाल के हिंदी साहित्यकार, डॉ. रुद्रेन्द्र नाथ शर्मा, पृष्ठ संख्या 411–412, वर्ष 2008, प्रिया प्रकाशन, निराला नगर, लखनऊ।

कथा–साहित्य ने अपनी यात्रा जारी रखी। अस्सी के दशक में शुरू हुई तिमाही कथागोष्ठी– 'सगर राति दीप जरए' की अनवरत श्रृंखला मैथिली कथा के विकास में युगांतकारी साबित हुई। इसने नेपाल की मैथिली कथाकारिता में भी पुनर्जीवन लाने का काम किया।" [5]

जिस प्रकार हिंदी साहित्य जगत से विद्यापति और उनकी रचनाओं को अलग नहीं किया जा सकता। ठीक उसी प्रकार मैथिली को भी हिंदी से अलग नहीं स्वीकार किया जा सकता। भाषाई दृष्टि से तो आज भी मैथिली और हिंदी अभिन्न रूप में एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। भले ही मैथिली को राजनीतिक कारणों से स्वतंत्र भाषा के रूप में स्थान दे दिया गया हो। परंतु मैथिली समाज को हिंदी समाज से अलग नहीं किया जा सकता। नेपाल में इसी मैथिली–हिंदी भाषा विवाद को हवा देकर राजनीतिक पार्टियाँ नेपाल में मैथिली और हिंदी दोनों के ही अस्तित्व को धूमिल करने में लगी हुई हैं। लेकिन उससे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि नेपाल के मैथिली भाषी जनता भी इस बात से अनजान नजर आ रही है।

नेपाल में राज–काज और साहित्यिक प्रयोग के कारण नेपाल में मैथिली का स्वरूप प्रारंभ से ही समृद्ध और विकसित रहा। जिसका प्रभाव आज भी नेपाल में देखा जा सकता है। नेपाल की जनगणना के अनुसार 32 लाख 22 हजार 389 लोग नेपाल में मातृभाषा के रूप में मैथिली का प्रयोग करते हैं। जो नेपाल की कुल जनसंख्या का 11.05 प्रतिशत है। इसके साथ ही द्वितीय भाषा के रूप में भी इस मैथिली का प्रयोग करने वालों की संख्या 267621 है। जो द्वितीय भाषा के रूप में भी दूसरे स्थान पर है।

अगर नेपाल में प्रिंट मीडिया की बात करें तो अकेले मैथिली भाषा की 46 पत्रिकाएँ छपती हैं तथा एक पत्रिका मैथिली–इंग्लिश में अलग से छपने के साथ–साथ नेपाली, इंग्लिश और मैथिली भाषाओं को जोड़कर तीन और पत्रिकाएँ छपती हैं। इस प्रकार संपूर्ण नेपाल में 50 के लगभग मैथिली पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है।

❑❑❑

संपर्क:

अमित कुमार जायसवाल– नगर पंचायत ऑफिस, गोलाबाजार, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारत– 273408 ई–मेल– amitjaiswal19hhph13@gmail.com, मो.– 7318191232

5. नेपाल की मैथिली कथा–धारा, धीरेंद्र प्रेमर्षि, पृष्ठ संख्या 167, अंक 9, वर्ष 2021, रूपांतरण पत्रिका, नेपाल प्रज्ञा–प्रतिष्ठान, काठमांडू।

हिंदी और मणिपुरी भाषाओं की व्याकरणिक कोटियों का व्यतिरेकी अध्ययन

चान्दम इङो सिंह*

प्रस्तुत आलेख में हिंदीतर प्रदेश मणिपुर के मणिपुरी भाषी विद्यार्थियों द्वारा हिंदी सीखने की प्रक्रिया में आने वाली समस्याओं एवं व्याघातों पर विचार किया गया है। मणिपुर भारत का एक बहुभाषिक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध राज्य है, जहाँ हिंदी दूसरी भाषा के रूप में शिक्षण संस्थानों में पढ़ाई जाती है। यद्यपि हिंदी भारत की राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में व्यापक रूप से स्वीकृत है, तथापि मणिपुरी भाषाभाषियों के लिए हिंदी का अधिग्रहण (language acquisition) कई भाषिक और व्याकरणिक दृष्टियों से चुनौतीपूर्ण सिद्ध होता है।

हिंदी और मणिपुरी दो भिन्न भाषा परिवारों से संबंधित भाषाएँ हैं– हिंदी भारोपीय (Indo & Aryan) भाषा परिवार की सदस्य है, जबकि मणिपुरी तिब्बती–बर्मी (Tibeto & Burman) भाषा परिवार से संबंधित है। दोनों भाषाओं की व्याकरणिक संरचना, ध्वन्यात्मक प्रणाली, रूपात्मक निर्माण तथा वाक्य रचना में मौलिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। यही कारण है कि जब मणिपुरी भाषी विद्यार्थी हिंदी सीखने का प्रयास करते हैं, तो उन्हें कई प्रकार की व्याकरणिक कठिनाइयों एवं प्रयोगगत व्याघातों का सामना करना पड़ता है।

इन व्याकरणिक भिन्नताओं में प्रमुख बातें उल्लेखनीय हैं–

- हिंदी की लिंग, वचन, पुरुष, कारक और काल आदि व्याकरणिक कोटियों का वाक्य में एकरूपता या अन्विति, जो मणिपुरी में अनुपस्थित या सीमित है;
- हिंदी में सहायक क्रियाओं का प्रयोग है, जबकि मणिपुरी में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं;
- मणिपुरी की तान–प्रधानता(tone system) हिंदी भाषियों के लिए अपरिचित है, जबकि हिंदी में अर्थ स्वर या तान पर निर्भर नहीं होता।

* सहायक आचार्य, मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, मणिपुर

इन सभी भिन्नताओं के कारण मणिपुरी भाषी विद्यार्थियों को हिंदी के वाक्य विन्यास, क्रिया रूप, लिंग–निर्धारण, कारक चिह्नों और काल के प्रयोग में अनेक प्रकार की गलतियाँ या असंगतियाँ दिखाई देती हैं। यही व्याकरणिक व्यवधान (grammatical interference) उनके हिंदी अधिग्रहण में प्रमुख बाधा बनते हैं।

अतः इस आलेख का प्रमुख उद्देश्य हिंदी और मणिपुरी के व्याकरणिक ढाँचों के व्यतिरेकी अध्ययन के माध्यम से उन भाषिक भिन्नताओं को रेखांकित करना है, जिनके कारण मणिपुरी भाषी विद्यार्थियों को हिंदी सीखने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। साथ ही, इन व्याकरणिक व्याघातों के समाधान के लिए शिक्षण–प्रक्रिया में अपनाई जा सकने वाली उपयुक्त विधियों एवं रणनीतियों पर भी विचार प्रस्तुत करना इस अध्ययन का मुख्य लक्ष्य है।

हिंदी भाषा विश्व की समृद्ध, सशक्त और व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। यह केवल एक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, परंपरा और विचारधारा की संवाहक भाषा है। हिंदी अपनी सहजता, सरलता और सुबोधता के कारण जन–जन की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। इसकी संरचना में न केवल भाषिक सौंदर्य निहित है, बल्कि यह विचारों को स्पष्ट, संक्षिप्त और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता रखती है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 343 के अंतर्गत हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। यह राजभाषा होने के साथ–साथ संपूर्ण भारतवर्ष की संपर्क भाषा (लिंगुआ फ्रांका) के रूप में भी कार्य करती है, जो देश के विविध भाषाई समुदायों को एक सूत्र में जोड़ती है। इस दृष्टि से हिंदी केवल एक भाषा नहीं, बल्कि राष्ट्रीय एकता का सेतु है।

हिंदी का व्याकरण अत्यंत सुनियोजित, सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक है। इसमें ध्वनि, रूप, वाक्य और अर्थ– चारों स्तरों पर संतुलन और सुसंगति पाई जाती है। हिंदी की ध्वन्यात्मक प्रणाली स्पष्ट एवं स्थिर है; रूपात्मक स्तर पर उपसर्ग, प्रत्यय और समास के माध्यम से शब्द निर्माण की समृद्ध परंपरा है; वाक्य–रचना की दृष्टि से यह कर्ता–कर्म–क्रिया (SOV) क्रम का पालन करती है, जो अर्थ की दृष्टि से तार्किकता और स्पष्टता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, हिंदी में लिंग, वचन, पुरुष, कारक, काल और पक्ष जैसी व्याकरणिक कोटियाँ अत्यंत सुव्यवस्थित रूप से विकसित हैं, जो इसे वैज्ञानिक और व्यवस्थित भाषा बनाती हैं।

समग्रतः हिंदी का व्याकरण उसकी संरचनात्मक स्थिरता, अभिव्यक्तिपरक लचीलापन और तार्किक एकरूपता का प्रतीक है। यही विशेषता हिंदी को विश्व की प्रमुख भाषाओं में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है तथा इसे एक जीवंत, गतिशील और जनमानस से जुड़ी भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

दूसरी ओर मणिपुरी भाषा भारत के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र में स्थित मणिपुर राज्य की प्रमुख राजभाषा है। यह भाषा न केवल प्रशासनिक एवं शैक्षणिक स्तर पर प्रयोग में लाई जाती है, बल्कि मणिपुर राज्य के विभिन्न जनजातीय एवं सामाजिक समूहों के मध्य संपर्क भाषा(Lingua Franca) के रूप में भी कार्य करती है। भौगोलिक दृष्टि से मणिपुर भारत की सीमांत भूमि पर स्थित है, परंतु भाषाई एवं सांस्कृतिक दृष्टि से यह अत्यंत समृद्ध क्षेत्र है, जहाँ मणिपुरी भाषा एक सशक्त माध्यम के रूप में विकसित हुई है।

मणिपुरी भाषा को मैतैलोन(मणिपुर के बहुसंख्यक मैतै समुदाय की भाषा) भी कहा जाता है। यह भाषा तिब्बती–बर्मी भाषा परिवार (Tibeto & Burman Family) की एक अत्यंत विकसित और समृद्ध भाषा है। मणिपुरी की भाषिक संरचना सरल, सुबोध और अभिव्यक्तिपूर्ण है। यह ध्वन्यात्मक दृष्टि से सुस्पष्ट तथा रूपात्मक दृष्टि से अत्यंत विशिष्ट है। मणिपुरी भाषा का व्याकरण तो है, किंतु वह हिंदी की भाँति गहन, विस्तृत और सुव्यवस्थित नहीं है। हिंदी जहाँ संरचनात्मक रूप से प्रत्यय और कारक चिह्नों द्वारा स्पष्ट व्याकरणिक रूप प्रस्तुत करती है, वहीं मणिपुरी भाषा प्रत्यय–प्रधान (Suffix & Oriented) तथा तान–प्रधान (Tone & Based) भाषा है। अर्थात्, मणिपुरी में शब्दों के रूप परिवर्तन मुख्यतः प्रत्ययों के माध्यम से होते हैं और शब्दों के अर्थ में भेद तान या स्वर (Pitch/Tone) के परिवर्तन से प्रकट होता है।

मणिपुरी भाषा की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसके अधिकांश शब्द एकाक्षरी (monosyllabic) होते हैं। भाषा में शब्द–निर्माण की प्रक्रिया मुख्यतः प्रत्ययात्मक है, जिसके माध्यम से एक ही मूल शब्द से अनेक शब्द–रूप निर्मित किए जाते हैं। उदाहरणस्वरूप 'चा' धातु का मूल अर्थ 'खा' है। इस धातु में प्रत्यय '~बा' के योग से 'चाबा' (खाना) क्रियार्थक संज्ञा का निर्माण होता है। इसी धातु में पूर्व प्रत्यय 'अ्' के प्रयोग से 'अचा' (खाने योग्य) विशेषण शब्द बनता है, जबकि प्रत्यय '~इ' के संयोजन से 'चाइ' (खाता है) क्रिया–रूप प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट होता है कि मणिपुरी भाषा में प्रत्ययों के प्रयोग द्वारा शब्द–वर्ग परिवर्तन एवं शब्द–विस्तार की प्रक्रिया अत्यंत सृजनात्मक तथा व्यवस्थित है, जिसके परिणामस्वरूप एक ही मूल धातु से विभिन्न व्याकरणिक कोटियों के शब्द निर्मित किए जा सकते हैं।

मणिपुरी भाषा की एक विशिष्ट विशेषता इसकी तान–प्रधानता (tonal language) है। 'तान–प्रधान' से आशय यह है कि एक ही शब्द का अर्थ, बोलने के स्वर या तान के अनुसार बदल जाता है। उदाहरण के लिए– 'पाई' शब्द को यदि सम ताल (neutral tone) में बोला जाए तो इसका अर्थ होंगे 'पकड़ता है' या 'पढ़ता है'; यदि इसे उच्च तान (high tone) में बोला जाए तो अर्थ होगा 'उड़ता है'; और यदि इसे निम्न तान (low tone) में बोला जाए तो इसका अर्थ होगा 'पतला है'। इस प्रकार, तान

मणिपुरी भाषा में अर्थभेदक भूमिका निभाती है। यह विशेषता हिंदी जैसी आर्य भाषाओं में नहीं पाई जाती, जिससे मणिपुरी अपनी ध्वन्यात्मक दृष्टि से अत्यंत विशिष्ट हो जाती है। मणिपुरी भाषा में इस प्रकार के तान–आधारित अर्थभेदक शब्द प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। कुछ अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं–

चौ~ (लाठी), चा^(डाँटा है), चाइ~(खता है), चाइ^(बिखरता है), इ~(खून), इ^(लिखता है), पै~(टेढ़ा है), पै^(ढेर लगता है), ताइ~(सुनता है), ताइ^(गीरता है), ताइ'(पड़ता है) आदि।

मणिपुरी व्याकरण में संज्ञा को छोड़कर अन्य शब्द वर्गों का कोई स्थाई या निश्चित वर्ग नहीं होता। एक ही शब्द, उसके प्रयोग और प्रत्यय के अनुसार, संज्ञा, क्रिया या विशेषण का रूप धारण कर सकता है। उदाहरणस्वरूप 'चाब'(खाना) मूलतः एक क्रियार्थक संज्ञा है किंतु इसे विशेषण के रूप में भी प्रयोग किया जाता है, यथा– ङा चबा मी'(मछली खाने वाला आदमी)। शब्द–रचना की यह लचीलापन मणिपुरी भाषा की रचनात्मकता और व्याकरणिक स्वतंत्रता का प्रमाण है।

वाक्य–रचना की दृष्टि से मणिपुरी भाषा का क्रम हिंदी के समान है. कर्ता + कर्म + क्रिया (SOV)। उदाहरणतः "महाक(कर्ता) लाइरिक(कर्म) पाई(क्रिया)" का हिंदी में शाब्दिक अर्थ होगा– "वह किताब पढ़ता है"। यद्यपि दोनों भाषाओं में वाक्य क्रम समान है, फिर भी मणिपुरी में सहायक क्रियाओं (Auxiliary Verbs) का अभाव पाया जाता है। मणिपुरी में क्रियाओं के रूपांतरण में समय और पुरुष का बोध मुख्यतः प्रत्ययों के माध्यम से किया जाता है।

हिंदी और मणिपुरी भाषाएँ भिन्न–भिन्न भाषा–परिवारों से संबद्ध होने के कारण उनकी भाषिक संरचना में मूलभूत अंतर परिलक्षित होता है। इन दोनों भाषाओं के बीच ध्वन्यात्मक (phonological), रूपात्मक (morphological), व्याकरणिक तथा वाक्य–रचनात्मक (syntactic) स्तरों पर स्पष्ट व्यतिरेकी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। इन संरचनात्मक भिन्नताओं के परिणामस्वरूप मणिपुरी भाषी विद्यार्थियों को हिंदी भाषा–अधिगम की प्रक्रिया में अनेक प्रकार की व्याकरणिक एवं संरचनात्मक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विशेषतः मातृभाषा के अंतरण (language transfer) के प्रभाव के कारण हिंदी की ध्वनियाँ, शब्द–रचना तथा वाक्य–विन्यास मणिपुरी भाषी शिक्षार्थियों के लिए अपेक्षाकृत जटिल सिद्ध होते हैं। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, हिंदी और मणिपुरी भाषाओं के प्रमुख व्याकरणिक अंतरों का संक्षिप्त विश्लेषण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

लिंगः हिंदी में लिंग दो प्रकार के माने जाते हैं– पुलिंग और स्त्रीलिंग। हिंदी की लिंग–व्यवस्था मुख्यतः व्याकरणिक है, अर्थात् संज्ञाओं का लिंग हमेशा उनके प्राकृतिक लिंग पर आधारित नहीं होता। अनेक निर्जीव वस्तुओं के लिए भी व्याकरणिक

रूप से लिंग निर्धारित होता है, जैसे– 'किताब' स्त्रीलिंग तथा 'कमरा' पुर्लिंग। हिंदी में लिंग के अनुसार विशेषण और क्रिया दोनों के रूपों में परिवर्तन होता है, जिससे वाक्य के पदों के बीच लिंग–आधारित अन्विति स्थापित होती है।

इसके विपरीत, मणिपुरी भाषा में भी लिंग दो प्रकार– पुलिंग और स्त्रीलिंग स्वीकृत हैं, किंतु यहाँ लिंग–व्यवस्था पूर्णतः प्राकृतिक लिंग पर आधारित है। मणिपुरी में निर्जीव वस्तुओं का कोई लिंग नहीं माना जाता तथा लिंग के आधार पर क्रिया और विशेषण के रूपों में सामान्यतः कोई परिवर्तन नहीं होता। अपवाद के रूप में कुछ विशेषण शब्द संज्ञा के लिंग के प्रभाव से अपने रूप में हल्का परिवर्तन दिखाते हैं, जैसे– 'भजबी नुपी' (सुंदर लड़की), 'अफबी मामा' (अच्छी माँ) इत्यादि। हिंदी की अपेक्षा मणिपुरी में लिंग–आधारित व्याकरणिक अन्विति का अभाव है। उदाहरण के लिए.'राम स्कूल चतली' (राम स्कूल जाता है) और 'सीता स्कूल चतली'(सीता स्कूल जाती है)– दोनों वाक्यों में कर्ता का लिंग भिन्न होने पर भी क्रिया समान रहती है; इससे स्पष्ट है कि क्रिया पर कर्ता के लिंग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यही कारण है कि मणिपुरी भाषी विद्यार्थियों के लिए हिंदी के लिंग–निर्धारण को समझना तथा हिंदी के शब्दों का उपयुक्त लिंग–प्रयोग करना अत्यंत कठिन तथा चुनौतीपूर्ण होता है।

वचनः वचन हिंदी भाषा की एक महत्त्वपूर्ण व्याकरणिक कोटि है, जिसके माध्यम से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया– इन सभी पदों के एकवचन और बहुवचन रूपों का निर्धारण किया जाता है। हिंदी में वचन–भेद रूप–परिवर्तन से स्पष्ट रूप में प्रकट होता है; अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त शब्द वचन के अनुसार अपना रूप बदलते हैं।

उदाहरणः "अच्छा लड़का जाता है" (एकवचन) और "अच्छे लड़के जाते हैं" (बहुवचन)। इन वाक्यों में संज्ञा लड़का/लड़के, विशेषण अच्छा/अच्छे तथा क्रिया जाता है/जाते हैं– तीनों में वचन के अनुसार रूपांतर दिखाई देता है। इससे स्पष्ट होता है कि हिंदी में वचन केवल संज्ञा या सर्वनाम तक सीमित नहीं है, बल्कि विशेषण और क्रिया भी वचन–सामंजस्य के अनुसार परिवर्तित होते हैं।

हिंदी में बहुवचन निर्माण विभिन्न प्रत्ययों और रूप–परिवर्तनों के माध्यम से होता है, जैसे–

- लड़का → लड़के
- लड़की → लड़कियाँ
- घर → घरों

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि हिंदी में बहुवचन बनाने का एक समान नियम नहीं है; बल्कि यह शब्द की प्रकृति, श्रेणी और व्युत्पत्ति (तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी आदि) के अनुसार बदल सकता है। अतः हिंदी की वचन–व्यवस्था उसके रूप–

व्यंजनात्मक (morphological) स्वरूप को प्रमुख रूप से दर्शाती है।

इसके विपरीत, मणिपुरी भाषा में वचन–व्यवस्था अधिक सरल और सुव्यवस्थित मानी जाती है। इस भाषा में बहुवचन का संकेत मुख्यतः संज्ञा और सर्वनाम के साथ लगे विशिष्ट वचन–द्योतक प्रत्ययों से किया जाता है, जैसे–

- संज्ञा मेंः– सिं, –याम
- सर्वनाम मेंः –खोय

ध्यान देने योग्य बात यह है कि मणिपुरी में न तो क्रियाएँ और न ही विशेषण वचन के आधार पर अपना रूप बदलते हैं; वे एकवचन और बहुवचन दोनों में समान रहते हैं।

उदाहरण–

- "नुपामाचा चतली" (लड़का जाता है)
- "नुपमचासिं चतली" (लड़के जाते हैं)

यहाँ बहुवचन का संकेत केवल संज्ञानुपामाचा में प्रयुक्त ~सिं प्रत्यय से मिलता है, जबकि क्रियाचतली दोनों ही रूपों में अपरिवर्तित रहती है। इसी प्रकार–

- अफबा नुपामाचा (अच्छा लड़का)
- अफबा नुपमचासिं (अच्छे लड़के)

इन उदाहरणों में विशेषणअफबा का रूप दोनों में समान रहता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मणिपुरी भाषा में विशेषण और क्रिया वचन–निरपेक्ष (number & neutral) रूप में प्रयुक्त होती हैं।

अतएव स्पष्ट है कि हिंदी में वचन–निर्धारण व्यापक रूप–परिवर्तनों पर आधारित है और वाक्य के पदों के बीच व्याकरणिक अन्विति (agreement) अनिवार्य होती है। इसके विपरीत, मणिपुरी की वचन–व्यवस्था सीमित, सरल और मुख्यतः संज्ञा एवं सर्वनाम पर केंद्रित है। यही कारण है कि हिंदी सीखने वाले मणिपुरी भाषी विद्यार्थियों के लिए हिंदी में वचन–संबंधी रूप–परिवर्तन–विशेषकर क्रिया, विशेषण और सर्वनाम के स्तर पर– अधिक चुनौतीपूर्ण सिद्ध होते हैं।

पुरुषः हिंदी में पुरुष सर्वनाम से संबंधित एक व्याकरणिक इकाई है। हिंदी में पुरुष तीन प्रकार के होते हैं. प्रथम पुरुष, माध्यम पुरुष और अन्य पुरुष। पुरुष–विभाजन के आधार पर क्रियापद के रूप में परिवर्तन होता है, जिससे वाक्य में संबोधन तथा कर्ता का संबंध स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है। उदाहरण के लिए– "मैं जाता हूँ" (प्रथम पुरुष), "तुम जाते हो/आप जाते हैं" (माध्यम पुरुष) तथा"वह जाता है/वे जाते हैं" (अन्य पुरुष) में पुरुष के अनुसार क्रिया–रूप भिन्न हैं। संक्षेप में, हिंदी में पुरुष–विभाजन कर्ता की पहचान तथा क्रियापद के स्वरूप को निर्धारित करने का महत्त्वपूर्ण मानदंड है।

इसके विपरित मणिपुरी भाषा में भी पुरुष तीन प्रकार– प्रथम, माध्यम (द्वितीय)

और अन्य (तृतीय) पुरुष– स्वीकृत हैं, किंतु यहाँ पुरुष–परिवर्तन के आधार पर क्रिया–रूप में कोई भिन्नता नहीं पाई जाती। अर्थात् मणिपुरी में पुरुष के अनुसार क्रिया रूप अपरिवर्तित रहता है, इसलिए वाक्य के पदों के बीच हिंदी की भाँति पुरुषगत अन्विति नहीं बनती।

उदाहरण के लिए–

पुरुष	**एकवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	ऐ चतली (मैं जाता हूँ)	ऐखोय चतली (हम जाते हैं)
माध्यम पुरुष	नङ चतली (तुम जाते हो)	नखोय चतली (तुम लोग जाते हो)
अन्य पुरुष	महाक चतली (वह जाता है)	मखोय चतली (वे जाते हैं)

इन सभी उदाहरणों में स्पष्ट है कि सर्वनाम में पुरुष के अनुसार परिवर्तन होता है, परंतु क्रियापदचतली सभी रूपों में समान रहता है।

अतः हिंदी में जहाँ पुरुष–विभाजन क्रिया–रूपों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाता है, वहीं मणिपुरी में पुरुष–व्यवस्था केवल कर्ता–चिह्न तक सीमित रहती है। यही संरचनात्मक अंतर मणिपुरी भाषी विद्यार्थियों के लिए हिंदी के पुरुष–आधारित क्रियारूपों को सीखने में अतिरिक्त चुनौती उत्पन्न करता है।

कारक: कारक हिंदी भाषा की एक प्रमुख व्याकरणिक कोटि है, जिसका मूल उद्देश्य वाक्य में विभिन्न पदों के मध्य व्याकरणिक एवं अर्थ–संबंध स्थापित करना है। कारक के माध्यम से वाक्य में प्रयुक्त संज्ञा अथवा सर्वनाम की भूमिका स्पष्ट होती है और यह भूमिका प्रायः कारक–चिह्नों (postpositions) के द्वारा निर्धारित होती है। हिंदी में सामान्यतः आठ कारक माने जाते हैं.

कर्ता(०/ने), कर्म(को), करण(से/के द्वारा), संप्रदान (को/के लिए), अपादान (से), संबंध (का/के/की), अधिकरण (में/पर) तथा संबोधन (हे/ओ/अरे)।

हिंदी में कारक का संबंध मुख्यतः परसर्गों जैसे– ने, को, से, में, पर, का, के, की आदिसे होता है। इन्हीं परसर्गों के आधार पर वाक्य में संज्ञा/सर्वनाम का कार्य निश्चित होता है। जब किसी संज्ञा या सर्वनाम के साथ कारक –चिह्न जुड़ता है, तब शब्द –रूप में जो परिवर्तन उत्पन्न होता है, उसे विकृति अथवा विकृत रूप कहा जाता है। उदाहरणार्थ–

- लड़का + ने = लड़के ने (एकवचन)
- लड़के + ने = लड़कों ने (बहुवचन)
- वह + ने = उसने

हिंदी वाक्य– संरचना में कारक–चिह्नों का विशेष व्याकरणिक प्रभाव देखा

जाता है। विशेष रूप से, कर्ता पर 'ने' लगने से कर्ता का प्रभाव क्रिया–रूप पर समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार, कर्म पर 'को 'लगने से भी कर्म का प्रभाव क्रिया–रूप पर नहीं पड़ता। परिणामस्वरूप, ऐसी संरचनाओं में हिंदी की क्रिया अक्सर एक वचन पुल्लिंग रूप में प्रयुक्त होती है, चाहे कर्ता या कर्म का लिंग अथवा वचन कुछ भी हो। उदाहरण.

- मैंने रोटी खाई।
- मैंने उसे बुलाया।
- सीता ने पत्र को पढ़ा।

इस प्रकार, हिंदी भाषा में कारक–प्रणाली वाक्य–संरचना, अर्थ–संबंध एवं क्रिया–रूप निर्धारण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह संज्ञा/सर्वनाम की भूमिका को स्पष्ट करती है और भाषा के व्याकरणिक ढाँचे को व्यवस्थित बनाती है।

मणिपुरी भाषा में भी कारक एक केंद्रीय व्याकरणिक कोटि है, जो वाक्य में संज्ञा/सर्वनाम की भूमिका और उनके कार्य को सूचित करती है। मणिपुरी में सामान्यतः आठ कारक माने जाते हैं. कर्ता(ना), कर्म(बु), करण(ना), अपादान(दगी), संबंध (गी), अधिकरण (दा), सहचारी (associative) (गा) तथा संबोधन (हो/हे) (सी. एच. यशवंत सिंह, मणिपुरी ग्रामर, पृ. 82)।

हिंदी से भिन्न, मणिपुरी भाषा में कारक के आधार पर संज्ञा या सर्वनाम के रूप में किसी प्रकार का रूप–परिवर्तन (inflection) नहीं होता। मणिपुरी में संज्ञा/सर्वनाम का कोई विकृत रूप प्राप्त नहीं होता तथा कारक–चिह्नों के प्रयोग से वाक्य–पदों के स्वरूप में भी कोई परिवर्तन नहीं आता। अर्थात् कारक के अनुसार वाक्य के पदों के बीच किसी प्रकार की अन्विति नहीं है। अतः मणिपुरी भाषा में कारकसूचक प्रत्यय केवल व्याकरणिक भूमिका–निर्धारण का कार्य करते हैं, न कि शब्द–रूप परिवर्तन का।

इसी कारण, मणिपुरी–भाषी शिक्षार्थियों को हिंदी सीखते समय कारक–प्रयोग से संबंधित त्रुटियों का सामना करना पड़ता है। चूँकि उनकी मातृ भाषा में कारक–चिह्नों के कारण किसी रूप–विकृति का अनुभव नहीं होता, इसलिए हिंदी मेंने, को, से, का, में आदि कारक परसर्गों से उत्पन्न रूप–भेद उन्हें स्वाभाविक रूप से समझ में नहीं आते।

कालः हिंदी में काल (Tense) क्रिया का वह व्याकरणिक रूप है, जिसके द्वारा यह पता चलता है कि कार्य कब हुआ है. अतीत में, वर्तमान में या भविष्य में। काल समय के आधार पर क्रिया की स्थिति को स्पष्ट करता है। हिंदी में काल तीन प्रकार के होते हैं– वर्तमान काल, भूत काल और भविष्य काल।

वाक्य में क्रिया के रूप को देखकर काल की पहचान की जाती है। पहचान के कुछ सामान्य संकेत इस प्रकार हैं–

(क) वर्तमान काल

पहचानः

• क्रिया के रूप– "ता/ती/ते + है/हूँ/हो/हैं"

• सामान्य रूप से वर्तमान समय दर्शाने वाले शब्द.अब, आजकल, इस समय, आदि

उदाहरणः

• वह खाता है।

• मैं पढ़ रहा हूँ।

(ख) भूतकाल

पहचानः

• क्रिया के रूप. "ता/ती/ते था/थी/थे"

• "गया, किया, आया" आदि रूप

उदाहरणः 1. वह खाता था। 2. वह बाजार गई।

(ग) भविष्यत् काल

पहचानः

• क्रिया के रूप. "गा/गी/गे"

• "करूँगा, जाएगा, होगा" आदि

उदाहरणः 1. वह जाएगा। 2. मैं काम करूँगा।

काल को स्पष्ट करने में 'है, हूँ, हो, थे, था, हूँगा, होगा' आदि सहायक क्रियाएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं।

इसके विपरीत मणिपुरी भाषा में क्रिया–रूपों के आधार पर काल का स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। मणिपुरी में न तो हिंदी जैसी काल–चिह्नित सहायक क्रियाएँ मिलती हैं, और न ही क्रिया–धातु में ऐसे परिवर्तन होते हैं जो वर्तमान तथा भूत काल का भेद स्थापित कर सकें। उदाहरण देखिए–

• राम ङसि स्कूल चत्ली। (राम आज स्कूल जाता है।)

• राम ङरां स्कूल चत्ली। (राम कल स्कूल गया।)

इन दोनों वाक्यों में क्रिया–रूप 'चत्ली' समान रहता है, जबकि काल का भेद केवल संदर्भसूचक शब्दों (ङसि = आज, ङरां = कल) से स्पष्ट होता है। इसी प्रकार.

व राम हयें स्कूल चत्कनी। (राम कल स्कूल जाएगा।)

यहाँ ~कनी/गनी प्रत्यय भविष्य बोधक है, अर्थात् भविष्य की सूचना देने के लिए मणिपुरी में विशेष प्रत्ययों का उपयोग किया जाता है।

इसी विशेषता को देखते हुए प्रो. सी. एच. यशवंत ने Manipuri Grammar में यह मत प्रस्तुत किया है कि मणिपुरी भाषा में हिंदी की तरह 'काल' (Tense) की कोटि नहीं

पाई जाती। उन्होंने मणिपुरी में काल के स्थान पर 'पक्ष' (Aspect) को अधिक उपयुक्त माना है, क्योंकि मणिपुरी क्रिया–विन्यास में क्रिया के संपन्न, अपूर्ण, प्रगतिशील आदि रूप अर्थात क्रिया की स्थिति या गुज़रने की प्रकृति अधिक स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होते हैं, जबकि काल का संकेत संदर्भ या अव्ययों पर निर्भर रहता है।

अतः कहा जा सकता है कि–

• **हिंदी में काल**– व्याकरणिक श्रेणी, जो क्रिया–रूपों एवं सहायक क्रियाओं से स्पष्ट होती है।

• **मणिपुरी में काल**– व्याकरणिक रूप से चिह्नित नहीं, बल्कि संदर्भ, समय–सूचक अव्यय और भविष्य–बोधक प्रत्ययों पर निर्भर है।

इस कारण मणिपुरी व्याकरण में 'काल' की अपेक्षा 'पक्ष' को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

पक्षः

मणिपुरी भाषा में क्रिया के चार प्रमुख पक्ष (Aspect) माने गए हैं.सामान्य पक्ष, सतत् पक्ष, पूर्ण पक्ष तथा अपूर्ण पक्ष। ये प्रत्ययों के माध्यम से क्रिया की प्रगति, सम्पन्नता तथा कालगत स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। मणिपुरी में पक्ष–प्रत्यय क्रियाओं से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ते हैं, जबकि हिंदी में पक्ष का बोध मुख्यतः सहायक क्रियाओं, – दंत रूपों तथा वर्णनात्मक संरचनाओं के माध्यम से किया जाता है। प्रस्तुत विवेचन मणिपुरी के पक्ष–रूपों का उदाहरण सहित विश्लेषण एवं हिंदी से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है–

1. सामान्य पक्ष

सामान्य पक्ष से अभिप्रेत ऐसी क्रिया से है जो आदतन, सर्वकालिक या स्वाभाविक रूप से घटित होती है। मणिपुरी में इसके लिए प्रायः ~इ/~ङी प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण–

• नुमित्ना नोंपोक्ता थोकइ– "सूर्य पूर्व से निकलता है।"

• महक चाक थोंङी– "वह भोजन पकाता है।"

• गीता ङा चाइ– "गीता मछली खाती है।"

हिंदी में सामान्य पक्ष के लिए समान्य वर्तमान काल (Simple Present) का प्रयोग होता है। सूरज पूर्व से निकलता है, वह खाना बनाता है। हिंदी में क्रिया–रूप परिवर्तन द्वारा पक्ष स्पष्ट होता है, जबकि मणिपुरी में रूपांतरण न्यून एवं प्रत्ययात्मक है।

2. सतत् पक्ष (Progressive Aspect)

सतत् पक्ष का प्रयोग उस क्रिया के लिए होता है जो बोलने के समय जारी हो। मणिपुरी भाषा में इसके लिए ~री/~ली प्रत्यय लगाए जाते हैं।

उदाहरण–

• राम हौजिक लाइरिक पारी– "राम अभी पुस्तक पढ़ रहा है।"

• महाक लाइ येकली– "वह चित्र बना रहा है।"

• ऐखोय इशै तारी– "हम गाना सुन रहे हैं।"

हिंदी में सतत् पक्ष क्रिया मूल + रहा/रही/रहे + है/हूँ/हैं से बनता है। जबकि मणिपुरी में प्रत्यय ~री/लीस्वयं सतत् स्थिति का संकेतक होता है, अतः सहायक क्रिया की आवश्यकता नहीं रहती।

3. पूर्ण पक्ष (Perfect Aspect)

पूर्ण पक्ष उस क्रिया को सूचित करता है जो पूर्ण रूप से संपन्न हो चुकी हो। मणिपुरी में इसके लिए ~रे, ~ले, ~खे प्रत्ययों का प्रचलन है।

उदाहरण–

• महाक हिदाक अदु चारे– "उसने वह दवाई खा ली।"

• ऐ चाक चारे– "मैं भोजन खा चुका हूँ।"

• राम स्कूल चत्खे– "राम स्कूल चला गया।"

हिंदी में पूर्ण पक्ष के लिए चुका/चुकी/चुके, लिया/ली/लिए तथा गया/गई/गए जैसे रूप और सहायक क्रियाएँ प्रयुक्त होती हैं। मणिपुरी में प्रत्यय–आधारित पूर्णता–सूचकता हिंदी की तुलना में अधिक संक्षिप्त और नियमित है।

4. अपूर्ण पक्ष/अनिस्पन्न पक्ष (Incomplete/Prospective Aspect)

अपूर्ण पक्ष वह क्रिया व्यक्त करता है जो अभी सम्पन्न नहीं हुई है, पर भविष्य में सम्पन्न होने की योजना, अपेक्षा या अनुमान है। मणिपुरी में इसके लिए ~गनी / ~कनी प्रत्यय लगाए जाते हैं।

उदाहरण–

ऐखोय हयें चीं कगनी– "हम कल पर्वत पर चढ़ेंगे।"

महाक कैथेल चत्कानी– "वह बाजार जाएगा।"

हिंदी में अपूर्ण पक्ष भविष्य काल की क्रिया, अथवा जाएगा/करेंगे/करने वाले हैं इत्यादि संरचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। मणिपुरी में मात्र प्रत्यय–परिवर्तन से ही भविष्याभिमुख अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

निष्कर्षतः स्पष्ट है कि हिंदी और मणिपुरी भाषाएँ भिन्न भाषा–परिवारों से संबंधित होने के कारण ध्वनि, शब्द–रचना, वाक्य–रचना, काल.व्यवस्था तथा व्याकरणिक प्रकृति में उल्लेखनीय अंतर रखती हैं। हिंदी रूप–परिवर्तनीय भाषा है, जिसमें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया व्याकरणिक परिवर्तनों के अनुरूप अपना रूप बदलते हैं; इसके विपरीत मणिपुरी योगात्मक एवं प्रत्यय–आधारित संरचना वाली भाषा है। इन्हीं संरचनात्मक भिन्नताओं के कारण मणिपुरी भाषी विद्यार्थियों को हिंदी सीखते समय अनेक व्याकरणिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ है कि मातृभाषा के अंतरण (language transfer) के प्रभाव से मणिपुरी भाषी विद्यार्थी हिंदी में क्रिया, विशेषण और कारक–रूपों में अपेक्षित अन्विति स्थापित नहीं कर पाते, जिससे उनकी भाषिक अभिव्यक्ति में त्रुटियाँ उत्पन्न होती हैं। अतः हिंदी शिक्षण में केवल नियम–आधारित पद्धति के स्थान पर व्यतिरेकी भाषाविज्ञान (contrastive linguistics) पर आधारित शिक्षण दृष्टिकोण अपनाया जाना आवश्यक है।

मणिपुरी भाषी शिक्षार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण में लिंग, वचन, पुरुष, काल तथा कारक–प्रणाली को उनकी मातृभाषा की संरचना से तुलना करते हुए स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जाए तो अधिगम अधिक सुगम और प्रभावी बन सकता है। इसके लिए द्विभाषिक उदाहरण, संरचनात्मक तुलना, तथा अभ्यास–आधारित शिक्षण रणनीतियों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना उपयोगी सिद्ध होगा। इस प्रकार, भाषिक भिन्नताओं की वैज्ञानिक समझ पर आधारित शिक्षण ही मणिपुरी भाषी विद्यार्थियों में हिंदी–प्रवीणता के विकास का सशक्त आधार बन सकती है।

अतः दोनों भाषाओं की संरचनात्मक भिन्नताओं को समझते हुए, शिक्षण–प्रक्रिया में भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक हो जाता है, जिससे विद्यार्थियों में हिंदी भाषा–अर्जन की दक्षता सुगम एवं प्रभावी रूप से विकसित हो सके।

सहायक–ग्रंथ सूची

1. ओम प्रकाश शर्मा (1997), हिंदी व्याकरण नव–मूल्यांकन, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली

2. कामता प्रसाद गुरु (2008), हिंदी व्याकरण, लोकभारती पुस्तक विक्रेता तथा वितरक, इलाहाबाद–211001

3. चतुर्भुज सहाय (2007), हिंदी पद विज्ञान, कुमार प्रकाशन, 8/153, जे/2 न्यू लोयर्स कोलोनी, आगरा–282005

4. डॉ. भोलानाथ तिवारी (1999), हिंदी भाषा की शब्द–संरचना, साहित्य सहकार, 29/62–बी, गली नं. 11, विश्वास नगर, दिल्ली–110032

5. लक्ष्मी शर्मा (1979), हिंदी संरचना का अध्ययन–अध्ययापन, केंद्रीय हिंदी संसथान, आगरा

6. सूरजभान सिंह (1992), हिंदी का वाक्यात्मक व्याकरण, साहित्य सहकार, ई–10/4, कृष्णनगर, दिल्ली–11051

7. एन. सरत्चंद्र सिंह (2003), मातंगी लोनमित्लोन, अहान्बा(A first course in modern Linguistics), sabatani publication, Imphal-195003

8. पि.सी. थौदम(1997), रिमेदिअल मणिपुरी, एस.आई. एंड को. पाओना बाजार, इम्फाल

9. Ch. Yaswanta Singh (2000), Manipuri Grammar, M.L. Gupta, Rajesh publication, Ansari Road, Dariyaganj, Delhi-110002

10. D.N.S. Bhat & M.S. Ningomba (1997), Manipuri Grammar, Lincom Europa, Munchen, Newcastle.

❑❑❑

संपर्क:

चान्दम इङो सिंह– सहायक आचार्य मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, मणिपुर–795003, ईमेलः cisingh123@gmail.com , मो. 8118926110

जो तुम आ जाते एक बार!
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग;

गाता प्राणों का तार–तार
अनुराग भरा उन्माद रागः
आँसू लेते वे पद पखार!

हँस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता ओठों से विषाद,

छा जाता जीवन में वसंत
लुट जाता चिर संचित विराग
आँखे देती सर्वस्व वार।

– **महादेवी वर्मा**

अभिमन्यु अनत के साहित्य में व्यक्त प्रवासी जीवन की आर्थिक समस्याएँ

दिनेश कुमार गुप्ता*

अनत जी के उपन्यासों में उनकी मौलिक विचारधारा अभिव्यक्त हुई है। उनके अनेक उपन्यासों से मजदूर–मालिक संबंधो को व्यापक धरातल पर चित्रित किया गया है। 'और नदी बहती रही' उपन्यास में मालिकों के अत्याचारी रूप की एक झलक मात्र दी गई है, जबकि 'आंदोलन', 'लाल पसीना', 'जम गया सूरज', 'हड़ताल कल होगी' आदि उपन्यासों में मजदूरों के अधिकार, न्याय, उनकी सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा के लिए अनत जी के उपन्यासों के नायक ही नहीं, अपितु अनेक पात्रों ने भी मालिकों के विरुद्ध आवाज उठाई है, उनकी दृष्टि में तो– 'मजदूरों की ऐसी प्रतिष्ठा होनी चाहिए जो किसी भी प्रतिष्ठा से कम न हो।' युवा आंदोलनकर्ता अपने मजदूर भाईयों के अधिकारों के लिए एकजुट हैं। उनका कथन है– *"हम चाँद–तारे नहीं माँग रहे। वे जिन्हें नसीब हों, उन्हें मुबारक। हम लक्ज़री नहीं माँगते, केवल जीने का अधिकार माँगते हैं।"* इसी तरह का कथन 'हड़ताल कल होगी' का ट्रेड यूनियननिस्ट अमित भी कहता है– *"ये पूँजीपति नहीं चाहते कि मजदूरों में संगठन रहे। ये नहीं चाहते कि हमारे लोग शिक्षित हों, ये यह भी नहीं चाहते, कि मजदूरों के दिन सुधरे। वे जो चाहते हैं, हम वह नहीं चाहते और जो वे नहीं चाहते वही हमें करना है, अपनी प्रतिष्ठा और अपने विचारों के लिए।"* मजदूरों की दुरावस्था एवं निस्सहायता का जो वर्णन प्रत्येक उपन्यास में हुआ है, उससे मजदूरों की वास्तविक शोषित जिंदगी का ज्ञान हो जाता है। जमींदार–मालिक–उद्योगपति मिलकर मजदूरों के हक को हड़प रहे हैं। मजदूर जी नहीं रहे हैं बल्कि उन्हें विवश होकर जीना पड़ रहा है, क्योंकि उन्हें मालिकों की तिजोरी को भरना है। मजदूर हताश–निराश होकर जीवन व्यतीत कर रहा है। प्रायः प्रत्येक उपन्यास में मजदूरों की यथार्थ समस्या को और उनके दिन–प्रतिदिन के जीवन को यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

* सहायक आचार्य, अग्रवाल महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गंगापुर सिटी, जिला–सवाई माधोपुर, राजस्थान

भारत से ले जाते समय प्रवासी भारतीयों को जो सब्ज़बाग दिखाये गए थे, वे सब उनके घोर प्रतिकूल सिद्ध होते हैं और यही प्रतिकूल स्थिति कालांतर में उनके दर्द की महागाथा बनकर रह गई है। वह गाथा उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है– *"बड़ी उम्मीदवा के संग हम सब हियाँ पहुंचली पर उम्मीदवा पर पानी फिर गइल, जब सबन को मालूम भइल कि पत्थर के नीचे सोना नहीं बिच्छू ही बिच्छू होंवें। ... कुत्ता से भी गईल गुजरल जीवन बिताबें परल। एक दाना चावल के खातिर सो बूंद पसीना और दस बूंद खून।"*[1] समाज में कुली मजदूर पीढ़ी–दर–पीढ़ी इस परिस्थिति से त्रस्त थे, लेकिन धीरे–धीरे वे इस स्थिति से बगावत भी करते हैं। कभी संतु ने बगावत की तो कभी किसन, कुंदन और मदन ने। कुछ लोग समझौतावादी होकर जैसे–तैसे जीवन निर्वाह करने में विश्वास करने लगे थे। वे यह कभी नहीं चाहते थे कि पानी में रहकर मगर से बैर करना चाहिए, परंतु कुछ लोग ऐसे भी थे जो संघर्ष द्वारा भावी पीढ़ी को इस नारकीय जीवन से छुटकारा दिलाना चाहते थे। प्रवासी जीवन कई समस्याओं से घिरा होता है। मनोवैज्ञानिक रूप से देखने पर मनुष्य की चिंतनधारा तीव्र हो जाती है, तब वे चिंताएँ मूर्तिमान हो जाती हैं जिसके विषय में मनुष्य सोचता है। कभी–कभी मनुष्य की चिंता के साथ प्रकृति भी स्वयं को अभिव्यक्त करती–सी प्रतीत होती है। **'जम गया सूरज'** उपन्यास का सांध्यकालीन प्राकृतिक वातावरण का एक दृष्टव्य है– *"क्षितिज पर शाम की लाली जमी–सी–लग रही थी। समुद्र का गर्जन क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था। पक्षी उड़े जा रहे थे। ....कुछ ही दूर के किसी खेत में ईख की पुरानी जड़ों को हटाने के लिए आग लगायी गई थी। धधकती लपटों के साथ काला धुँआ आकाश में उठता चला जा रहा था। आग को अन्य खेतों में प्रवेश पाने से रोकने के लिए बहुत से लोगों का इधर–से–उधर दौड़ने का दृश्य भी उस धुँआधार वातावरण में स्पष्ट था।"*[2] इसी तरह **'कुँहासे का दायरा'** उपन्यास में परिस्थितियों से प्रताड़ित होकर नायक धनेश मृत्यु को वरण करने के लिए समुद्र के किनारे पहुँचा था। उस समय का दृश्य मानव–मन को स्पर्श करने वाला है– *"धनेश ने संकल्प का पहला कदम उठाया, फिर दूसरा, फिर तीसरा। सागर जोर से दहाड़ उठा– खुश–हो–होकर। ज्वार–भाटे भी उद्वेलित होकर विद्रोह–सा कर उठे। फेनिल लहरें कठोर चट्टान पर जोर–जोर से माथे पटकने लगीं। धनेश सभी कुछ पीछे छोड़ आया था। इस समय उसके आगे केवल हिंद–महासागर की महापुकार थी। बालू ने उसके कदमों को रोकना चाहा उससे अपने पैरों को छुड़ाते हुए धनेश आगे बढ़ा। समुद्र की पहली फेनिल लहर ने उसके पाँव को पखारा। उस शीतलता ने उसकी चेतना को वापस कर दिया। वह ठिठक गया। ठिठका रहा।... फिर क्षितिज के डूबते सूरज की लालिमा को*

1. अनत, अभिमन्यु (2002) 'जम गया सूरज', डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली, पृ. 26
2. अनत, अभिमन्यु (2002) 'जम गया सूरज', डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली, पृ. 33

रूकने को कहकर उसने भारी कदम को सभी ताकत और निर्णय के साथ उठाया। दलदल बालू ने उसके पैरों को एक बार फिर पकड़ लिया।"[3]

अनत जी जन–जीवन के चितेरे हैं। सामाजिक जन–जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का यथार्थ चित्रण करना ही उनका लक्ष्य है। उन्होंने समाज में जो कुछ देखा एवं अनुभव किया, उसी का मर्मस्पर्शी चित्रण भी किया। उनकी प्रत्येक कहानी मॉरिशस–समाज की भावनाओं, परिस्थितियों एवं मनःस्थितियों को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त करने में सक्षम हुई है। उनकी **'माथे का टीका'** कहानी यथार्थ की अनुभूति को ईमानदारी के साथ व्यक्त करती है। सुदान, मनहर एवं मनीन टमाटर की चोरी करने गए हैं। उनकी अपनी आर्थिक बेबसी एवं बेरोजगारी की स्थिति ही ऐसा करने के लिए बाध्य करती है। उनके वार्तालाप से यथार्थ स्थिति को अनुभव किया जा सकता है– *"कम–से–कम कुछ दिनों के लिए यह तो भूल जाएँगे कि इस स्वतंत्र एवं धनधान्य देश में हम बेकार हैं।" 'कहीं पकड़े गए तो'? यह काँपता हुआ स्वर सुदान का था। 'सुनने में आया है, कैद की रोटियाँ आजकल बाहर की रोटियों से कहीं अच्छी होती हैं।"*[4] **'इतिहास–चक्र'** कहानी के माध्यम से लेखक ने उन लोगों पर व्यंग्य किया है जो बदलते रूप के ऊपरी आवरण को ही वास्तविक मान बैठते हैं जबकि आवरण के पीछे की स्थिति जस की तस ही होती है। लोग अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं इतिहास के बदले रूप को देखने के लिए लालायित रहते हैं लेकिन जो छूट गया है और जिसका विकास अभी बाकी है, उसे देखते हुए भी अनदेखा करते जाते हैं। कहानी का नायक अपने साथी आंद्रे मारियों से मॉरिशस के पचास वर्ष के इतिहास पर चर्चा कर रहा है। आंद्रे मारियों का कहना है इन सालों में देश ने कई करवटें ली हैं और परिस्थितियों से जूझकर अपना स्थान बनाया है वह लेखक की बात को मानने के लिए तैयार नहीं था कि "एक सौ पचास साल से जो जाति ईख के खेतों की खाक छानती आ रही थी, वह आज मजदूरी के बाद दो जून रोटी की मुहताज थी। हमारा इतिहास एक रूका हुआ इतिहास था इस सच्चाई को इतनी जल्दी मानने के लिए मेरा साथी तैयार नहीं था। इतिहास का वही मालिक, वही मजदूर, वही गोरी हस्ती, वही काली विवशता। वही वि–संस्कृतिकरण, वही भाषा का साम्राज्य, राजनीति की खोखली ताकत और ...।" **'नो वेकेंसी'** कहानी ऐसे युवा की है जो योग्यताधारी होने के बावजूद नौकरी नहीं मिलने पर वह खुद को एक जिंदा लाश समझने लगा था। नौकरी पाने या आर्थिक परेशानियों से छुटकारा पाने के लिए कई वर्षों पूर्व उसके दादा ने भी इसी उद्देश्य से कई वर्षों तक चंद गोरे लखपतियों की चापलूसी की थी जिससे

3. अनत, अभिमन्यु (1978) 'कुँहासे का दायरा', प्रथम संस्करण, राजपाल एंड संस प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ. 176
4. अनत, अभिमन्यु (1976) 'खामोशी के चीत्कार" प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 12

उनके बेटे को देश में कोई नौकरी मिल जाए उसके बाद भी उन्हें निराशा हाथ लगी। इसी क्रम में नायक के पिता ने चंद राजनीतिक नेताओं की फरमॉबरदारी की लेकिन उससे भी कोई नतीजा नहीं निकला इस क्रम में न दादा, पिता और न ही वर्तमान में कहानी के नायक को सफलता मिली। पर्याप्त आवश्यक प्रमाण–पत्र होने के बावजूद नौकरी का न मिलना उस देश की खोखली अर्थव्यवस्था की ओर इशारा करता है, जिसमें काबिलियत को कोई पूछने वाला नहीं होता। नौकरी पाने वाले युवा–वर्ग को बड़ी जिल्लत का सामना करना पड़ता हैं इस कहानी के आधार पर लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है– "कल यहीं से निकलकर लेयर–एक्सचेंज के उस दफ्तर के सामने पहुँचा था। जहाँ भीड़ के कारण भीतर प्रवेश पाना दुश्वार था। वहाँ के बाद शायद औद्योगिक केंद्रों के चक्कर भी काटे होंगे। केवल उस स्थान पर पहुँच पाया होगा जहाँ पुलिस के सिपाही चहलकदमी करते हुए मंत्रियों के दफ्तरों की रखवाली करते दिखाई पड़ते हैं, ये अगले चंद वाक्य मेरे नहीं अनवर के हैं जो इन खाकी वर्दी वालों को देखते ही कह उठता है, अपनी टोपी और कपड़ों के बोझ से दबे बेचारों को साँस लेना भी कठिन प्रतीत होता है। वफादारी इसको कहते हैं, कड़कती धूप से अपनी रक्षा न कर पाकर भी वे मंत्रियों के दफ्तरों की रक्षा करते रह जाते हैं और जिस तरह मेरी बूढ़ी दादी कभी चावल फटकती हुई मुर्गियों को खदेड़ा करती थीं, ठीक उसी तरह वे भी भीड़ को हटाते रहते हैं।" इनकी कविताओं में भी प्रवासी जीवन में आने वाली आर्थिक समस्याओं पर अधिक स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है। आर्थिक–वैषम्य के कारण मजदूरों की खुशी मालिकों के यहाँ गिरवी पड़ी रहती है। कवि तथाकथित पूँजीपतियों, व्यवस्थापकों एवं सत्ताधारियों से मजदूरों की ओर से वकालत करते हुए पूछता है।

"मेरी कोठी का उजाला। तुम्हारी मुट्ठी में क्यों बंद है ?
मेरी मुट्ठी के कैक्ट्स में/फूल क्यों नहीं आया?"[5]

इस स्थिति में कवि आम आदमी के अस्तित्व व अस्मिता को 'हर दूसरे क्षण' बिन–चित्ता के दाह होते देख पीड़ित होता है– *"हर दूसरे क्षण/अस्तित्व की हत्या होती है अस्मिता चित्ता चढ़ती है।"*[6]

बेकार एवं नौकरी की तलाश में निकले हुए लोगों की ओर से कवि व्यवस्थापकों एवं सत्ताधारियों को खुली चुनौती देता है –

"तुम्हारा यह दावा कि /तुम देश की उन्नति के लिए
सबसे कठिन कार्य कर रहे हो
मेरी नज़रों में कोई अर्थ नहीं रखता/ उन्नति–अवनत्ति को छोड़ो

5. अनत, अभिमन्यु (1977) 'नागफनी में उलझी साँसें', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 24
6. अनत, अभिमन्यु (1977) 'नागफनी में उलझी साँसें', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 24

मेरी तरह नौकरी की तलाश में लगकर
फिर बताओ, कौन काम कितना कठिन है।"[7]

अनत मॉरिशस की आर्थिक व्यथा को अपनी वाणी देते हैं। सामाजिक अंतर्विरोधों की पड़ताल कर अपने साहित्य के माध्यम से चुनौती देते हैं। समाज के भ्रष्ट लोगों के प्रति उसमें रोष व्याप्त है जिसके कारण उनकी अनुभूति अपने सशक्त भावों में अभिव्यक्त हो पाती है। मजदूर और मालिकों के बीच की खाई को भरने के लिए वे प्रयासरत हैं।

बंधुआ मजदूरी एवं बेगारी– बंधुआ मजदूरी की कुप्रथा आज भी देश के हर कोने में कमोबेश पाई जाती है। मॉरिशस सरकार के तमाम प्रयासों के बाद भी अभी तक इस प्रथा को समाप्त नहीं किया जा सका है। यह एक तथ्य है कि भारत से गए दलित जन की स्थिति आज भी वहाँ अन्य जातियों की तुलना में गंभीर बनी हुई है। बंधुआ मजदूरों का अधिकांश हिस्सा असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत है। इसलिए स्थिति की गंभीरता का आंकलन आसान नहीं होता है। कृषि क्षेत्र में कार्यरत बंधुआ मजदूरों की हालत दयनीय है स्थिति तब और भयावह हो जाती है जब यह समस्या पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती रहती है। बंधुआ मजदूर किस तरह सुबह से शाम तक मालिक के काम में खटता रहता है, इसे **'लाल पसीना''** उपन्यास के एक उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है। भूमिका में मॉरिशस के बंधुआ मजदूरों पर होने वाले शोषण पर नोबल पुरस्कार विजेता झे. एम. झी. लेक्लेज्यो (फ्रेंच लेखक) लिखते हैं– *"इन तमाम दंडों, बलात्कारों और हत्याओं के अलावा इनके दयनीय हालत के साथ एक और जुल्म यह जुड़ गया कि अगर मजदूर एक दिन काम पर नहीं पहुँचा तो उसके दो दिन की तनख्वाह जब्त कर ली जाती थी। यह डबल कट कानूनी तरीके से 1839 और 1909 तक चलता रहा – चाहे मजदूर बीमार या काम पर घायल होने की वजह से अनुपस्थित हो। इस भयानक बेइंसाफी के साथ यह परिपाटी भी बनी रही कि एक भारतीय मजदूर, जिसे रोजाना दस घंटे काम करना पड़ता था, उसे 26 दिन की कमाई के लिए सिर्फ दस शीलिंग मिलते थे। अगर किसी बीमारी के कारण वह मात्र दस दिन ही काम कर पाया तो उसे बारह शीलिंग का जुर्माना भुगतना पड़ता था जिससे यह विवशता आ जाती थी कि उस मजदूर को हर हालत में 22 दिन ज्यादा काम करना पड़ता अन्यथा कैद की सजा। 1869 में 3824 भारतीय मजदूरों को कैद की सजा हुई यानी कि भारतीय मजदूरों के 20 प्रतिशत। 1870 में 20,000 से अधिक मजदूर अपने को इस नर्क से मुक्त कर पाए। 1907 में महात्मा गांधी जी के मॉरिशस आगमन के 6 साल बाद 1462 कैदी ही काल कोठरी में रहे।"*[8] बंधुआ मजदूरों को संगठित नहीं होने दिया जाता था। अगर कोई समूह बनाकर बतियाता भी था तो

7. अनत, अभिमन्यु (1977) 'नागफनी में उलझी साँसे', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 10
8. अनत, अभिमन्यु (1977) 'लाल पसीना', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 07

उसकी नौकरी पर बन आती। 'लाल पसीना' में कुंदन अपने घर हिंदी की पढ़ाई के माध्यम से एवं रामायण एवं आल्हा के जरिए मजदूरों की बेगारी की समस्या पर संगठित होकर बातचीत करने लगे थे। इस पर कुंदन को चेतावनी दी गई और उस पर कड़ा पहरा रखा जाने लगा। सभी लोग बरसते पानी के बीच इकट्ठे हो किसन की बात को गंभीरता के साथ सुनने लगे। उनके भीतर के डर की जगह आत्मविश्वास ने ले ली थी। उनका मानना था इन सभी अनर्थों के विरुद्ध अपनी छाती को एक–न–एक दिन सामने करना ही है। बंधुआ मजदूरों की समस्याओं पर विचार करते हुए रघुसिंह, किसन पर बरसते हुए पहले की नाजुक परिस्थिति के विषय में कहता है– *''एक ही देगची में चावल पकता था और हर मजदूर के सामने कलछी–भर फेंक दिया जाता था। कपड़े की जगह कई वर्ष बोरे पर दिन गुजारे गए थे। आँखों के सामने घर की औरतों की इज्ज़त लूट ली जाती थी।''*[9]

मॉरिशस गए प्रवासी लोगों पर बंधुआ मजदूरी के नाम पर कई असहनीय अत्याचार किए जाते थे। उन्हें कई तरह की मार मारा जाता था। पहले के घाव नहीं भरते उससे पहले ही दूसरे घाव दे दिए जाते थे। अगर किसी मजदूर के हाथ पत्थर हटाते–हटाते उनके नीचे आ जाते हैं तो वे धीरे–धीरे उन्हें पत्थरों के नीचे से निकालने की बात नहीं सोचते बल्कि बिना हिले–डुले अपने हाथों को पत्थरों के नीचे ही पड़े रहने के लिए छोड़ दिया जाता है। उनकी प्रताड़ना का कारण उनकी चुप्पी भी थी। जो शुरूआती लोग थे उन्होंने प्रताड़ना झेली और चुप रहे यही क्रम आगे तक चलता रहा। अपनी बदतर जिंदगी को सँवारने की बात वे कभी नहीं सोच सके। कुंदन इन सबके बारे में सोच चिंतित हो जाता उसे लगता कि इन चारदीवारी के भीतर घुटन भरी जिंदगी को आखिर कब स्वच्छ स्वतंत्र, पुरवाई के दर्शन होंगे। बंधुआ मजदूरों की बस्ती के बारे में वह सोचता है कि *"बिना दीवारों की इस चारदीवारी में सभी मजदूर कैदी थे। सभी के हाथ–पाँव बंधे थे। सभी के होंठ सिले हुए थे। जीभ जकड़ी हुई थी। दीवारें दिखने पर उन्हें फाँदा जा सकता हैं बेड़ियाँ होने पर उन्हें तोड़ा जा सकता है, पर जहाँ ये चीजें बाहर न होकर आदमी के भीतर हो वहाँ उन्हें कैसे फाँदा और तोड़ा जा सकता है।?"*[10] कुंदन को मजदूरों पर होने वाले अत्याचार एक–दूसरे से गुँथे हुए प्रतीत होते हैं– *"कल का दिन भी उसी चारदीवारी के दिनों की लंबाई लिए हुए था। उस तरह की उमस और ऊब पैदा कर देने वाली लंबाई उसे नहीं चाहिए थी। चारदीवारी के लंबे दिनों में सबसे लंबा दिन उसके लिए वह दिन था जब रूपलाल के नंगे शरीर पर कोड़े बरसाने के बाद उस पर मिर्च रगड़ दी गई थी। कल का दिन उस दिन की याद को एकदम ताजा कर गया था। कल साहब के जूतों की मार से जतन*

9. अनत, अभिमन्यु (1977) 'लाल पसीना', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 97
10. अनत, अभिमन्यु (1977) 'लाल पसीना', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 44

की वे चीत्कार मानो रूपलाल के चीत्कार थे। रूपलाल के चीत्कार के समय वह सलाखों के कारण आगे बढ़ने से बेबस था। जबकि कल जतन के चीत्कार के वक्त वह उसके एकदम पास होकर भी उस तक नहीं पहुँच सका था। फासले की इस लंबाई से कुंदन को नफरत थी। बहुत लंबे समय तक उस फासले की लंबाई को मिटाने का उपाय ढूँढ़ते–ढूँढ़ते वह हार गया था।"[11] 'लाल पसीना' में दिखाया गया है कि, अगर लोग संगठित होना चाहे तो उन्हें पीट–पीटकर मार दिया जाता है। सोनालाल मजदूरों को सजग और संगठित करने का काम सरकार से चोरी–छुपे करता था। परंतु मजदूरों को सचेत करते हुए दूसरी कोठी में जब सोनालाल पकड़ा गया तब उसके हाथ–पाँव बाँधकर दूसरे लंगड़वा साहब के यहाँ भिजवा दिया गया। *"लंगड़वा साहब ने उसके शरीर के कपड़े उतरवाकर उसकी देह को ईख के रस से चप–चप करवाकर कड़कती धूप में पेड़ से बँधवा दिया था। जिस समय मजदूरों की नजर उस पर पड़ी थी, उसका शरीर लाल चींटियों से खदखद भरा हुआ था। पीड़ा से चिल्लाते–चिल्लाते बेसुध हो गया था। उसके पास फटकने की इजाजत किसी को नहीं थी। लँगड़वा साहब के दोनों कुत्ते उसके इर्द–गिर्द घूमने को छोड़ दिए गए थे। बस्ती का शायद ही कोई ऐसा मजदूर था, जिसका इन कुत्तों से पाला न पड़ा हो। कइयों की बोटी–बोटी नुच जाने से बची थी। दिल दहला देने वाली वह कड़ी यादगार आज भी कई लोगों के भीतर ताजा थी।"*[12] भारत से मॉरिशस गए बंधुआ मजदूरों के साथ अन्य मजदूरों की तरह व्यवहार नहीं किया जाता था। उनके साथ भेदभाव की नीति अपनायी जाती थी। ईख के कारखानों में काम करने वाला भारतीय बंधुआ मजदूर कई संकटकालीन परिस्थितियों में काम करता था। वहाँ अच्छे काम मालगासी किया करते थे। परंतु कठिन और अधिक मेहनत वाले काम भारतीयों के हिस्से में आए थे। वह वहाँ हाड़–माँस के कोल्हू के बैल की तरह लगाए गए थे, और उनमें कोई अंतर नहीं था। वहाँ के मजदूरों ने कई बार किसन से इस विषय में प्रश्न किए कि कम मेहनत के सभी अच्छे काम केवल क्रिओल लोगों के हिस्से में क्यों आते हैं। इस प्रश्न का हमेशा एक ही उत्तर किसन का होता था। वह कहता था– 'क्योंकि वे लोग भारतीय नहीं है। यह उत्तर जितना सीधा मालूम होता था उतना ही जटिल। आखिर क्यों प्रवासी भारतीय बंधुआ मजदूरों के साथ बेगारी ली जाती थी। उनके भारतीय होने के कारण तो यह सब नहीं होता था। मॉरिशस में बंधुआ मजदूरी के साथ बेगार लेने की प्रथा भी है। मॉरिशस के शहरी क्षेत्रों से दूर क्षेत्रों में बेगारी की प्रथा अत्यंत गंभीर है। अक्सर मजदूरों को उनके श्रम का कम मूल्य दिया जाता है। कई बार तो नकद मूल्य के बदले अनाज इत्यादि दे दिया जाता है, जिसका बाजार मूल्य अत्यंत कम

11. अनत, अभिमन्यु (1977) 'लाल पसीना', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 45
12. अनत, अभिमन्यु (1977) 'लाल पसीना', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 100

होता है। बेगारी के कारण प्रायः मजदूर कुपोषण और भूखमरी के शिकार हो जाते हैं। बेगारी की मार सर्वाधिक महिला मजदूर झेलती है। 'मार्क ट्वेन का स्वर्ग' उपन्यास में प्रेम कनेडियन शैलानी सिल्वी को मर्द एवं स्त्री के मेहनताने में किए जाने वाले फर्क के विषय में बताता है। औरतें सुबह चार बजे उठकर घर का काम निपटाकर खेतों में काम करती है। खेतों में पुरुष के बराबर ही काम करके वह अपने घर के कामों में लग जाती है। सारा काम करने के पश्चात् उनके हिस्से में कुछ घंटे आते हैं जिनमें वो आराम करती है। हमारे समाज में अक्सर स्त्री के काम को नकार पुरुष के काम को अधिक तवज्जो दी जाती हैं पुरुष के खेतों से घर लौटने पर उन्हें थका–मांदा समझा जाता है, इसलिए वे आराम के हकदार माने जाते हैं जबकि स्त्री को नहीं। स्त्री जब घर के काम निपटा रही होती है तब उस समय पुरुष दो–तीन घंटे बस्ती के शराबखाने में बिताता है। घर के काम निपटा के खेतों का काम, खेतों का काम खत्म कर घर का काम स्त्रियों की बाट जोहता रहता है। औरत का मशीनी रूप यहीं आकर दिखाई देता है। प्रेम के गाँव के पड़ोस में शक्कर उद्योग की कोठी पर काम करने वाली औरतों के विषय में एवं वहाँ की स्थिति के बारे में सिल्वी अपने पिता को पत्र द्वारा यह बताती है, कि *"आज भी मजदूर, उद्योगपति के अधीन छोटे–छोटे घरों में रहते हैं। मैंने उस कोठी की औरतों को साड़ियों और लहंगों में लिपटी कमर में घुटनों तक बोरे बांधे चमचमाती धूप में गन्ने के खेतों में काम करते देखा। उन औरतों को सिर पर खाद के बोरे लिए पत्थरों की मुँडेरों के बीच से आते–जाते देखकर ऐसा लगा कि स्वर्ग में भी नरक होता है। यह जानकर तुम्हें और भी आश्चर्य होगा कि मर्दों के बराबर काम करके मर्दों की तुलना में उन्हें लगभग मर्दों की आधी तनख्वाह मिलती है।"*[13] स्वतंत्र

मॉरिशस देश में भी बेगारी की समस्या बढ़ती जा रही है। मालिक मजदूर समस्या में यह स्पष्ट किया गया है, कि मजदूर के जी–तोड़ मेहनत करने पर भी मालिकों से न्याय नहीं पाते हैं। उनके साथ मालिक नृशंसतापूर्ण जघन्य अत्याचार करते हैं। मॉरिशस द्वीप में गन्ने की खेती प्रमुख रूप से होती हैं मजदूरों के ही बल पर इसकी बुआई, कटाई एवं पिराई होती है, किंतु उनके हक में क्या मिलता है ? मात्र ईख का मीठा या ईख के काटते व पेरते समय उनके चेहरे पर झलकने वाली पसीने की बूँदों का खारापन। यही कारण है कि मजदूरों के मन में बार–बार यह बात ध्वनित होती है– *"जिस मॉरिशस को लोग ईख की धरती कहते हैं, जिस ईख को मॉरिशस का ऐश्वर्य कहा जाता है, उसी को उगाने वाले को गरीब मजदूर कहा जाए।"*[14] इससे बढ़कर और विडंबना क्या हो सकती है। ईख, मॉरिशस की आत्मा कही जाती है और इसी कारण इसे शक्कर द्वीप भी कहा जाता है। किंतु उत्पादन में सहयोग करने वाले

13. अनत, अभिमन्यु (1985) 'मार्क ट्वेन का स्वर्ग, प्रथम संस्करण, प्रभात प्रकाशन,नई दिल्ली, पृ. 209
14. अनत, अभिमन्यु (1977) 'नागफनी में उलझी साँसें', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 45

अर्थात् सफेद सोना उगलने वाले मजदूरों के प्रति ही दोहरी नीति अपनाई जाती है। मजदूरों को प्रताड़ना, लाँछना एवं अपमान के घूँट पीकर रहना पड़ता है। उन्हें दो जून की रोटी भी नसीब नहीं होती है। इन निरीह मजदूरों को मालिकों की कृपा पर जीवन यापन करना पड़ता है। मालिकों द्वारा मजदूरों को पीटा जाना तथा उनके ऊपर बाँसों एवं कोड़ों की बौछार करना सामान्य सी बात है। बड़ा ही नारकीय एवं गर्हित जीवन प्रारंभ से ही मजदूरों को बिताना पड़ा। मजदूरों को अपनी बहू बेटियों तक को मालिकों के यहाँ शव्याशयी करना पड़ा। अगर कोई विरोध भी करता तो उसे कैद में डाल दिया जाता था। प्रायः सभी मजदूर कैदियों की कहानी एक–सी होती थी।

"कोई बैल जैसा काम करने से इंकारी के कारण इधर आ गया था। कोई भारत लौटने की मांग करके। कोई न्याय की दुहाई करता हुआ तो कोई बीमारी की वजह से तीन दिन नौकरी पर न पहुँच सकने के कारण। किसी की गिरफ्तारी केवल इसलिए हो गई थी कि उसने अपने गले से नंबर लिखे टीन के टुकड़े को निकाल फेंका था। किसी ने सरदार से मुँह लगाने की हिम्मत की थी। जिस व्यक्ति ने पहले दिन भीतर आते ही आत्महत्या कर ली थी, उसकी गिरफ्तारी इसलिए हुई थी कि सरदार की मांग पर उसने अपनी खूबसूरत पत्नी को पहली रात मालिक के घर नहीं पहुँचाया था।"[15] इतिहास के बदल जाने के बाद भी परिस्थितियों के ज्यों के त्यों बने रहने के कारण **'इतिहास–चक्र'** कहानी में नायक कहता है "मेरा इतिहास घटनाओं का इतिहास नहीं मनोवृत्तियों का इतिहास है। वह इतिहास आज ज्यों का त्यों है। सभी प्रगतियों के बावजूद भी वही अराजकता – वही यंत्रणा, वे ही दारूण दंड, वही शोषण, वही रंगभेद आदि। लाघव भावना की जिंदगी को जीती हुई बहुसंख्य अल्पसंख्यकों की मुट्ठी में बेबस तीसरे दरजे का नागरिक है।"

'कोलाहल' एवं 'अस्वीकार' कहानी में तो मॉरिशस समाज की वास्तविकता साकार हो उठी है। कहीं अभाव है, तो कहीं पैसों का अपार भंडार। 'कोलाहल' कहानी में एक यथार्थ दृश्य इस रूप में हैं– *"वैलिंग्टन स्ट्रीट से होते हुए हम उस स्थान पर आ गए, जहाँ दिन में पैसों की गंध और झंकार आती है।"*[16] 'अस्वीकार' कहानी में भी यही स्थिति है– *"इस बार उस गली में पहुँच जाता हूँ, जहाँ कि पैसों की गंध नाक को सर्द देती–सी लगती है।"*[17] समाज में आर्थिक पराभव के लिए भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी कम जिम्मेदार नहीं है। **'अस्वीकार'** कहानी में– *"इलाके का पुलिस इंस्पेक्टर सुबह दुकान खुलते ही दुकान के भीतर पहुँचा और हाथ में वजनदार बंडल*

15. अनत, अभिमन्यु (1977) 'लाल पसीना', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 26
16. अनत, अभिमन्यु (1976) 'खामोशी के चीत्कार" प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 52
17. अनत, अभिमन्यु (1976) 'खामोशी के चीत्कार" प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 105

के साथ मुस्कराता हुआ अपनी कार में जा बैठा।"[18] 'नागफनी में उलझी साँसें' कविता संग्रह में 'सूरज की गवाही' कविता के माध्यम से उच्चवर्ग के लोगों द्वारा एवं बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा भी मजदूरों के पक्ष में नहीं बोलने पर कवि व्यंग्य करता है। निरीह मजदूरों के सूरज की दैन्यानुभूति उस समय पीड़ा एवं कुंठा की अभिव्यक्ति करती है, जिस समय उसके न्याय का गला घोंटा जाता है और वह मन–मसोस कर रह जाता है। क्योंकि –

"जिस दिन सूरज को
मजदूरों की ओर से गवाही देनी थी
उस दिन सुबह नहीं हुई। सुना गया कि
मालिक के यहाँ की पार्टी में
सूरज ने ज्यादा पी ली थी।"[19]

मजदूरों को उनका पूरा पैसा नहीं मिलता है और ऊपर से बेगारी भी करवायी जाती है। 'कैक्ट्स के दाँत' कविता संग्रह की 'काँच का टुकड़ा' कविता में कवि कहता है–

"खेतों में काम करते वक्त
काँच का जो टुकड़ा
मेरे तलवे को लहूलुहान कर गया था
वह आज तुम्हारे अजायबघर में
नगीने के रूप में सुरक्षित है।"[20]

आर्थिक–वैषम्य के कारण मजदूरों की खुशी मालिकों के यहाँ गिरवी पड़ी है। कवि तथा–कथित पूँजीपतियों, व्यवस्थापकों एवं सत्ताधारियों से मजदूरों की ओर से वकालत करते हुए पूछता है –

"मेरी कोठी का उजाला
तुम्हारी मुट्ठी में क्यों बंद है?
मेरी मुट्ठी के कैक्ट्स में
फूल क्यों नहीं आया ?"[21]

इस प्रकार अगर देखा जाए तो 'बोझ', 'एक अवसर और', 'मेरा वह दिन', 'कुछ और जला दो', 'सूरज का दर्द', 'उल्लासित हाथ से', 'नींद की गोली', 'तुम्हारी तीन

18. अनत, अभिमन्यु (1976) 'खामोशी के चीत्कार' प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 104
19. गोयनका, डॉ. कमल किशोर, (1998) 'अभिमन्यु अनत : समग्र कविताएँ', प्रथम संस्करण, इरावदी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 72
20. गोयनका, डॉ. कमल किशोर, (1998) 'अभिमन्यु अनत : समग्र कविताएँ', प्रथम संस्करण, इरावदी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 100
21. अनत, अभिमन्यु (1977) 'नागफनी में उलझी साँसें', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 24

विशेषताएँ', आदि कविताओं में प्रवासी बंधुआ मजदूर की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

भू–समस्या– भूमि हस्तांतरण एवं भूमिहीनता की समस्याएँ परस्पर अंतर्संबंधित हैं। प्रायः देखा जाता है कि प्रवासी भारतीय लोग ऋणों की प्राप्ति अथवा अपने उपभोग से संबंधित अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपनी भूमि को साहूकार अथवा जमींदार के पास गिरवी रख देते हैं और फिर खुद खेतिहर मजदूर बनकर जीवन जीने को विवश हो जाते हैं। यहाँ एक बात स्पष्ट है कि जहाँ ऋणग्रस्तता की समस्या ने भूमि हस्तांतरण की प्रक्रिया को तीव्र किया है वहीं दूसरी ओर सीमित भूमि संसाधन, भूमि पर जनसंख्या के अधिक दबाव और गरीबी ने भूमिहीनता को बढ़ावा दिया है। एक ओर गरीबी के चलते भारतीय प्रवासी नई जमीन खरीद नहीं पाते वहीं दूसरी ओर इसी कारण पहले से थोड़ी–बहुत उपलब्ध जमीन ऋण आदि के बहाने गैर प्रवासियों के पास स्थानांतरित हो जाती हैं वह उस जगह पर अपनी इमारतों को खड़ा करते हैं और वहीं पर जमीन का पूर्व मालिक मजदूरी करने लगता है। 'मार्क ट्वेन का स्वर्ग' उपन्यास में जमीन पर बने घरों की विविधता अमीर और गरीब के फासले को बता देती है। मार्क ट्वेन का स्वर्ग सिल्वी को इतनी असमानता के कारण नरक लगने लगता है। सिल्वी सोचती है– *"इतनी विविधता के बावजूद एक बात उससे भी विचित्र थी। हर समुद्र किनारे बंगले केवल आकांक्षाओं के ही थे। देश के सबसे सुंदर स्थल के वे एकमात्र मालिक थे। बंगलों के रखवाले काले–साँवले लोग जरूर थे, लेकिन उसके हकदार गोरे चमड़े वाले ही ज्यादा थे। शायद इतिहास का एक पुराना रिवाज इस देश की स्थायी परंपरा बनकर रह गया था।"*[22]

इनके बिल्कुल अलग वहाँ के खेतीहर मजदूरों के घर थे। सिल्वी प्रेम और शकुन के घर जाती है। वहाँ की खस्ता हालत और हालात का वर्णन सिल्वी इस प्रकार करती है– *"जहाँ–तहाँ एक–दो घर सीमेंट के थे; पर बाकी या तो टीन की दीवार और टीन ही की छत के थे या ईख के सूखे पत्तों के छाजन के। प्रेम के घर की दीवारें जिस चीज की थी, उसे उसने पत्थर, गोबर और सफेद माटी का लेप बताया। घर के बीच में जो दीवार थी, वह गोनी की थी, जिस पर अखबार चिपकाये गए थे। छाजन ईख के सूखे पत्तों का था। बाहर की गर्मी का कमरे के भीतर कोई असर था ही नहीं।"*[23] इसी तरह सिल्वी शकुन का घर भी पूंजीपतियों की मार का शिकार था। सिल्वी शकुन के घर का वर्णन इस प्रकार करती है– *"शकुन का घर इलाके का सबसे छोटा, सबसे पुराना और तूफान का मारा सबसे घायल घर था। दायीं ओर की ढह आयी दीवार*

22. अनत, अभिमन्यु (1985) 'मार्क ट्वेन का स्वर्ग, प्रथम संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 207
23. अनत, अभिमन्यु (1985) 'मार्क ट्वेन का स्वर्ग, प्रथम संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 173

को दो लकड़ी के खंभों से बस टिका दिया गया था। आधी छत अब भी उजड़ी हुई थी। शकुन के ऊपर की कॉस्मेटिक गंध से भारी थी घर के भीतर की गुमसाँइंध।"[24] 'एक बीघा प्यार' उपन्यास में सोम अपने खेत पर ही काम करता है। परंतु यह खेत उनकी आजीविका को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं था। फिर भी वह अपने पिता की इस निशानी को छोड़ना नहीं चाहता था। उसके दादा भारत के रहने वाले थे। वह बचपन से अपने पिता से सुनता आ रहा था कि *"कुछ लोगों के बहकावे में पड़कर दादा सीतापुर में अपना सभी कुछ छोड़कर मॉरिशस आ गया था। वहाँ उसकी कोई पचास बीघा जमीन थी। एक बार यहाँ पहुँच जाने पर वहाँ की सभी चीजें वहीं रह गईं और वह यहाँ बैल की तरह जीवन काटता रहा। अभाव, दुःख और दारूण यंत्रणाएँ सहकर यहाँ वह केवल एक बीघा जमीन अपने नाम कर पाया था। हीरा का बाप सभी कुछ सुनाने के बाद यह भी कहता कि प्राण चाहे तो चले जाये पर जमीन का यह टुकड़ा कभी न जाने पाये।"*[25] हीरा ने खून–पसीना और रात–दिन एक करके अपने खेतों को सींचा परंतु जोगिया और उसके भाई द्वारा वह नष्ट कर दिया गया। हीरा को जब यह पता चला तब उसके पैरों तले से जमीन खिसक गई। एक मात्र खेत के जरिए ही उसके पूरे परिवार की जरूरतें पूरी होती थी। भूमि का अन्य कोई साधन नहीं होने पर उसकी दुनिया उससे उजड़ गई थीं हीरा अपना होश–ओ–हवास खो बैठा था। उसके आँसू नहीं थम रहे थे। गाँव के लड़के दुरपद ने ही इस घटना में लिप्त लोगों की जानकारी दी थी। जिस भूमि को अपने खून से हीरा ने सींचा था आज वह नष्ट था, बैंगन के सभी पौधों को उखड़ा देख उनका मन भी उखड़ गया था। अपनी फसल की बिक्री के आधार पर ही हीरा अपनी बहन विमला को सोने के कंगन देने का वचन देता हैं परंतु फसल की बर्बादी ने उसके परिश्रम को हरा, भाग्य को विजयी बना दिया है।

'लाल पसीना' उपन्यास में दिखाया गया है कि, महामारी के समय लोगों की बदतर हालत हो गई थी। जीनत और दाऊद भी इसी महामारी से पीड़ित थे महामारी के कारण दाऊद अपनी पत्नी जीनत को देह के सौदे के लिए भी तैयार कर लेता है दाऊद रोटी के लिए औरत की देह के प्रयोग को बुरा नहीं मानता है। उसका मानना है कि 'औरत की देह रोटी का कोई टुकड़ा नहीं होती जो किसी के मुँह लगने से झूठी हो जाए'। रोज मरते लोगों को देखकर ही दाऊद ने यह फैसला लिया था। दाऊद और जीनत प्रवासी जीवन में आई समस्याओं से निजात पाने के लिए दोनों उस जगह से भाग खड़े होते हैं, परंतु उसी समय उनके सामने किसन आ धमकता है। किसन परिस्थितियों से न लड़कर उनके भाग जाने के कारण उन्हें डाँटता हैं किसन संघर्ष

24. अनत, अभिमन्यु (1985) 'मार्क ट्वेन का स्वर्ग, प्रथम संस्करण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 183
25. अनत, अभिमन्यु (2000) 'एक बीघा प्यार'" प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली–110002, पृ. 78

करने के लिए कहता है। दाऊद का कहना है संघर्ष उसी समय कर देना चाहिए था जब पहली औरत के साथ अमानवीय बर्ताव हुआ था। जीनत का मानना है महामारी वाले स्थान को छोड़ वे लोग दूसरी जगह अपना जीवन जी सकते हैं। इस पर किसन इनकी भूमिहीनता पर कहता है– *"वह दूसरी जगह इस टापू में कहीं नहीं है जीनत! यह कटघरा इतना बड़ा है कि इसमें खुली जगहों का भ्रम हो जाता है, जबकि यहाँ ऐसी कोई भी जगह नहीं तुम्हें इस छोर से उस छोर तक कोई भी जगह नहीं मिलेगी जहाँ गोरे जमींदारों के खूँखार कुत्ते तुम्हारी बोटी को नोचने के लिए दौड़ न आएँ।"*[26] 'लाल पसीना' उपन्यास का मदन बहुत गुस्से वाला व्यक्ति है। मदन सोचता है उसके प्रवासी भारतीय जन जिस जमीन को अपना मानकर काम करते हैं। वह जमीन जिसे खून–पसीने से उपजाऊ बनाया गया। *"जिस मिट्टी को खून से तर लाल पसीने से हमारे लोगों ने खेत का रूप दिया, हरियाली दी। जिस बंजर जमीन में प्राण फूँके। जिसके भीतर से पत्थरों को निकालकर उसे उपजाऊ बनाया। उस खेत को कोई कैसे हथिया सकता है ? हमारे जीवन के त्याग और परिश्रम के फल को कोई कैसे हड़प सकता है?"*[27] मदन अपनी मेहनत की जमीन को उन गोरे लोगों के खूनी पंजों से आजाद करवाना चाहता है। वह अपने बाप की मिट्टी को देखता है जिसमें काम करते–करते उसके पिता की मृत्यु हुई थी। मदन सोचता है *"... गिरमिटिया अब कोई नहीं रहा.. तो फिर क्या वजह है कि हम जीवनभर उसी तरह बंधन में रहें और अगर हम दास नहीं रहें तो क्या कारण है कि हमें मालिक–विशेष की कोठी में काम करने को मजबूर किया जाए? हमारा जन्म इसी मिट्टी पर हुआ है, उसके चप्पे–चप्पे पर हमारा अधिकार होना चाहिए।"*[28]

मदन का मानना है, अगर जमीन सरकार की है तो वे लोग जंगल काटकर खेती कर सकते हैं। गुलामी से बेहतर है कि स्वतंत्र रूप से खेती की जाए। बाद में सरकार इसका कुछ भी करे। इससे कोई मतलब नहीं होना चाहिए। वह जमीन कोठी के मालिक की कही जाती है। वहीं जमीन जिस पर मजदूरों ने दिन–रात मेहनत करके खेत का रूप दिया। जब जंगल था तब वह किसी की जमीन नहीं थी लेकिन जब जमीन बंजरपन को छोड़ उपजाऊ हो गई तो जगह–जगह से उसके मालिक तैयार होने लगे। मजदूरों ने जिस भूमि को अपना मानकर पीठ पर कोड़े खाए हैं वही जमीन हरियाली युक्त होने पर उसके लिए परायी कर दी जाती है। इतने वर्षों तक जिस जमीन को अपना मानकर काम किया वही चंद कागज के टुकड़ों के आधार पर किसी और की नहीं हो सकती थी। सब मजदूरों ने मिलकर जमीन के चारों ओर बिछी लोहे के तारों के जंजाल को तोड़ दिया और अपनी–अपनी जमीन पर अधिकार कर लिया।

26. अनत, अभिमन्यु (1977) 'लाल पसीना', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 175
27. अनत, अभिमन्यु (1977) 'लाल पसीना', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 254
28. अनत, अभिमन्यु (1977) 'लाल पसीना', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 243

सभी लोग वक्त के साथ उन्हीं खेतों में पुरानी लगन के साथ ही काम में जुट गए। खेतों में फल–फूल आने लगे थे। फसल पककर कटने के लिए तैयार थी कि कोठी के मालिकों ने उनका जीवंत सपना तहस–नहस कर दिया। *"उस उठती धूल में पहले तो कुछ भी स्पष्ट नहीं हुआ, पर दूरी कम होते ही लोगों ने देखा–बारह–पंद्रह बंदूकधारी रखवालों के आगे–पीछे सौ से अधिक सुअर बढ़े चले आ रहे थे। उनको घेरे हुए आठ–दस शिकारी कुत्ते थे। लोग कुछ समझ पाते कि इससे पहले रखवार बंदूक ताने खेतों के चारों दिशाओं को पहुँच गए। कुत्तों की अगवानी में सभी सुअर धड़ाधड़ खेतों में प्रवेश कर गए। पौधों को रौंदते हुए सुअरों ने समूचे खेत को कुछ ही घड़ी में तहस–नहस कर दिया। कुत्तों और सुअरों को रोकने के प्रयास में सुगुन कुएँ में गिरते–गिरते बचा। हनीफ के गिर जाने पर कई सुअर उसके ऊपर दौड़ गए। भरतलाल और रामसेवक ने मुँडेर में गिरकर अपने–अपने पाँव तुड़वा लिए। जिन्होंने जानवरों पर पत्थर चलाने की कोशिश की, उनकी गर्दन पर बंदूक की नली टिका दी गई।"*[29] जिन लोगों का जमीन पर मेहनताना मूल हक था उन्हीं लोगों को पुनः भूमिहीन कर दिया गया। जमीन के मूल मालिक पुनः मजदूर बनने की स्थिति में आ गए। जानवरों से नुचवाकर इंसानियत पर प्रश्नचिह्न लगाया गया है। स्वार्थी धन लोलुप कोठी के मालिकों द्वारा जमीन को हथियाने के लिए किया गया यह कार्य बहुत अमानवीय है। मानवता को मार हैवानियत की जमीन तैयार करते हैं वे 'कोठी मालिक'। जिन लोगों ने हाथापाई करके बंदूक छीनने की कोशिश की थी, उनमें सुमंगल और धनपतवा भी थे। कुल पाँच लोगों को पकड़कर रस्सी से बाँधकर घसीटते हुए कारखाने के अंदर ले जाया गया था। सूखे गन्नों को पेरवाने का काम पाँच आदमियों से करवाया गया। कोई कुछ नहीं कर सकता था। सब लाचार थे। गरीबी को हथियार बनाकर भूमि हड़पने के तमाम हथकंडे कोठी मालिकों द्वारा अपनाये जाते थे। आवश्यकता के समय थोड़ा–बहुत अनाज देकर प्रवासी मजदूरों की सहानुभूति अर्जित की जाती थी और फिर धीरे–धीरे उन्हें मानसिक और शारीरिक रूप से गुलाम बना लिया जाता था। इस समस्या को 'लाल पसीना' एवं 'मार्क ट्वेन' का स्वर्ग उपन्यास में बखूबी उठाया गया है। गरीब प्रवासियों के लिए भूमि, जंगल के बाद जीवन जीने का सबसे बड़ा आसरा होती है। तमाम कानूनों की वजह से जैसे–जैसे खेती पर प्रवासियों की निर्भरता कम होती गई वैसे–वैसे भूमि उनके जीवन का सबसे बड़ा आसरा बन गई। प्रवासियों के परंपरागत रोजगार तो कुछ हैं नहीं जिन पर वे अपना जीवन बसर कर सके इसलिए कृषि भूमि के कुछेक टुकड़ों पर वो अपना गुजर–बसर करने को मजबूर हैं। जब उनकी खेती को नष्ट कर जमीन हड़पने की कोशिश की गई तब भारत से एक वकील भेजा गया यह वकील उन्हें संगठित होकर

29. अनत, अभिमन्यु (1977) 'लाल पसीना', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 245

अपनी रक्षा स्वयं करने की कहकर यह आश्वासन देता है, कि *"तुम्हारी खेती नष्ट हो गई है, इसका मुझे दुःख है पर इस बात की मुझे खुशी है कि इस जमीन को तुम लोगों से कोई नहीं ले सकता। इस पर तुम लोगों के अधिकार की मुहर लग जाए, इसके लिए जरूरी है कि अगले सोमवार को तुम्हारे दो या तीन प्रतिनिधि मेरे दफ्तर पहुँचे, जहाँ से उन्हें संबंधित स्थान पर ले जाकर सभी औपचारिक कार्यवाही पूरी कर दी जाएगी। बाद में तुम लोग इसका आपसी वितरण भी कर सकोगे। जिस स्थान पर तुम लोगों के घर हैं उसकी भी सरकारी कार्यवाही हो जानी चाहिए। इन औपचारिक बातों के लिए तुम लोगों को कुछ पैसे की भी आवश्यकता होगी... ।"*[30] कविताओं में भूमि की समस्या पर कई प्रश्न उठाये गए हैं। कोठी वाले लोग लोगों पर अत्याचार करते हुए उन्हें गुलामी करने के लिए मजबूर कर देते हैं। 'उठे हाथ' कविता में कवि ने उन भू–स्वामियों पर करारा व्यंग्य किया है जो अपने स्वार्थ और लालच के लिए मजदूरों को मानसिक व शारीरिक रूप से तोड़ उनके आत्मसम्मान एवं स्वाभिमान को कुचल देते हैं। ऐसे भू–स्वामी संवेदनहीन होते हैं। वे मजदूरों द्वारा अपने हक में बात करने पर उन्हें प्रताड़ित करते हैं–

"सेवा के लिए उठे मेरे हाथों पर
दाने सरसों के जमाकर
अब तुम कुल्हाड़ी लिए आ गए
उन कोमल पौधों की फसल काटने
एक–एक कर काटने में समय लगता
इसलिए एक ही बार तुमने फसल काट ली
मेरे दोनों हाथों को काटकर।"[31]

मॉरिशस में अब वे कोठी मालिक, जमींदार या साहूकार नहीं रहे। फिर भी गन्नों के खेतों में काम करने वाले मजदूरों की वही दशा है। वे लाल कोड़े नहीं बरसाते परंतु अब उनके मुँह से गालियाँ निकलती है। उन साँप नेवले की लड़ाई में उनकी आर्थिक हालत अब भी नहीं सुधरी है। भूमि की समस्या वैसी–की–वैसी ही बनी हुई है। भूमिहीनता के कारण एवं रोजगारों की अनुपलब्धता के कारण प्रवासी गरीब जन जीवन जीने लायक न्यूनतम सुविधा जुटाने में भी असमर्थ हैं। इसमें प्रमुख कारण यह भी है कि जो लोग जमीन से ऊपर उठ गए हैं वे भी अपने गरीब बंधुआ मजदूर भारतीय प्रवासी भाईयों का साथ देने से कतराते हैं। बल्कि वे ही मालिकों की चापलूसी करते हुए उस शोषण में उनके भागीदार बनते हैं जो थोड़ी बहुत जमीन सरकारी कानूनों से मिल पाती है वह भी मालिक और उनके चापलूस पचा नहीं पाते हैं। वे उस थोड़ी–सी

30. अनत, अभिमन्यु (1977) 'लाल पसीना', प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 279
31. गोयनका, डॉ. कमल, किशोर, (1998) 'अभिमन्यु अनतः समग्र कविताएँ', प्रथम संस्करण, इरावदी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 77

जमीन पर अवैध कब्जे के लिए तरह–तरह के हथकंडे अपनाते हैं। अनत जी अपनी कविता 'काले माथे का सफेद सोना' में लिखते हैं –

"समय की धार खाकर
इतिहास का भार उठाते रहने को
बंधु मेरे मेरा नाता कोल्हू से है
जमीन से पनपता रहता हूँ
पूर्वी आकाश से ऊपर उठे हाथों में
मैं सूरज लिए आता हूँ मेरा संबंध
ईख के उन पीले पत्तों से है
जो कट गए खेतों में
ईखों के विरह का एहसान उठाते हैं
उन कुलियों की याद दिलाने वाले
खेतों में खड़े पत्थरों के ढेर के नीचे
मेरे वंश का इतिहास है जो प्रतिबंधिता है।"[32]

अब जब जमाना बदलने लगा है, परिस्थितियों में कुछ परिवर्तन आने लगा है तो उन कोठी वाले आलिशान घरों में बैठे लोगों के कलेजे पर साँप लोटने लगे हैं। वे आज भी जमीन हड़प प्रवासियों को बेघर करने का मंसूबा बांधे हुए हैं। उस जमीन पर ये लोग अपना दावा ठोंकते हैं। खासकर उस जमीन पर जहाँ वे रहते हैं और उसके आस–पास के इलाके जहाँ उनकी खेती है। जंगल और उसके आस–पास के इलाकों की परती जमीन को वहाँ के प्रवासियों ने अपनी मेहनत से खेती के लायक बनाया था। भूमि हस्तांतरण और भूमिहीनता की समस्या एक आम प्रवासी जन के जीवन को इतना जर्जर बना देती है कि उसे अपना जीवन एक अभिशाप सा लगने लगता है। जमींदार और महाजन जैसे लोगों की शक्ल अपनाये आज के कारखानों के मालिक। जमीन के ठेकेदार के सामने साधारण सा जीवन जीने वाला प्रवासी असहाय होकर शोषित होता रहता है। कई बार जमीनी विवाद के चलते मजदूरों को मौत के घाट भी उतार दिया जाता है। भू–समस्या से मिला ऐसा घाव है जो कभी भी नहीं भर पायेगा।

❑❑❑

संपर्क:

दिनेश कुमार गुप्ता– सहायक आचार्य, अग्रवाल महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गंगापुर सिटी, जिला–सवाई माधोपुर, राजस्थान–322201,
ई–मेल–dineshg.gupta397@gmail.com, मो.– 9462607259

32. गोयनका, डॉ. कमल किशोर, (1998) 'अभिमन्यु अनत : समग्र कविताएँ', प्रथम संस्करण, इरावदी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 81

नासिरा शर्मा का बाल साहित्य सृजन

सुरेंद्र विक्रम*

बाल साहित्य हिंदी साहित्य के समानांतर गतिशील रहा है। फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से लेकर आज तक बाल साहित्य लिखा जाता रहा है। उस समय पाठ्यपुस्तकों को ध्यान में रखकर बच्चों के लिए उपयोगी साहित्य का सृजन किया गया था। हिंदी साहित्य के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से ही बल्कि उन्हीं के सहयोग से बच्चों की पत्रिका बाल दर्पण सन् 1882 में प्रकाशित हुई थी। जिस समय बड़ों के लिए सरस्वती पत्रिका की धूम थी, उसी समय सन् 1917 में उसी प्रेस से बालसखा पत्रिका का प्रकाशन होता रहा जो आगे चलकर 51 वर्षों तक लगातार प्रकाशित होती रही। जैसे–जैसे हिंदी साहित्य अपनी पेंगें बढ़ाता रहा, वैसे –वैसे बाल साहित्य भी हिचकोले खाता हुआ ही सही, लेकिन आगे बढ़ता रहा। विपरीत परिस्थितियों के बावजूद छायावाद अपनी नवीन स्थापनाओं के साथ एक स्तंभ के रूप में स्थापित हुआ। मज़ेदार बात यह है कि छायावाद के सभी स्तंभों– जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी वर्मा ने भी थोड़ा–बहुत ही सही, लेकिन बाल साहित्य के क्षेत्र में भी हाथ आजमाया है, लेकिन क्या कारण है कि संपूर्ण हिंदी साहित्य अपनी भंगिमाओं के साथ आगे बढ़ता गया जबकि बाल साहित्य न तो चर्चा–परिचर्चा में रहा और न ही अपनी जड़ें जमा पाया।

इस बात में शत–प्रतिशत सच्चाई है कि छायावाद को प्रतिष्ठित करने में जितना योगदान मुकुटधर पांडेय का था, उससे कम योगदान छायावाद के चारों स्तंभों. जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी वर्मा का नहीं था। उन्होंने मौलिक लेखन के साथ–साथ छायावाद की मशाल अपने हाथों में लेकर संघर्ष किया तब छायावाद–छायावाद बना। यह दुर्भाग्य ही है कि किसी भी विधा, परंपरा और वैशिष्ट्य को स्थापित करने के लिए जिस निरंतरता की आवश्यकता होती है, उसमें बाल साहित्य कहीं पीछे छूटता गया। वो तो भला हो निरंकारदेव सेवक

* हिंदी में कई रचनाएँ प्रकाशित, कृतियाँ– 'नई कविता : लघुमानव और नैतिक संक्रमण', समकालीन बाल साहित्य : परख और पहचान। लखनऊ विश्वविद्यालय से संबद्ध क्रिश्चियन कॉलेज में अध्यापनरत।

का जिन्होंने सन् 1966 में बालगीत साहित्य नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें बाल साहित्य की प्रमुख विधा बालगीत की स्थापनाओं को पहली बार प्रकाश में लाने का ऐतिहासिक कार्य किया। हालाँकि, इसके पहले भी सन् 1928 में जहूर बख़्श के प्रकाशित आलेख बाल साहित्य का निर्माण से बाल साहित्य के चिंतन की नींव पड़ चुकी थी। सन् 1968 में हरिदृष्ण देवसरे ने पहला शोध प्रबंध हिंदी बाल साहित्य : एक अध्ययन शीर्षक से जबलपुर विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करके शोध उपाधि प्राप्त की। तब से लेकर आज तक लगभग छह दशकों में बाल साहित्य लगातार एक–एक सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ यहाँ तक पहुँच सका है। लगभग डेढ़ सौ वर्षों की बाल साहित्य की विकास–यात्रा दिलचस्प इसलिए भी है कि अनेक उतार–चढ़ाव के बावजूद इसकी निरंतरता कायम रही है। थोड़ा बहुत ही सही लेकिन प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने बाल साहित्य रचकर इस विधा में अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराई।

हिंदी साहित्य में चुनिंदा लेखन के लिए जो नाम लिए जाने जरूरी हैं, उनमें एक प्रमुख नाम नासिरा शर्मा का भी है। अक्षयवट (सन् 2003), कुइयाँजान (सन् 2005), जीरो रोड (सन् 2008), पारिजात (सन् 2010) जैसे महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय उपन्यास लिखने के साथ–साथ बदलू और उसकी मित्र मंडली, दिल्लू दीमक तथा भूतों का मैकडोनल जैसे बालोपयोगी उपन्यास और रंगीन परों वाला सपना, संसार अपने–अपने, सच्ची सहेली, गिल्लो बी, धन्यवाद– धन्यवाद, पढ़ने का हक, गुल्लू, सुल्ताना का सपना आदि बालकहानियों के संग्रहों के माध्यम से नासिरा शर्मा ने एक ऐसी जमीन तैयार की है, जिस पर बाल साहित्य जगत गर्व कर सकता है। उपर्युक्त तीनों उपन्यासों के बारे में डॉ. मेराज अहमद की यह टिप्पणी हमें शत–प्रतिशत आश्वस्त करती है– *"तीनों उपन्यास बाल मनोविज्ञान के धरातल पर कथ्य के विकास के रूप शिक्षा, सफाई, अंधविश्वास, जीवन और समाज के उन बुनियादी प्रश्नों की भी अपनी ज़द से बाहर नहीं जाने देती जो आठ साल के बच्चों से लेकर अस्सी वर्ष तक बूढ़ों के जीवन संदर्भों से संपृक्त है।"*[1]

इसी प्रकार नासिरा शर्मा की बाल कहानियों को लेकर लिखी गई डॉ. मोहम्मद अरशद खान की यह टिप्पणी भी हमें आश्वस्त करती है–– *"न केवल विषय चयन और कथानक बल्कि प्रस्तुतीकरण, भाषा एवं शैली– शिल्प में भी उनकी बालकहानियाँ सतरंगी आभा बिखेरती हैं। उनके बाल साहित्य में खासतौर पर उनके आरंभिक लेखन काल में कल्पना कर ज्यादा ज़ोर दिखता है, परंतु बाद की रचनाओं में कल्पना का यह आवरण धीरे–धीरे टूटा है। आरंभिक कहानियों में वे परियों, राक्षसों और देवों की बात करती हैं, लोक कथाओं और कल्पना प्रधान विषयों को कहानी के रूप में चुनती हैं, पर बाद में उनकी कहानियों के विषय यथार्थ की ओर उन्मुख होते गए हैं।"*[2]

---

1. वाङ्मय त्रैमासिक : जून 2009 : पृष्ठ 262
2. नासिरा शर्मा का साहित्य –साझी विरासत की गूँज : संपादक– डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ : पृष्ठ– 232

समाज की छोटी–छोटी समस्याओं, जिंदगी की जद्दोजहद और अच्छाइयों–बुराइयों की कशमकश के बीच में नासिरा शर्मा के बाल उपन्यास उस फुहार की तरह लगते हैं, जिसमें जिज्ञासा के साथ आशा का संचार देखा जा सकता है। खड़ी बोली की चाक्चिक्य हो या ठेठ इलाहाबादी भाषा नासिरा शर्मा अपने उपन्यासों में ऐसा माहौल तैयार करती हैं जिसमें डूबते – इतराते हुए कथा का आनंद दोगुना हो जाता है। यही बात उनकी बाल कहानियों के संदर्भ में भी कहीं जा सकती है।

नासिरा शर्मा का बाल उपन्यास बदलू और उसकी मित्र मंडली के मूल में पानी की समस्या है। पानी मानव जीवन के लिए आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है। 'जल ही जीवन है' जैसे वाक्य हमारी पृथ्वी की हरियाली और खुशहाली से जुड़े हुए हैं। हमें जल की बरबादी को हर हाल में रोकना होगा। यदि ऐसा संभव नहीं हुआ तो वह दिन दूर नहीं जब हमारे सामने जल का गंभीर संकट उत्पन्न हो जाएगा। बदलू उपन्यास के बारे में डॉ. मेराज अहमद के कथन से इस उपन्यास की जो कड़ी जुड़ी हुई है उसमें यथार्थवादी चिंतन देखा जा सकता है– *"यह वास्तव में उनके (नासिरा शर्मा) उपन्यास कुइयाँजान के बाल चरित्र को अलग से उठाकर उसे बच्चों के लिए उपन्यास का रूप दिया गया है। पानी की समस्या वर्तमान में न केवल भारत अपितु संसार की ऐसी ज्वलंत समस्या है, जिसके प्रति अगर समय रहते हुए सचेत न हुआ गया तो अंतहीन होकर विकास की गति को न केवल बाधित कर देगी अपितु मानवता के लिए एक भयंकर खतरे के रूप में उपस्थित होगी।"*[3]

यह बिलकुल सत्य है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है और उस दर्पण में प्रतिबिंबित छवियों को परखकर उसके भूत–भविष्य और वर्तमान को उजागर करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व होता है। इस दृष्टि से यह उपन्यास एक ओर आने वाली भयानकता से हमारा साक्षात्कार कराता है तो दूसरी ओर पानी के संरक्षण पर बल देता है। यदि हमने पानी के संरक्षण की ओर ध्यान नहीं दिया तो वह दिन दूर नहीं जब मुर्दों को उनके अंतिम संस्कार से पहले स्नान कराने के लिए भी आसानी से पानी उपलब्ध नहीं होगा।

पानी के आसन्न संकट के बहाने बालक बदलू के जिस चरित्र का गठन उपन्यासकार ने किया है उसमें सच्ची मानवता के दर्शन होते हैं। *"बदलू अनाथ बालक है, पहले तो मौलवी साहब का सहारा बनता है, उनकी मृत्यु के बाद खुर्शीद आरा के परिवार में आकर रच–बसकर बुआ के महत्त्व की प्यास को तृप्ति प्रदान करता है। प्यासों– परिंदों और जानवरों के लिए पानी की व्यवस्था करता है। डॉक्टर के क्लीनिक में मरीजों का दिल बहलाता है और अंत में असमय माँ की मृत्यु के बाद पराग और पंखुरी को पालता है।"*[4]

---

3. वाङ्मय त्रैमासिक : जून 2009 : पृष्ठ 260

बदलू और उसकी मित्र मंडली उपन्यास आज के परिप्रेक्ष्य में और अधिक प्रासंगिक हो गया है। प्रो. मोहम्मद साजिद खान का कहना बिलकुल उचित है कि – *"आज घृणा के घुटन भरे माहौल में यह उपन्यास शीतल बाजार की भाँति है। संवेदनाओं की पूरी हक़ीक़त और ईमानदारी के साथ लिखा गया यह उपन्यास अंत तक आते–आते द्रवित कर देता है। आज के अलगाववादी समाज में बदलू जैसा चरित्र समाज के पुराने गंगा–जमुनी एकजुटता वाले समाज की समूची तस्वीर है।*

इसमें मुस्लिम पात्र बदलू द्वारा गायों को पानी पिलाना, कमाल के बच्चों के नाम परंपरागत मुस्लिम नाम न रखकर पराग और पंखुरी, रखना, गाँव के हिंदू संस्कृति के प्रति हीरा पहलवान से कमाल की आत्मीयता ऐसे प्रसंग हैं, जो भारतीय सामासिक संस्कृति के दृढ़ बिंब हैं।"[5]

बदलू का चरित्र हिंदू और मुस्लिम की साझी संस्कृति का मिला –जुला रूप है। वह इंसानों के साथ–साथ परिंदों और जानवरों के लिए भी बराबर मुफीद है। उसे किसी भी चीज का लालच नहीं है, तभी तो कमाल द्वारा उससे तनख्वाह के बारे में पूछे जाने पर बड़ी सहजता से बताता है कि–– *"खाना और नहाने का पानी।"*[6]

नासिरा शर्मा ने बदलू को बहुत संकोची तथा जो मिल जाए उसी में संतुष्ट दिखाया है। अपनी तनख्वाह के पैसे से जानवरों के पीने के लिए पानी का हौदा लाता है और उसमें पानी भरकर मन ही मन बहुत खुश होता है। यहाँ उपन्यासकार की भाषा–शैली पाठकों को बरबस आकृष्ट करती है–

"खुरशीदआरा के कहने पर बुआ भी खिड़की से झाँकने लगीं।

'वहाँ पानी का हौदा रखा है न, सब पानी पीने जमा हुए हैं'– बदलू मुस्कराकर बोला।

उसका हँसता चेहरा पहली बार खुरशीदआरा ने देखा, तो उन्हें बड़ा अजीब लगा। हैरत से पूछा बैठी.'हौदा! हौदा किसने रखा?'

मैंने। बदलू की आँखें चमक उठीं।"[7]

अब बदलू का हौदे में पानी भरना नियम बन गया था। भरे हुए हौदे में से जानवरों का पानी पीना बदलू को सड़ा सुकून देता था। जैसे –जैसे स्थानीय जानवरों और पशु–पक्षियों को पानी से भरे हौदे के बारे में जानकारी होती गई, वैसे – वैसे भीड़ बढ़नी शुरू हो गई। इस दृश्य का कितना सहज चित्रण उपन्यासकार ने किया है–– *"मैना का जोड़ा पंजों के बल चलता आया और उन्होंने चोंच हौदे के किनारे डाल पानी पिया, फिर दोनों उड़कर अमलतास के पेड़ पर बैठकर सड़क का नजारा देखने लगे। बीच में चीं–चीं करके जोड़ा शोर भी मचाता, जैसे सूचना दे रहा हो कि आओ, यहाँ*

---

4. नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन : पृष्ठ–261
5. नासिरा शर्मा का साहित्य –साझी विरासत की गूँज : संपादक–डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ : पृष्ठ–257
6. बदलू और उसकी मित्र मंडली : पृष्ठ–22
7. बदलू और उसकी मित्र मंडली : पृष्ठ–33

पानी है। गौरैया का झुंड उतरा। पहले नहाया, फिर पानी पीकर उड़ गया। कौआ काँव–काँव करता आया। उसने बड़ी सावधानी से अपनी आदत के अनुसार इधर–उधर ताका, फिर चोंच पानी में डूबोई और घूँट भरा। बकरियाँ अपने बच्चों के साथ गर्दन हिलाती गली से निकलीं और हौदे के पास रुक गईं। मुँह डालकर सबने प्यास बुझाई और लौटकर जहाँ से आई थीं, वहीं चली गईं। कुछ देर हौदा खाली रहा, फिर गायों का झुंड रँभाता हुआ एक–दूसरे के पीछे सड़क पार करता आया और पानी पी वहीं सुस्ताने बैठ गया।"[8]

बदलू को इस घर में आकर इतना अपनापन मिल रहा था कि वह अपनी पुरानी जिंदगी को पीछे छोड़ आया था। उसे मौलवी साहब की याद तो आती थी, लेकिन बुआ और उनके परिवार के लाड़–प्यार में सब भूला रहता था। ऊपर से जानवरों से भी उसकी जान–पहचान बढ़ गई थी। वह सुबह–शाम हौदे में पानी डालता तो पशु–पक्षियों का समूह उसे देखकर भी भागते नहीं थे। हुआ यह कि– *"एक दिन बदलू जब जब पानी दे रहा था, तो गाय ने प्यार से उसका मुँह चाटा, फिर हाथ। बदलू की आँखें भर आईं। उसने गाय का मुँह चूमा और बड़ी देर तक उसका बदन प्यार से सहलाता रहा। उसके लिए यह पहला अनुभव था, जब किसी जानवर ने उससे प्यार का इजहार किया था। वह कई दिनों तक अपने गाल को अँगुलियों से सहलाता रहा था।"*[9]

पूरे उपन्यास में बदलू के चरित्र के बहाने जगह–जगह ऐसे ट्वीट्स हैं कि पाठक सहज ही उपन्यासकार के मुरीद हो जाते हैं। बदलू रोज़ –रोज़ खाने के बाद एक रोटी मोड़कर अपनी ज़ेब में रख लेता है। एक दिन उसकी चोरी पकड़ी जाती है। बुआ उसे रँगे हाथों पकड़ लेती हैं और फटकार लगायी हैं तो वह बड़ी मासूमियत से बुआ को जवाब देता है––––––'बुआ वह गाय है न, मुझे बड़ा प्यार करती है। यह रोटी मैं उसी के लिए ले जाता हूँ। वह मेरी राह देखेगी।' बदलू ने सिर झुकाए कहा।

यहाँ मैं डॉ. मोहम्मद साजिद खान के कथन को इस उपन्यास की पृष्ठभूमि से जोड़ते हुए उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ– *"उपन्यास जैसे–जैसे चरम की ओर जाता है, बदलू का चरित्र और भी साफ होता जाता है। समीना की मृत्यु के पश्चात जब उसके दोनों मासूम बच्चे दूध नहीं पीते और किसी के बहलावे में नहीं आते, तो अद्भुत ढंग से बदलू की गोद में उन्हें माँ का एहसास होता है। कमाल आश्चर्य से भर जाता है। जब वह अपने क्लीनिक की तरफ जाता है तो रास्ते भर वह बदलू के बारे में सोचता रहा। अनेक दृश्य थे जो उसकी आँखों के सामने नाच रहे थे– उसका दरवाजे पर भूखा– प्यासा खड़ा होना, जानवरों को पानी देना, मरीजों को बातों में बहलाना और अब माँ बनकर पराग और पंखुड़ी की परवरिश की हठ बाँध*

8. बदलू और उसकी मित्र मंडली : पृष्ठ 35–36
9. बदलू और उसकी मित्र मंडली : पृष्ठ 41

लेना। इस लावारिस लड़के के माँ–बाप कौन होंगे। उनके अंदर की अच्छाई इस लड़के में कैसे खूबसूरती से अपनी शाखें फोड़ रही हैं।"[10]

पूरे उपन्यास में मुस्लिम संस्कृति का ऐसा खाका खींचा गया है कि उसमें अमीरी–गरीबी ऊभ–चूभ हो रही है। नासिरा शर्मा की भाषा का ऐसा कमाल है कि हिंदी के साथ उर्दू और अंग्रेजी के बंधन में बँधा हुआ एक–एक शब्द अपनी खनक बनाए हुए है। कहीं–कहीं देशज शब्दों के प्रयोग भी अवधी भाषा में गुँथे हुए हैं। इलाहाबाद की स्थानीय बोली के शब्दों ने उपन्यास को मिलकर न केवल आगे बढ़ाने में अपनी भूमिका निभाई है, अपितु अर्थों को बराबर विस्तार भी देते रहे हैं। उपन्यास की पठनीयता का आलम यह है कि नयो–नयो लागत है, ज्यों–ज्यों निहारिये –घनानंद। संवादों में मिठास और खटास दोनों का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। नए–नए बिंबों ने भी नासिरा शर्मा की भाषा को विस्तार तो दिया ही है, उनकी चमक, वर्तमान की समझ और संवेदनशीलता को उजागर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

इस प्रकार पूरे उपन्यास में अनाथ होते हुए बदलू के जिस चरित्र का गठन किया गया है उसके अलग–अलग आयाम हैं जिसमें बिना किसी भेदभाव के वह समाज की धुरी बन गया है जिसका उद्देश्य सिर्फ और सिर्फ समाज की सेवा करना है। सही अर्थों में ऐसे उपन्यास समाज की न केवल चेतना जगाते हैं बल्कि एक आदर्श भी उपस्थित करते हैं।

नासिरा शर्मा का बाल उपन्यास भूतों का मैकडोनल की कथावस्तु घुँघरू गाँव के आसपास ही घूमती है जिसके केंद्र में पाठशाला और उसके पाँच शरारती बच्चे हैं। घुँघरू गाँव का नामकरण भी जिज्ञासा से भरा हुआ है आखिर इस गाँव का नाम घुँघरू ऐसे ही थोड़े पड़ गया है। बकौल उपन्यासकार–– *"महुए के पेड़ के नीचे एक मालिन रहती थी। उसके एक बेटी थी, जिसको नाचने का बहुत शौक था। मालिन व माली चिढ़े थे कि वह नाचने की जगह उनके काम में हाथ बटाए, मगर वह बला की जिद्दी थी। बस माली को आया गुस्सा, उसने तालाब में उसके घुँघरू फेंक दिए। यह देख वह लड़की तालाब में घुँघरू हेरने गई और डूबकर मर गई। अब वह आज़ाद थी। आत्मा बन वह सारे गाँव में नाचती फिरती है। तभी से यह गाँव घुँघरू के नाम से मसहूर होय गवा।"*[11]

पाठशाला में पढ़ने वाले पाँचों बच्चे एक ओर होशियारी का नमूना हैं तो दूसरी ओर शरारतें इनमें कूट–कूटकर भरी हुई हैं। पाठशाला से भागकर अमरूद और आमों की चोरी करके खाने का भरपूर आनंद लूटते हैं। मीठे और रसीले जामुन के पेड़ों पर बंदर की तरह चढ़ जाते हैं और छककर कह लीजिए खूब पेट भरकर जामुन का आनंद लेते हैं। पूरे गाँव में मटरगश्ती करते हुए खूब धमाचौकड़ी भी मचाते हैं। ऐसे ही एक

10. नासिरा शर्मा का साहित्य –साझी विरासत की गूँज : संपादक–डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ : पृष्ठ– 258
11. भूतों का मैकडोनल : पृष्ठ 9

दिन मीठे शहतूत के पेड़ पर चढ़ा एक लड़का गुरूजी का कैसे मज़ाक उड़ाता है———— *"कितबवा में लिखा है... श से शहतूत...अरे यह भी कोई पढ़ें जाई स्कूलवा में....इ से इमली....ब से बत्तख....क से कबूतर कौन नहीं जानत ई सब।"*[12]

घर से पढ़ने के लिए निकले ये पाँचों बच्चे कभी मीठे रसीले फल तो कभी शहद की खोज में धूप और दुपहरी की परवाह न करते हुए भटकते रहते हैं। इसी बीच इनमें से एक बच्चे को शहर जाने का मौका मिल जाता है। गाँव से गया हुआ बच्चा शहर की चकाचौंध में ऐसा डूब जाता है कि उसे वहाँ के लोगों की दिनचर्या, वहाँ का रहन–सहन, उनका खान–पान उसके सिर चढ़ जाता है– *"वह शहरी जीवन की नकल करता है। उसके साथी उसका साथ निभाते हैं। फिर वही हरकतें जो गुदगुदाती हैं, वीभत्स बन जाती हैं। मैकडोनल के पिज्जा, बर्गर और मुर्गे की टाँग की नकल में कच्चे –पक्के फल, रामदाना हो रहा साग खाने वाले बच्चे मासूम परिंदों को मारने के बाद भूनने लगते हैं। यह प्रकृति यद्यपि अविश्वसनीय प्रतीत होती है, परंतु भविष्य में नई पीढ़ी के समय दरपेश खतरे का संकेत अवश्य करती है।"*[13]

नासिरा शर्मा ने अपने बाल उपन्यास भूतों का मैकडोनल में पाँचों बच्चों की शरारतों के ऐसे –ऐसे कारनामों का जिक्र किया है जिससे पाठक दाँतों तले उँगली दबाने पर मजबूर हो जाते हैं। यहाँ केवल दो उदाहरण उनकी शरारतों के लिए पर्याप्त हैं–

"पाँचों ने कुछ दिनों से नए तरह के खेल खेलने शुरू कर दिए थे। मेंढक के बच्चों को पकड़ते और उनकी पीठ पर झाड़ू के तिनके की नोक चुभो उनको उचकने पर मजबूर करते। इस खेल का नाम उन्होंने 'मेढ़क दौड़' रखा था, जिसको देखने के लिए तालाब के पिछवाड़े वाले मैदान में गाँव भर के बच्चे जमा होते थे। उनकी इस सरकसबाजी से पाठशाला के बच्चे इनका लोहा मानते थे।"[14]

उनकी दूसरी शरारत में अमानवीयता के दर्शन होते थे–

"जुगनुओं को पकड़ बोतल में बंद कर नया लैंप बनाया। अंदर शीशी से जुगनू अँधेरे में चमकते फड़फड़ाते और कुछ घंटों में ऑक्सीजन न मिलने से तड़पकर मर जाते।"[15]

उपर्युक्त पंक्तियों में पाँचों शरारती बच्चों की अमानवीयता को उजागर करने के बहाने उपन्यासकार ने ग्रामीण परिवेश का जो खाका खींचा है वह हमें विचलित तो करता है मगर उपन्यास की कथावस्तु में मानवीय सोच और अंतर्द्वंद्व को भी उजागर करता है। उनकी शरारतें ऐसी भी हैं जो गाँव में सहज रूप से देखी जा सकती हैं।

12. भूतों का मैकडोनल : पृष्ठ 10
13. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन : पृष्ठ 262
14. भूतों का मैकडोनल : पृष्ठ 20
15. भूतों का मैकडोनल : पृष्ठ 20–21

एक ऐसा ही दृश्य देखिए––

"भैंस की पीठ को हाथी का हौदा समझ पाँचों एक–दूसरे से चिपके रहे। रास्ते में जो गुजरता इनको मुड़–मुड़कर देखना न भूलता। भैंस जुगाली करती धीमे–धीमे मस्त चाल से चरागाह की तरफ जा रही थी।[16]

पूरा उपन्यास इन पाँचों बच्चों की शरारतों से भरा पड़ा है। कुछ शरारतें तो बालसुलभ थीं लेकिन चिड़ियों के साथ अमानवीय व्यवहार एक दिन उस उत्कर्ष पर पहुँचता है जहाँ चिड़ियों के अस्तित्व पर ही संकट उत्पन्न हो जाता है। उपन्यासकार ने उस दशा का जो चित्रण किया है, उससे पाठकों की संवेदना में उबाल आना स्वाभाविक है। अगर लगातार इसी तरह शिकार होते रहे तो चिड़ियाँ क्या किसी भी पक्षी का बचना मुश्किल है.–

पाँचों शिकारी अपनी शिकारगाह पर पहुँचे।

बहुत ढूँढ़ने पर उन्हें कोई चिड़िया नहीं मिली।

पाँचों निराश से पेड़ के तने से पीठ लगा बैठ गए।

"एक दिन यह होना ही था।" कंचा सर पकड़े–पकड़े बोला।

"क्या होना था?"

"पहले हमने बड़ी चिड़ियों के अंडे खाने, फिर उनको और उनके बच्चे खाएँ तो फिर कहाँ से बेचारी चिड़िया बचेगी?" सुतली बोला।[17]

यहाँ सुतली के मुँह से चिड़िया की जिस बेचारगी का जिक्र उपन्यासकार ने कराया उसमें हृदय परिवर्तन की धमक सुनाई दे रही है। आगे चलकर कंडा और सुतली को छोड़कर तीनों कच्चे आम की कैरियों के आस्वाद का आनंद लेते नजर आते हैं। यह हृदय परिवर्तन इतना विराट रूप लेता है कि भटके हुए पाँचों फिर से पाठशाला की ओर मुड़ते हैं और ऐसा मुड़ते हैं कि सभी में सबसे ज्यादा नंबर लाने की होड़ मच जाती है। इसके पीछे यह कारण है कि उन्हें आगे की कक्षा में मुफ्त पढ़ाई के लिए शहर के स्कूल में दाखिला मिल जाएगा।

उन्होंने जिन पक्षियों की निर्ममता से हत्या की थी, उसका पश्चाताप करते हुए उन पक्षियों से प्रार्थना करते हैं––

"मुझे क्षमा करो एक तीतरों, कबूतरों, गौरय्यों हमसे अनजाने में भूल हुई। हम मूर्ख थे। हमको हमारी गलती की सज़ा मत देना। हमको अच्छे नंबरों से परीक्षा पास करवाना ताकि हम शहर जा सकें।"[18]

धीरे–धीरे समय ने करवट बदली। गाँव की पाठशाला से इन पाँचों का अनुराग बढ़ता गया। शरारतें छोड़कर उनकी रुचि शिक्षा में बढ़ती गई और वह दिन भी आया

16. भूतों का मैकडोनल : पृष्ठ 27
17. भूतों का मैकडोनल : पृष्ठ 47
18. भूतों का मैकडोनल : पृष्ठ 60

जब उन्होंने अच्छा परिणाम लाकर इतिहास बदल दिया। उन्हें उपहार के साथ नकद पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। उधर बदलते मौसम के साथ चिड़ियों ने घोंसलों में जो अंडे दिए, उनसे बच्चे निकले, क्योंकि चिड़ियों के अंडे नष्ट करने वाले बच्चों का पूरा ध्यान अब पाठशाला पर केंद्रित हो गया था। उनका पाठशाला में प्रदर्शन इतना शानदार रहा कि खुद कलक्टर ने उन्हें अपने हाथों से पुरस्कृत/सम्मानित किया– *"रहमान, कुनाल, संतोष, सुमन, कंचन ललित ने जाकर चमचमाते कागज में बँधे उपहार लिए और गले में गेंदे का हार पड़ा। पाँचों को लगा जैसे वह पहले जैसे सोंटी, सुतली, कंडा, लट्टू कंचा नहीं रह गए हैं। वह बदल गए हैं, कुछ और हो गए हैं। ठीक इसी तरह उन्हें अपने गाँव का चेहरा बदलना होगा। तब उन्हें गाँव छोड़कर कहीं जाने की जरूरत न होगी। इस ख़याल के आते ही उनका दिल खुशी के मारे ज़ोर से धड़का।"*[19]

उपन्यास संभावनाओं को लेकर समाप्त हो जाता है, लेकिन बहुत सारे सवाल भी छोड़ जाता हैं, जिनके उत्तर समाज को तलाशने होंगे।

नासिरा शर्मा के बाल उपन्यास दिल्लू दीमक में बालमनोविज्ञान की पूरी झाँकी देखने को मिलती है। दिल्लू उर्फ़ अमन जिसका सीधा सा अर्थ है –शांति। इस हिसाब से तो उसे शांतिप्रिय होना चाहिए था लेकिन उपन्यासकार ने तो अमन का चरित्र–चित्रण इस प्रकार किया है– *"बढ़ई शरीफ का कहना है कि इस बच्चे में अमन वाली कोई बात नहीं है। इनकी सबसे बड़ी खूबी है कि हर चीज यह छूना और लेना चाहते हैं। जब तक वह चीज मिल नहीं जाती है तब तक वह रूठते रोते और हठ करते रहते हैं। उनकी आदत से कोई भी खुश नहीं होता।"*[20]

यह सही है कि अमन उर्फ़ दिल्लू भरे–पूरे संयुक्त परिवार में जन्म लेकर बड़े होते हैं, लेकिन अपने सगे छोटे भाई के परिवार में आ जाने के बाद उन्हें लगता है कि वह उनके हक़ पर अतिक्रमण करने लगा है। यहाँ तक की आगे चलकर अमन उससे ईर्ष्या करने लगता है। पूर्व में यही स्थिति उसकी बहन वफ़ा की भी थी, जब अमन पैदा हुआ था तो परिवार के लोग वफ़ा को भी अमन से कम प्यार करने लगे थे। वफ़ा के बहाने बालमनोविज्ञान को रेखांकित करता उपन्यासकार का यह विश्लेषण पाठकों को चौंकाता तो है, लेकिन हक़ीक़त भी बयान करता है–– *"इसने आकर मुझसे सब कुछ छीन लिया है। मेरा कंबल, मेरी फलिया, मेरा स्वेटर, मेरे खिलौने, यहाँ तक की अम्मा जान को भी। पापा आप मुझे गोद में नहीं लेते हैं। मुझे याद है जब मैंने हाथ फैलाया था तो उन्होंने मेरी तरफ देखे बिना गद्दे पर लेते अमन को गोद में उठा उसे छाती से लगाया था। सब बदल गए हैं।"*[21]

19. भूतों का मैकडोनल : पृष्ठ 64
20. दिल्लू दीमक : पृष्ठ 67
21. दिल्लू दीमक : पृष्ठ 79

एक ही पीढ़ी में दोनों बच्चों की वैसी ही मनोवृत्ति पाठकों को पशोपेश में डालकर नए ढंग से सोचने के लिए विवश करती है। बच्चों के कोमल मन पर पड़ने वाला यह प्रभाव कहीं आगे चलकर विद्रोह को न जन्म दे दे, यह एक सामान्य चुनौती भी तो हो सकती है। कहीं यह अभिभावकों की ज़िम्मेदारी और जवाबदेही पर सवाल तो नहीं खड़े कर रही है। डॉ. मोहम्मद साजिद खान का यह कथन कहीं इसी ओर तो नहीं संकेत कर रहा है––– *"दिल्लू दीमक शहरी भावबोध और मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज के संस्कारों की मुकम्मल संस्कृति को दर्शाता है। इस उपन्यास में चित्रण की ऐसी सूक्ष्मता है कि कहीं भी उपन्यास पढ़ने का भान नहीं होता, बल्कि पाठक प्रत्येक चरित्र के साथ एकमेव हो जाता है। यह उपन्यास सुंदर और अद्‌भुत फोटोग्राफी शैली में लिखा गया है, जो संयुक्त और बड़े परिवार में जन्मे एक बच्चे की दास्तान है। मानो लेखिका उसे बच्चों की हर अदा, हर मुस्कान के चित्र ले रही हैं। मज़े की बात तो यह है कि यह उपन्यास जहाँ बच्चों के लिए उपयोगी और रोचक है, वहीं अभिभावकों के लिए भी अपनी जिम्मेदारी और जवाबदेही के रूप में भी महत्त्वपूर्ण है।"*[22]

उपन्यासकार ने बड़ी चतुराई से इसमें रंगभेद की बात करके समाज की मानसिकता को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है। गोरे रंग का अमन परिवार में आते ही सभी का चहेता इसलिए भी बन जाता है कि उस परिवार में कोई गोरे रंग का नहीं है। इसीलिए अम्माजान अमन पर सारा प्यार उड़ेल देती हैं। उन्हें 'दूध का कटोरा' और उसी प्यार से दिल्लू बुलाती हैं।

जरूरत से ज्यादा प्यार पाकर धीरे–धीरे बढ़ते आयुकर्म में अमन की शरारतें उससे अधिक तेजी से बढ़ती जा रही हैं। बड़ों के द्वारा दी गई अधिक छूट का परिणाम यह हुआ कि सभी के चहेते अमन ने एक दिन मच्छरों को भगाने के लिए रखी गई 'ऑलआउट' का लिक्विड पी लेते हैं। पता चलते ही पूरे घर में कोहराम मच जाता है। बमुश्किल उन्हें डॉक्टर ने बचाया, परिवार वालों की जान में जान आई।

हर चीज के बारे में 'इंक्वायरी' अमन की आदत में शुमार हो गया था। अम्माजान ने तंग आकर उनका नाम दिल्लू से 'दिल्लू दीमक' रख दिया। जैसे दीमक जिसमें भी लग जाती है,उसे धीरे–धीरे चाटकर समाप्त कर देती है, वैसे ही दिल्लू अपने सवालों से हर किसी का दिमाग चाटा करते थे, इसी कारण उनका नाम 'दिल्लू दीमक' ठीक ही रखा गया था। इसी समय एक ऐसी घटना घटती है, जिसने परिवार को मुसीबत में डाल दिया। दिल्लू ने पड़ोस में रहने वाले सरदार परिवार की ग्यारह वर्ष की बेटी से अपनी शादी करने का प्रस्ताव रख देते हैं। बात पता चलते ही सरदार का परिवार अमन की शिकायत करने आ धमकता है। किसी तरह बातचीत कर मामले को रफा–दफा किया जाता है।

22. नासिरा शर्मा का साहित्य –साझी विरासत की गूँज : संपादक– डॉ. शगुफ्ता नियाज़ : पृष्ठ– 251

एक दिन नाना का 'हेयरिंगएड' टूटा मिला, बाद में पता चला कि यह भी अमन की ही कारस्तानी है। अमन की जमकर ठुकाई होती है। यहाँ पर उपन्यासकार ने अमन के परिवार के बहाने एक बड़ा सवाल भी उठाया है————————

"यह लतखोर बच्चे हैं। अम्मा को अमन की मम्मी का कहा जुमला याद आया कि यह बच्चे बिना मार के कोई बात न सुनते हैं, न मानते हैं। इन्हें लाख आँख दिखाओ प्यार से समझाओ भाभी मगर उनके पाले सिर्फ 'मार' आती है। जब इनको चोट लगती है न तभी इनका दिमाग खुलता है।"[23]

नासिरा शर्मा जी ने इस उपन्यास के बहाने संयुक्त मुस्लिम परिवार और विशेष रूप से उसमें पल रहे बच्चों का ऐसा खाका खींचा हैं कि पूरी ग्रामीण संस्कृति ही झलकने लगती है। अब बच्चे अपनी उम्र से अधिक बड़े हो गए हैं, उनकी शरारतों का तौर–तरीका भी बदल गया है। बढ़े परिवार से उनके अंदर आक्रोश भी पनपने लगा है। अम्मा से डाँट खाने के बाद तो अमन विद्रोह पर उतारू हो जाता है। यही नहीं वह घर छोड़ने की भी धमकी देने लगता है। छोटे बच्चे अमन का यह व्यवहार पूरे परिवार की चिंता का कारण बन जाता है। उसके अब्बू का तो सर ही घूमने लगता है———उनका सर घूम गया था शायद इसी को जेनरेशन गैप कहते हैं जो बात वह अपने बुजुर्गों से कहने की सोच नहीं सकते थे आज उसे खुद उन्हें सुनना पड़ रहा है इतना छोटा बच्चा क्या ऐसी बातें कर सकता है मानव अधिकार की यह समझ घर से सीखी या टीवी से।

उपन्यासकार ने अमन की बौखलाहट का एक और नमूना इस संवाद के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जब उसे पता चलता है कि तुम्हारा एक प्यारा सा भाई पैदा हुआ है तो अम्माजान से हुई बातचीत में अमन का गुस्सा देखिए .——

"तुम्हारे पापा का नाम क्या है?"
"वनमानुष" अमन का जवाब होता।
तुम्हारी अम्मा का नाम?"
"बंदरिया"
"तुम्हारी बहन का नाम?"
"चिंपैंजी"
"तुम्हारा नाम"
"गुरिल्ला"
"तुम्हारे आने वाले भाई का नाम?"
"स्पाइडर मंकी"
"होने वाली बहन का नाम"

23. नासिरा शर्मा का साहित्य –साझी विरासत की गूँज : संपादक– डॉ. शगुफ्ता नियाज़ : पृष्ठ– 90

"लंगुरिया"
"रहते कहाँ हो?"
"छतरपुर जू में "
"टिकट कितना है?"
"दो रुपया"[24]

अब इसे अमन का आक्रोश ही तो कह सकते हैं कि वह साधारण से प्रश्नों का असाधारण जवाब देकर सभी को आश्चर्य में डाल देता है। पूरे उपन्यास में जगह–जगह ऐसा ही उहापोह देखने को मिलता है। इसका कथानक इतना जबर्दस्त है कि पढ़ते समय बार–बार आँख मूँदकर सोचने के लिए विवश करता है। ऊपर नासिरा शर्मा की भाषा–शैली, मुस्लिम संस्कृति का बेलाग चित्रण, हिंदी के साथ –साथ उर्दू–फारसी शब्दों का विन्यास उपन्यास को पठनीय तो बनाता ही है, इसकी उपयोगिता को भी रेखांकित करता है।

नासिरा शर्मा ने बाल उपन्यास के साथ–साथ बाल कहानियों के लेखन में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। ब्लर्ब में बच्चों से बातचीत करते हुए लेखिका ने संवाद स्थापित किया है– "संसार अपने–अपने कहानी संग्रह की कहानियाँ बच्चों, जानवरों, पेड़ों– पहाड़ों, बुजुर्गों, भूतों, परियों की बातें इस तरह करती हैं कि तुम्हें महसूस होगा कि यह कहानियाँ वास्तव में तुम्हारे बाल मन की इच्छाओं और जिज्ञासाओं की परतें खोल रही हैं। कहानी के चरित्र की जगह तुम खुद अपने को महसूस करोगे।

इस संग्रह की कहानियों पर बने चित्र तुम्हें लुभाएँगे और मुस्कुराने पर मजबूर करेंगे क्योंकि यह कहानी के चित्रों को एक प्रकार देकर तुम्हें कहानी सुना रहे हैं। चित्रों को पढ़ने का अपना सुख होता है, जो तुम्हें इस संग्रह में भरपूर मिलेगा।"

संग्रह की कुल 27 कहानियों को पाँच खंडों में इस प्रकार विभाजित किया गया है कि ब्लर्ब में दिए गए सभी विषयों की झाँकी आसानी से उपलब्ध हो सके। नासिरा जी ने हर खंड में बच्चों से संवाद करते हुए अपने अनुभवों, रुचियों और लेखन की झलक प्रस्तुत की है। उन्होंने फारसी से अनुवाद की गई तथा देश –विदेश की लोककथाओं पर आधारित कहानियों में मनोरंजन का पुट डालकर उन्हें अपने ढंग से प्रस्तुत किया है।

नासिरा शर्मा की बाल कहानियों की पुस्तक के आरंभ में ऐसी पाँच कहानियाँ हैं, जिनके बारे में नासिरा जी का कहना है– *"बच्चों! तुम्हारे लिए मेरी लिखी यह पाँच कहानियाँ 1976 से लेकर 2001 तक की हैं। इसमें मैंने पशु– पक्षी और कल्पना में रहने वाली परी और बच्चों को मिलाकर कहानी लिखी है। इंसान का अपना संसार और मछली, जलपरी, परी, चिड़िया, जुगनू की अपनी दुनिया। दोनों एक दूसरे की दुनिया को जानना*

24. नासिरा शर्मा का साहित्य –साझी विरासत की गूँज : संपादक– डॉ. शगुफ्ता नियाज़ : पृष्ठ 99

चाहते हैं। ठीक तुम्हारी तरह। तुममें से बहुत से बच्चे ऐसे होंगे, जो अपने आस–पास के जीव– जंतु से दोस्ती कर एक तरफा गप्पें मारते हैं। ठीक कह रही हूँ न। कुछ ऐसी ही मेरी नीलम जलपरी और जोज़फ है। लैगनिटी और रोमा है। मखमल परी है। बाग़, जंगल, समंदर, नदी है। इन सबको मिलाकर मैंने संवाद स्थापित किया है।"[25]

यही नहीं नासिरा शर्मा की बालकहानियों को और गंभीरता से समझने के लिए तथा उनकी धीरे–धीरे विकसित दृष्टि का अवलोकन करने के लिए मैं डॉ. मोहम्मद अरशद खान की इस टिप्पणी को विशेष रूप से रेखांकित करना चाहता हूँ– *"किंतु यह कहना की नासिरा शर्मा ने सिर्फ परी कथाएँ, लोककथाएँ, राक्षसों और दानवों की कहानियाँ ही लिखी हैं, उनके कृतित्व के साथ नाइंसाफी होगी। उनकी कहानियों में हर रंग मिलता है। न केवल विषय चयन और कथानक बल्कि प्रस्तुतीकरण, भाषा एवं शैली शिल्प में भी उनके बाल कहानियाँ सतरंगी आभा बिखेरती हैं। उनके बाल साहित्य में खासतौर पर उनके आरंभिक लेखन काल में कल्पना पर ज्यादा जोर दिखता है, परंतु बाद की रचनाओं में कल्पना का यह आवरण धीरे–धीरे टूटा है। आरंभिक कहानियों में वे परियों– राक्षसों और देवों की बात करती हैं। लोककथाओं और कल्पना प्रधान विषयों को कहानी के रूप में चुनती हैं पर बाद में उनकी कहानियों के विषय यथार्थ की ओर उन्मुख होते गए हैं।"*[26]

नासिरा शर्मा के इस बाल कहानी संग्रह में रेशम परी, सूर्य पक्षी का महल, सेब का बाग, खजूर में शहद, पालक झील, आँवले का बाग जैसी जबर्दस्त कहानियों का प्राधान्य है, तो बंद आँखें, आधा पत्थर, डूबता पहाड़, हँसी का दर्द तथा मेहमान लाए पत्थर कहानियाँ अपनी विशिष्ट भाषा–शैली के कारण हमें अंदर तक झकझोर देती हैं। विशेष रूप से वे कहानियाँ हमें दूसरे ही कल्पनालोक में ले जाती हैं, जिन कहानियों का अनुवाद नासिरा जी ने सन् 1975 से 1978 के बीच में किया था।

नासिरा शर्मा का दूसरा बाल कहानी संग्रह रंगीन परों वाला सपना में कुछ कहानियाँ बच्चों के लिए हैं तो कुछ बच्चों पर लिखी गई हैं। ऐसे मिले–जुले संकलन में सही अर्थों में नासिरा जी का अपना बचपन हिलोरें ले रहा है, जिसके बारे में वे खुद कहती हैं कि–

"मैंने बच्चों की कहानियाँ सातवीं कक्षा के पहले से लिखनी शुरू कीं जो आज तक जारी है। मुझे बचपन में खाए फलों का स्वाद भी बहुत याद आता है। जैसे जंगलजलेबी, कसेरू, हिंदी फालसा वगैरह। इनका ज़िक्र कहानियों में इसलिए किया है कि जो फल हमारे इलाके के स्थानीय फल थे जो आमतौर पर अब नजर नहीं आते, वह मेरी कहानियों में जी उठे। हमको अपने देसी फलों और अनाजों का पता होना चाहिए और उसे संजोने के लिए कोशिश करना चाहिए।

25. संसार अपने–अपने : पृष्ठ 9
26. नासिरा शर्मा का साहित्य– साझी विरासत की गूँज : संपादक– डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ : पृष्ठ– 232

बच्चों से मुझे गहरा लगाव है। छोटे बच्चों को गोद लेना, बातूनी बच्चों से गप्पें मारना, खामोश बच्चों को छेड़ना, लड़कों की मूँछ–दाढ़ी पेन से बनाना या लड़कियों को सजाना आज भी मेरे अंदर छुपे बच्चे का लुत्फ दे जाता है।"[27]

उपर्युक्त पंक्तियों में नासिरा जी ने बाल साहित्य सृजन का निचोड़ ही प्रस्तुत कर दिया है। यह बिलकुल सही है कि अगर हम बच्चों की दुनिया में रहकर आनंदित नहीं हो सकते हैं, तो उनको लुभाने वाला साहित्य भी नहीं लिख सकते हैं। बच्चों की बारीक गतिविधियों पर नजर रखने वाला ही उनके लिए उपयोगी और मर्मस्पर्शी साहित्य लिख सकता है।

सपनों की शहजादी जंगल जलेबी, कसेरू बाबू, आँवले का बाग कहानियों में नासिरा जी का बचपन बोल रहा है। ये सारे फल उन्हें शुरू से ही इतने प्रिय रहे हैं कि उन्हें कहानियों में ढालकर प्रस्तुत करने में जितना आनंद उन्हें आया होगा, उससे कहीं ज़्यादा आनंद की अनुभूति पाठकों को होती है, जब वे एक–एक फल के बारे में विस्तार से पढ़ते हैं। वे कहानियों में ही यह भी बता जाती हैं कि लड़ना बुरी बात है, साथ–साथ यह भी कि प्रेम की जीत होती है। इस तरह समाज में व्याप्त और खट्टे–मीठे छोटे–छोटे विषयों को आधार बनाकर उन्होंने अपनी कहानियों का ऐसा ताना–बाना बुना है कि पाठक उनकी कलम का मुरीद हो जाता है। हम जिन चीजों को देखकर अनदेखा कर देते हैं, उन पर नासिरा जी की ऐसी दृष्टि गई है कि उसे अनुभव की आँच में पकाकर पाठकों के लिए विशिष्ट शैली में परोस दिया है।

नासिरा जी के बड़ों के लिए लिखे गए उपन्यासों और कहानियों को पढ़कर जो विस्मय और अतिरेक होता है, वही अनुभूति, हर्षातिरेक और लेखन का आवेग उनके बाल साहित्य को भी पढ़कर होता है। कहीं–कहीं तो ऐसा लगता है कि वे कहानियाँ लिख नहीं रही हैं, बल्कि सामने बैठकर सुना रही हैं, और हम मंत्रमुग्ध होकर हुँकारी भी भर रहे हैं और आनंदित भी हो रहे हैं। बाल भवन की सदस्य के रूप में उन्होंने बच्चों से जो आमना–सामना करके उनके लिए साहित्य लिखा है, उनसे संवाद किया है और अपने अनुभव के निचोड़ से उन्हें समृद्ध किया है, वह उनके लेखन में साफ–साफ दिखाई देता है। मेरा मानना है कि नासिरा शर्मा जी के बाल साहित्य का अभी ठीक तरह से मूल्यांकन नहीं हुआ है। उनका बड़ों का साहित्य ही इतना भारी–भरकम है कि उसके नीचे उनका बाल साहित्य दबा हुआ लगता है।

❑❑❑

संपर्क:

सुरेंद्र विक्रम– सी–1245, एम.आई.जी., राजाजीपुरम, लखनऊ उत्तर प्रदेश–226017, ई–मेल– vikram.surendra7@gmail.com, मो. 8960285470

27. नासिरा शर्मा का साहित्य– साझी विरासत की गूँज : संपादक– डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ : पृष्ठ 7–8

रसानुभूति का सौंदर्यशास्त्र

शैलेश कुमार मिश्र*

सौंदर्यप्रियता मनुष्य का सहजात गुण है। मानव विकास का इतिहास इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि अति प्राचीन काल में भी सौंदर्यप्रियता लोकमानस की स्वाभाविक प्रवृत्ति रही थी। सौंदर्यशास्त्र या एस्थेटिक्स भारतीय रागबोध का अपूर्ण पाश्चात्य संस्करण है। रागबोध या रसबोध भारतीय साहित्यशास्त्रीय चिंतन का केंद्रीय तत्व है और सौंदर्य पाश्चात्य कला चिंतन की केंद्रीय संकल्पना है। यद्यपि सौंदर्यशास्त्र या एस्थेटिक्स अपने इस नाम से पाश्चात्य चिंतनधारा में प्रवर्तित हुआ तथापि भारतीय मनीषियों की चिंतनधारा में यह दूसरे शब्दों में व्यापक तौर पर प्रकट हुआ।

सौंदर्य शब्द सु+उंदि क्लेदने धातु से ष्यञ् प्रत्यय के फलस्वरूप निष्पन्न हुआ है।

सुष्ठु उनत्ति आर्द्रीकरोति यच्चित्तं तत्सौंदर्यम्।[1]

सौंदर्य में चित्त को आर्द्र कर देने की उसे तरलित कर देने की क्षमता है। सौंदर्य की इसी तरलता को लक्ष्य कर उज्ज्वलनीलमणि में रूपगोस्वामी कहते हैं –

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदंगेषु लावण्यं तदिहोच्यते।।[2]

संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त सौंदर्य के वाचक शब्दों की बहुतायत है। सुंदर को शोभन, कांत, मनोज्ञ, मंजु, मनोहारी, मनोहर, रुचिर चारु, सुषम, मंजुल, भद्र, रमणीय, बन्धुर, पेशल, अभिराम, वल्गु आदि शब्दों से अभिव्यक्त किया गया है। सौंदर्य का आशय अभिव्यक्त करने के लिए भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। सौंदर्य के बोधक ये शब्द हैं–

* अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, राजकीय संस्कृत कॉलेज, राँची, झारखंड

1. हलायुध कोश
2. उज्ज्वलनीलमणि–10/28

शोभा, सुंदर, अलंकृत, ललित, श्लक्ष्ण, रम्य, विभूषित, छवि, चारु, सौष्ठव ह्रद्य, विच्छित्तिः सुभग,मनोज्ञ, लावण्य और श्री।[3]

भारतीय साहित्यशास्त्र में सौंदर्य–तत्व का प्रथम संकेत भरत के नाट्यशास्त्र में मिलता है जहाँ वे नाट्य को सर्वविध, ज्ञान शिल्प, कला आदि का अधिष्ठान कह डालते हैं–

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।[4]

भरत के पश्चाद्वर्ती साहित्यशास्त्रियों में वक्रोक्तिजीवितकार आचार्य कुंतक और रसगंगाधर के प्रणेता पंडितराज जगन्नाथ के विचारों में सौंदर्य की सुस्पष्ट धारणा मिलती है। यद्यपि कुंतक ने भी वाक्य और अर्थ की समग्रता को काव्य कहा है किंतु दोनों की आनंदप्रद स्वतंत्र सत्ता को भी स्वीकार किया है। उनका मानना है कि अर्थ में प्रभूत सौंदर्य हो, अर्थ चमत्कारकारी हो परंतु उसे अभिव्यक्त करने वाला शब्द–विन्यास सशक्त न हो, चमत्कारी न हो तो काव्य की सत्ता निर्मूल हो जाती है, और साथ ही शब्दविन्यास चमत्कारी हो लेकिन अर्थ में सुंदरता न हो तो काव्य सुंदर नहीं होता। वे यह भी कहते हैं कि कोई अर्थ न भी समझे तो साधु काव्य के केवल वाक्यविन्यास में ही एक ऐसा सौंदर्य है कि उसे पढ़ते ही हृदय सांगीतिक आह्लाद से भर उठता है–

अपर्यालोचितेऽप्यर्थे बंध सौंदर्य संपदा।
गीतवद्धृदयाह्लादं तद्विदां विदधाति यत्।।[5]

कुंतक ने इस सौंदर्य के दो धर्म माने हैं – अंतरंग और बहिरंग। उन्होंने अंतरंग सौंदर्य को सौभाग्य और बहिरंग सौंदर्य को लावण्य कहा है –

इत्युपादेयवर्गेऽस्मिन् यदर्थप्रतिभा कवेः।
सम्यक् संरभते तस्य गुणः सौभाग्यमुच्यते।।
सर्वसंपत्परिस्पुंदसंपाद्यं सरसात्मनाम्।
अलौकिकचमत्कारकारि काव्यैकजीवितम्।।
वर्णविन्यासविच्छित्तिपदसंधानसंपदा।
स्वल्पया बंधसौंदर्यं लावण्यमभिधीयते।।[6]

कुंतक कहते हैं कि केवल शब्द रचना का सौंदर्य भी आनंदप्रद हो सकता है किंतु उसके अर्थबोध में पानक रस का आस्वाद प्राप्त होता है, तब वह और भी ज्यादा सौंदर्यशालिनी हो जाती है।

---

3. भारतीय नाट्यसौंदर्य (मनोहर काले)– पृ.180 (संदर्भ)
4. नाट्यशास्त्र– 1.116
5. वक्रोक्तिजीवित – वृत्तिगत कारिका – 1/37
6. वक्रोक्तिजीवित – वृत्तिगत कारिका – 1/55, 56, 32

वाच्यावबोधनिष्पत्तौ पदवाक्यार्थवर्जितम्।
यत् किमप्यपर्यत्यन्तः पानकास्वादवत् सताम्।।[7]

पंडितराज जगन्नाथ की 'रमणीयार्थप्रतिपादकता' ही सौंदर्यबोध का स्पष्ट उद्घोष है। इस रमणीयता को उन्होंने 'लोककोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता' की आख्या दी है। जगन्नाथ ने रमणीयता को चमत्कार कहा है जो मन की वह अवस्था है, जो काव्यास्वाद के काल में प्रकाशमान और उत्कंठाधायक हो जाती है –

लोकोत्तरत्वं चाह्लादगतश्चमत्कारत्वापरपर्यायोऽनुभवसाक्षिको जातिविशेषः। कारणं च तदवच्छिन्ने भावनाविशेषः पुनः पुनरनुसन्धानात्मा।[8]

यह कहा जा सकता है कि काव्यानंद में सौंदर्यरूप वासना से चित्त के मिलन की अव्याख्येय अनुभूति ही रमणीयता है, वही चमत्कार है। इसे सहृदय का चित्त ही अनुभव कर सकता है, यह अनिर्वचनीय है – *सचेतसामनुभवस्तत्र प्रमाणं केवलम्।*

पंडितराज ने रस और रमणीयता की अपनी–अपनी सत्ता मानी है तथा काव्यत्व के लिए रमणीयता का आधार ग्रहण किया है। रमणीयता में यत्किंचिद् रस भी समाविष्ट हो सकता है किंतु उसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता भी है। उनका मानना है कि रसोद्बोध ही काव्यत्वविधायी तत्व होता तो नटों के हाव–भाव और आंगिक विकार भी काव्य होते क्योंकि उनसे भी रसोत्पत्ति होती है। लेकिन ऐसा होता नहीं है।

एतेन रसोद्बोधसमर्थस्यैवात्र लक्ष्यत्वमित्यपि परास्तम्।[9]

अंततः जगन्नाथ ने रस को भी रमणीयता का जनक बताकर रमणीयता के आधार पर काव्यत्व की प्रतिष्ठा की। उनका कहना है कि यद्यपि विद्वज्जनों ने अनेक प्रकार की बुद्धि से रस को अनेक रूपों में समझा है, फिर भी यह निर्विवाद है कि रस अलौकिक आनंद का व्याप्य पदार्थ है, और एक सौंदर्य वस्तु है–

इत्थं नानाजातीयाभिः शेमुषीभिर्नानारूपतया अवसितोऽपि
मनीषिभिः परमाह्लादाविनाभावितया प्रतीयमानः प्रपंचेऽस्मिन् रसो
रमणीयतामावहतीति निर्विवादम्।[10]

इस प्रसंग में प्रसिद्ध आलोचक हंसकुमार तिवारी का कहना है– "प्रकृति प्रक्रिया और प्राप्ति इन तीनों के विचार से जो स्वरूप और धर्म रस का होता है लगभग वही सौंदर्य का है। अतः काव्य–विचार में रस का जो लक्ष्य है, वही कला विचार में सौंदर्य का है। रस विभाव के अवलंबन से सृष्ट और पुष्ट होता है, सौंदर्य वस्तु के। रस में भाव और सौंदर्य में रूप की प्रधानता है। विभाव मूलतया वस्तु ही है। बोध के दो रूप हैं – बुद्धिगत बोध और आत्मगत बोध। बुद्धि वस्तु के यथायथ रूप को और

7. वक्रोक्तिजीवित – वृत्तिगत कारिका – 1/38
8. रसगंगाधर – प्रथमानन
9. रसगंगाधर – प्रथमानन
10. रसगंगाधर –प्रथमानन

आत्मा उसके भावस्वरूप को प्रस्तुत करती है। यद्यपि वस्तुओं की रूपमयता अनेक मनीषियों को स्वीकार्य नहीं है। सौंदर्य उनकी दृष्टि में मानसिक अवस्था है, वस्तुगत नहीं। जैसा कि कांट ने कहा है–

सौंदर्य एक चित्तावस्था मात्र है, एक चित्तपरितोष है। वह केवल प्रमाता का आत्मगत धर्म है।[11]

तस्य तदेव हि रम्यं यस्य मनो यत्र संलग्नम्।

जिस प्रकार स्वाभाविक भाव वस्तुतः रस नहीं कहे जा सकते, एक प्रक्रियागत भाव ही रस रूप में परिणत होता है, उसी प्रकार वास्तविक वस्तु सौंदर्य नहीं होती। रसानुभूति की प्रक्रिया की तरह सौंदर्यानुभूति की भी प्रक्रिया है और वह है वस्तु में आत्मचेतना का समावेश। जिस प्रकार अचेतन पदार्थों में समुचित विभावादि की योजना से रसोन्मीलन किया जाता है उसी प्रकार वस्तु में सौंदर्य की प्रतिष्ठा के लिए आत्मचेतना का समावेश आवश्यक है। इसे हम तादात्म्य स्थापित करना कह सकते हैं। सौंदर्य का अव्यवहित प्रभाव विस्मय या आश्चर्य है। किंतु जैसे–जैसे सौंदर्य के प्रभाव को बुद्धि विश्लेषित करती है वैसे–वैसे सुंदर के प्रत्येक अंश पर दृष्टि जाती है और नव्यता तथा माधुर्य की अनुभूति तीव्रतर होने लगती है। सौंदर्य की इस प्रक्रिया से निश्चय ही माघ कवि सुपरिचित रहे होंगे तभी उन्होंने कहा–

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।[12]

सौंदर्य के क्षण–क्षण परिवर्तनशील रूप और उसकी नव्यता को निरखने वाली बुद्धि प्रतिभा कहलाती है–

प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।[13]

सौंदर्य या रमणीयता के प्रसंग में निरंतर 'नवता' का अन्वेषण होता है। उसकी अनुभूति और उसके माधुर्य में आनंद प्राप्त होता है। सौंदर्य के अर्थ को द्योतित करने के लिए माधुर्य का लक्षण उज्ज्वलनीलमणि में रूपगोस्वामी ने दिया है–

रूपं किमप्यनिर्वाच्यं तनोर्माधुर्यमुच्यते।[14]

अर्थात् माधुर्य शरीर के उस रूप का प्रकाशन करता है जो शब्दों के द्वारा अवाच्य है, अतएव लोकविलक्षण है। माधुर्य, लावण्य और सौंदर्य एक दूसरे के शब्दांतर हैं, अभिप्राय प्रायः समान है। अनिर्वचनीय रूप को द्योतित करने वाले इस माधुर्य को लक्ष्य कर ही कालिदास ने कहा –

---

11. कला (हंसकुमार तिवारी) . पृ. 87
12. शिशुपाल वध – 4/17
13. भट्टतौत
14. उज्ज्वलनीलमणि–10/36

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।[15]

अभिप्राय यह है कि सौंदर्य अलंकरण की अपेक्षा नहीं करता। किसी अलंकरण के बिना भी जिसके कारण अंग आकर्षक लगते हैं वही रूप है। उज्ज्वलनीलमणि में उल्लिखित है –

अंगानि अभूषितान्येव केनचिद् भूषणादिना।
येन भूषितवद्भांति तद्रूपमिति कथ्यते।।[16]

वल्लभाचार्य ने मधुराष्टक में 'मधुराधिपतेरखिलं मधुरं' कहकर कृष्ण के उसी अनिर्वचनीय सौंदर्य का संकेत किया है।

सामान्यतः सौंदर्य के प्रथम इंद्रियबोध (दर्शन श्रवणादि) से आश्चर्य या विस्मय उत्पन्न होता है, फिर धीरे–धीरे द्रष्टा या श्रोता उस सौंदर्य को निरखता है और मुग्ध होता है। यही मुग्धता आनंद प्रदान करती हैं, यही वेद्यांतरसंपर्कशून्यता का क्षण है, आत्मविस्मृति का क्षण है, वस्तु में आत्मचेतना का समावेश है। चूँकि सौंदर्य क्षण–क्षण नव्यता को प्राप्त होता है अतः मन सदैव उसके लिए साकांक्ष रहता है –

जनम अवधि हम रूप निहारलूँ
नयन न तिरपित भेल।[17]

यही कारण है कि प्रत्येक क्षण नवीनता को प्राप्त होने वाले इस सौंदर्य से अन्वित सौंदर्यशालिनी कविता या सौंदर्यशालिनी वस्तु का अनुशीलन जब–जब हम करते हैं, तब तब उसके नए–नए रूप से हमारा साक्षात्कार होता है। अतएव सौंदर्य–परिपूरित रचनाएँ कभी पुरानी नहीं पड़तीं। गीता में संजय को भगवान् के विश्वरूप का दर्शन कर विस्मय और आनंद होता है। वे कहते हैं –

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः।।[18]

आध्यात्मिक चिंतन के अनुसार जगत् का आधार परब्रह्म सच्चिदानंद का प्रतिनिधित्व करता है। यद्यपि यह माना जाता है कि सत्यं शिवं सुंदरम् प्लेटो के 'The truth, the good, the beautiful' का भारतीय संस्करण है, तथापि सत्यं शिवं सुंदरम् को भारतीय मनीषा ने सच्चिदानंद के रूप में साक्षात्कृत किया है। सत्यं सत् का, शिवं चित् का और सुंदरम् आनंद का प्रतिनिधित्व करता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में आनंद को ब्रह्म बतलाया गया है–

15. अभिज्ञानशाकुंतल – 1/19
16. उज्ज्वलनीलमणि–10/25
17. विद्यापति पदावली
18. श्रीमद्भवद्गीता – 18/77

आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात् आनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते।
आनंदेन जातानि जीवन्ति आनंदं प्रयन्त्यभिसंविन्तीति।।[19]

अर्थात् ब्रह्म ही आनंद है। आनंद से ही समग्र प्राणी उत्पन्न होते हैं। उत्पत्ति के अनंतर वे आनंद में, आनंद से ही जीवित रहते हैं और अंत में आनंद में ही लीन हो जाते हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् आनंद तत्व की विशद व्याख्या करते हुए कहता है कि मनुष्यों में पाँच कोष होते हैं जिनमें आनंद कोश ही सर्वात्मना अंतरतम है। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश तथा विज्ञानमय कोश–ये चारों कोश एक के भीतर एक रहते हैं और अंतिम विज्ञानमय कोश के भीतर यह आनंद कोश है। यह सूक्ष्मतम सुख आनंद है जिसमें ब्रह्मानंद का थोड़ा भी संस्पर्श होता ही है। बिना उस स्पर्श के आनंदानुभूति हो ही नहीं सकती। रस भी वही ब्रह्म है अतएव तज्जन्य ब्रह्मानंद से आनंद की अनुभूति होती है –

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनुंदीभवति।[20]

जिस प्रकार रसानुभूति आत्मानंद है, ब्रह्मास्वादसहोदर है, उसी प्रकार सौंदर्यानुभूति या सौंदर्यप्रियता का एक सत्य यह है कि वस्तु विशेष में मन की अनुरूपता पाकर मन प्रसन्न हो उठता है और तब वह वस्तु सामान्य होते हुए भी सौंदर्यविशिष्ट हो जाती है, उसमें आत्मा का, ब्रह्मानंद का संस्पर्श हो जाता है। दूसरे शब्दों में पूर्वोक्त आत्मचेतना का समावेश हो जाता है। यथा–पुत्र को हम इसलिए प्यार नहीं करते कि वह प्यारा है बल्कि हम पुत्र को प्यार कर अपने आप को प्यार करते हैं। पुत्र में अपनी अनुकूलता का दर्शन पाकर प्रसन्न होते हैं–आत्मा वै जायते पुत्रः।

न वारे पुत्रस्य कामाय पुत्रः प्रियो भवति।
आत्मनस्तु कामाय पुत्रः प्रियो भवति।।

सौंदर्यसंपन्न वस्तु हमारे मन की रिक्त को पूर्ण करती है। वह हमारे भीतर उत्कंठा जगाकर हमारे अवचेन में स्थित भावों को अनजाने स्मरण कराती है। कालिदास ने इसीलिए कहा –

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान् पर्युत्सुकीभवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तरसौह्रदानि।।[21]

रम्य वस्तु को देखकर या मधुर शब्द को सुनकर सुखी व्यक्ति भी उत्कंठित हो जाते हैं क्योंकि उनके अवचेतन में स्थित भावों को वह रम्य वस्तु अपने अनिर्वचनीय प्रभाव से जगा देती है जैसे शांत पुष्करिणी में पत्थर फेंकने पर विवर्त उत्पन्न हो जाता

19. तैत्तिरीय उपनिषद् – 3/6
20. तैत्तिरीय उपनिषद् – 2/8
21. अभिज्ञानशाकुंतल – 5/2

है। यह उत्कंठा, यह तृषा, यह व्याकुलता, आत्मा की विकल दशा (agitated state of the soul) ही सौंदर्यानुभूति की प्रक्रिया का प्राथमिक सोपान है। फिर हम उस रम्यता के अनुसंधित्सु बन जाते हैं, उसका विश्लेषण कर उसकी नव्यता से साक्षात्कार करते हैं और आनंदनिमग्न होते हैं। कालिदास ने रम्यता की अनुभूति को एक ही नाम दिया– पर्युत्सुकीभवन। रम्यता की सौंदर्य की मधुर अनुभूति एक व्यग्रता, एक उत्कंठा पैदा कर देती है और चित्त विकल होकर जाने किन–किन स्मृतियों को इस अनुभूति से जोड़ना चाहता है। वह समझता है कि रम्यता की यह अनुभूति मेरा ही अंश है जो मुझसे विलग हो गया था। अतः जो कलाकृति या जो रचनाएँ उत्कंठा या व्यग्रता पैदा नहीं कर सकती वे रमणीय की श्रेणी में नहीं आ सकतीं, सुंदर नहीं कही जा सकतीं। कलाकृतियों का सौंदर्य, रचना की रमणीयता कुछ सीधी सपाट नहीं होती। द्वितीया का वक्र चंद्र अपनी वक्रता के कारण ही सुंदर माना जाता है। अतः सौंदर्य में वक्रता होती है, आरोह–अवरोह होता है, नतोन्नतता होती है। यह वक्रता, यही नतोन्नतता हमारी उत्कंठा को जगाए रखती हैं, एक पर्युत्सुकभाव बनाए रखती है, क्योंकि रमणीयता अपने इसी वक्र स्वभाव के कारण पूरी तरह हमारी पकड़ में नहीं आती और हम उसकी नव्यता का अनुसंधान करते हुए पर्युत्सुक बने रहते हैं। कामायनीकार ने इसीलिए सौंदर्य को अभिलाषा के अनंत सपनों के अनुसंधान का अधिष्ठान कहा है–

उज्ज्वल वरदान चेतना का सौंदर्य जिसे सब कहते हैं
जिसमें अनंत अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं।।[22]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं–

कुछ रूप रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अंतःसत्ता की यही तदाकार परिणति सौंदर्य की अनुभूति है।[23]

रसानुभूति में भी विभावादि हमारी सत्ता पर अधिकार कर हमें वेद्यांतरसंपर्कशून्य बना देते हैं। हमारी अंतःसत्ता की तदाकार परिणति हो जाती है। यह अनुभूति लोकानुभूक्ति से भिन्न है किंतु अलौकिक नहीं है। इसे लोकविलक्षण कहा जा सकता हैं। यद्यपि रसानुभूति की यह सारी प्रक्रिया इंद्रियों के माध्यम से संपन्न होती है, पर यह ऐंद्रिय बोध अंततः अतींद्रिय अनुभूति बन जाती है। सौंदर्यानुभूति भी ऐसी ही अतींद्रिय अनुभूति है। मूर्ति, चित्र, संगीत काव्य, नाट्यादि इसकी अभिव्यक्ति के स्थूल माध्यम हैं। रसानुभूति और सौंदर्यानुभूति दोनों का परिणाम आनंद है। विषय पक्ष में जो रस है वहीं विषयी के पक्ष में आनंद है। विषय पक्ष में जो सौंदर्य है वही विषयी

22. कामायनी – लज्जा सर्ग
23. चिंतामणि – कविता क्या है? निबंध

के पक्ष में आनंद है। आनंदरूपता सौंदर्य का अनिवार्य लक्षण है। जार्ज संटायना कहते हैं कि जो किसी को आनंद न दे सके वह सुंदर नहीं है। रसानुभूति का भी अनिवार्य लक्षण आनंदरूपता है–

रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनंदी भवति'।

रस की दूसरी विशेषता '*लोकोत्तरचमत्कारप्राण*' है। इस लोकोत्तरचमत्कार का सन्निवेश सौंदर्यानुभूति में भी है। सौंदर्य वस्तु का धर्म है और चमत्कार उसका आस्वाद, अतः चेतना का धर्म है। आनंदवर्धन ने भी काव्यगत सौंदर्य को चमत्काररूप माना है। उनका अभिमत है कि सहृदय को जिस वस्तु में नवीन स्फुरण मालूम पड़े, आस्वादमय चमत्कार मालूम पड़े वही वस्तु रम्य कही जाती है –

यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किंचित्
स्फुरितमिदमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते।।
स्फुरणेयं काचिदिति सहृदयानां चमत्कृतिरुत्पद्यते।[24]

जहाँ कहीं भी चमत्कार का भाव उत्पन्न होता है तो यह समझना चाहिए कि यह चमत्कार सौंदर्य के प्रति है। यह सौंदर्य नवीन स्फुरण का अनुभव कराता है जिसकी प्रतीति चमत्काररूपा होती है।

चमत् शब्द विस्मय या आश्चर्य का बोधक है और 'कार' चेतना की उक्त स्थिति के कर्तृत्व का या प्रक्रिया का। इस प्रकार चमत्कार शब्द में, किसी विषय के प्रति, जो सहसा ही हमारी चेतना को अभिभूत या आक्रांत कर लेता है, विस्मय या आश्चर्य का भाव सदैव विद्यमान होता है। परंपरागत मत के अनुसार चम् की व्युत्पत्ति 'चम्' से स्वीकार की गई है जिसका अर्थ भोग या आस्वादजन्य आनंद है। अतः 'चमत्' का अर्थ हुआ, किसी विषय का, विशेषकर सौंदर्यात्मक या रहस्यात्मक, आस्वादजन्य आनंद में तन्मय होना। अभिनवगुप्त ने उक्त दोनों व्युत्पत्तियों को स्वीकृति दी है। उनकी व्याख्या के अनुसार चमत्कार पर निरपेक्ष आत्मविश्रांति की स्थिति है। चमत् विशिष्ट कार्य का द्योतक है। इस शब्द का अर्थ है – निर्विघ्न आस्वाद।[25]

चमत्कार रोमांचकारी आनंद में डूब जाने की वीतविघ्नप्रतीति है। अभिनवगुप्त के इस अभिमत को उनके एक व्याख्याकार – रान्येरो नोली इन शब्दों में व्यक्त करते हैं–

Chamatkar may be likewise defined as immersion in an enjoyment which can never satiate and is thus uninterrupted. The word Chamatkar indeed properly means the action being done by a tasting subject, in other words, by the enjoying subject, he who is immersed in the vibration (स्पंदन) of a marvellous enjoyment. (अद्भुताभोग)[26]

24. ध्वन्यालोक – 4/15
25. रससिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र (निर्मला जैन) . पृ. 69
26. The aesthetic experience according to Abhinavgupta (Raniero Gnoli) p- 59-60

सर्वप्रथम अभिनवगुप्त ने रस को चमत्काररूप कहा है। यह चमत्कार आत्मविश्रांति की अवस्था है जो निर्विघ्न रसास्वाद की दशा में ही हो सकती है। चमत्कार का सर्वथा अभाव जड़ता है और सहृदयता चमत्कार के आवेश की अधिकता है अतः चमत्कार के आवेश का साक्षात्कर्त्ता वही हो सकता है जिसका हृदय ब्रह्मानंद या काव्यानंद के भोग का अभ्यासी है, जिसकी प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी है, सतत् काव्यानुशीलन से जिसका मनोमुकुर विशदीभूत है।

– *सर्वतो ह्यचमत्कारे जडतैव अधिकचमत्कारावेश एव वीर्यक्षोभात्मा सहृदयता उच्यते, यस्यैव एतद् भोगसंगाभ्यासनिवेशितानंतवृंहकवीर्यवृंहितं हृदयं तस्यैव सातिशय चमत्क्रिया।*[27]

इस प्रकार चमत्कार चेतना की वीतविघ्न अवस्था है जिसमें आस्वादयिता अपने व्यक्तित्व का पूर्णतः परित्याग कर देता है। इसीलिए विश्वनाथ ने चमत्कार को चित्त के विस्तार की संज्ञा दी है –

चमत्कारश्चित्तविस्ताररूपो विस्मयापरपर्यायः।[28]

निष्कर्षतः चमत्कार सौंदर्यास्वाद का ही पर्याय है। रसानुभूति के संदर्भ में जब–जब विभावादि का संयोग होता है तब सहृदय के चित्त में आस्वादरूप चमत्कार निष्पन्न होता है।

आनंदोपलब्धि को ही काव्य का प्रधान प्रयोजन स्वीकार किया गया है –

सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादनसमुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानुंदम्।[29]

रससिद्धांत इसी आनंदबोध का अनुगामी है। पाश्चात्य चिंतनधारा मन और आत्मा के बीच विभाजन नहीं कर सकी है अतः मानव मन उसकी दृष्टि में सुख–दुःख से संबंध है, जबकि आत्मा निसर्गतः विशुद्ध चेतना और आनंद का अधिष्ठान है। मन का संबंध सुख से है जबकि आत्मा का संबंध आनंद से है। सुख दुःखापेक्षी है। दोनों की सत्ता एक दूसरे पर निर्भर है। परंतु आनंद चित्त की निर्द्वंद्व अवस्था है। पाश्चात्य और भारतीय दृष्टि की इसी भिन्नता के कारण पाश्चात्य जगत् का सौंदर्यबोध भारतीय रसबोध से विलग मालूम पड़ता है क्योंकि हम असीम अनंत, आत्मिक सौंदर्य के अन्वेषक हैं। पाश्चात्य जगत् जिस सौंदर्य को सिर्फ आँख से देखता है उसे भारतीय विचारधारा मन की आँख से देखती है। चक्षुरिंद्रिय के साथ मन का संयोग हमारी दृष्टि को लोकविलक्षण बना देता है और तभी उस असीम का, उस दिव्य सौंदर्य का

27. परात्रीशिका – पृ 49
28. साहित्यदर्पण – अध्याय 3
29. काव्यप्रकाश – 1/2 की वृत्ति

साक्षात्कार होता है। यही वास्तविक सौंदर्य है, वास्तविक कला है जो अनुभविता को परमानंद में लीन कर देती है –

विश्रान्तिर्यस्याः संभोगे सा कला न कला मता।

लीयते परमानंदे ययात्मा सा परा कला।।

शकुंतला की सौंदर्य रचना की कालिदासीय परिकल्पना ऐसी ही है। विधाता ने मन की आँख से शकुंतला का चित्र बनाया। उसमें सौंदर्य भरा। केवल हाथों से शकुंतला की रचना नहीं हो सकती थी। उसमें अप्रतिम सौंदर्य का सन्निवेश, मन की आँख से, उस विशिष्ट अलौकिक दृष्टि से ही हो सकता था –

चित्रे निवेश्य परिकल्पित सत्त्वयोगा –

रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।

स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे

धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।[30]

भारतीय सौंदर्यशास्त्र का क्षेत्र पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र की तुलना में सीमित रहा क्योंकि काव्येतर कलाएँ यथा चित्रकला, मूर्तिकला आदि भारतीय काव्यशास्त्र का विषय नहीं रहे। इसका कारण शायद यही है कि इन स्थूल कलाओं के प्रति भारतीय आचार्य उतने आग्रही नहीं रहे जितने उक्तिप्रधान, सूक्ष्म, अभिव्यंजनाप्रधान काव्यकला के प्रति। यद्यपि रमणीयता या सौंदर्य के अंवेषण में पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र का क्षेत्र विस्तृत रहा है किंतु भारतीय चिंतनधारा की तरह उसमें गहराई नहीं है, फिर भी पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्रीय चिंतना में प्रयुक्त Beauty, Excellence, और Sublime आदि सौंदर्य के भावक शब्द भारतीय रसचिंतन परंपरा में व्याख्यात सौंदर्य, चारुता, चमत्कार और विच्छित्ति आदि से अद्‌भुत साम्य रखते हैं।

❑❑❑

संपर्क:

शैलेश कुमार मिश्र– 11 शिवपुरी, काँके रोड, राँची, झारखंड–834008
ईमेल :– shail.vbu@gmail.com, मो.- 7541933637

30. अभिज्ञानशाकुंतल– 2/10

छत्तीसगढ़ की लोक–गाथाएँ और नारी

आरती पाठक*

प्राचीन काल में दक्षिण कोसल के नाम से विश्रुत वर्तमान छत्तीसगढ़ 1 नवंबर 2000 में पृथक् राज्य के रूप में अस्तित्वशील हुआ। यह पूर्व में एक जनपद के रूप में बहुभाषी एवं बहु संस्कृतियों की संगम स्थली रहा है, जिसकी लोक संस्कृति सामासिक है। इसलिए पुरातत्वविदों ने आर्य–अनार्य आदि जाति–धर्मों की विविधता को दृष्टिगत रखते हुए इस प्रदेश को मनुष्य जाति की सभ्यता–संस्कृति की जन्म स्थली कहा है। इन अवधारणाओं के अभिधान से यह स्पष्ट है कि यहाँ की लोक कला, लोक साहित्य, लोक संस्कृति पुरातन और समृद्ध है। छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य को शिष्ट साहित्य की तरह कालखंडों में विभाजित करने की बजाय पारंपरिक कथ्य एवं कथन शैली की दृष्टि से परखना समीचीन प्रतीत होता है। इस दृष्टि से छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का वर्गीकरण करते हुए विद्वानों ने प्रायः लोकगीत, लोकगाथा, लोक कथा और लोक सुभाषित या प्रकीर्ण रूप में स्वीकार किया है। अस्तु, प्रतिपाद्य विषय 'लोक गाथाएँ एवं नारी' के परिप्रेक्ष्य में लोक गाथाओं का अवलोकन लक्षित है।

छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं में प्रायः लोक गीतों के गेय तत्वों का समावेश है। छत्तीसगढ़ के जन–जीवन में प्रचलित पर्व, उत्सव, संस्कार, ऋतु–चक्र आदि से समन्वित सर्वाधिक प्राचीन लोक गीतों में– संस्कार गीत, ऋतु गीत, पर्व गीत, जाति गीत, बाल गीत, अन्य गीतों की बहुलता है। इनको मुख्यतः नारी गीत, पुरुष गीत और बालक गीत के रूप में विभाजित किया गया है। नारी गीत के अंतर्गत सुवा, भोजली, ददरिया, लोरी आदि तथा पुरुष गीत के अंतर्गत डंडा गीत, बांस गीत आदि परिगणित हैं। उक्त लोक गीतों के समानांतर छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं का भंडार भी अत्यंत समृद्ध है। संदर्भगत इनके स्वरूप, प्रवृत्ति, परंपरा, वर्ण्य विषय, गेय शैली तथा इनमें वर्णित नारी पात्रों की भूमिका का सिंहावलोकन प्रासंगिक है।

* सहायक प्राध्यापक हिंदी, कालिंदी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

लोककंठ में अनुगूंजित छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं की परंपरा पुरातन है। आचार्य नरेंद्रदेव वर्मा ने इनका निर्माण काल संवत् 1000 से 1500 के मध्य माना है। ये लोकगाथाएँ मुख्यतः प्रेम प्रधान, धार्मिक–पौराणिक तथा वीर गाथाओं से संबंधित हैं।

इनमें कुछ गाथाएँ ऐतिहासिक पुरुष पात्रों के शौर्य और रोमांचकारी घटनाओं के वर्णन से संबंधित हैं। उनका व्यक्तित्व भी उन्नत है। वीरता को स्त्रियों का भी प्रधान गुण माना गया है। इनमें घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन, काल्पनिकता, दैवीय चमत्कार, अलौकिकता एवं जिज्ञासामूलक भावों का सम्मिश्रण है। इनमें मध्य युग का परिवेश प्रतिबिंबित है तथा तत्कालीन जन–जीवन और लोक परंपराओं की रोचक अभिव्यक्ति हुई है। ये लोक गाथाएँ किसी न किसी कहानी को लेकर चलती हैं। मूलतः ये कहानियाँ ही हैं, पर गेय हैं। नारी –कथा–गीतों में 'अहिमन रानी', 'केवला रानी' तथा 'रेवा रानी' गीत प्रमुख प्रेम प्रधान गाथाएँ हैं। 'फूलबासन' और 'पण्डवानी', धार्मिक–पौराणिक गाथाएँ हैं। 'फूलकुँवर की गाथा ', 'देवी की गाथा ', 'ढोला मारू ', 'लोरिक चंदैनी ' वीर गाथाएँ हैं। इन गीतों में नारी की वीरता या पतिव्रत्य धर्म तथा असत्य की पराजय का उल्लेख है। सत्य का पक्ष देवी–देवताओं द्वारा लिया गया है; वे न्याय की सहायता करते हैं और विजय दिलाते हैं। इनमें करुण रस का प्राधान्य है। जिनकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार हैः–

अहिमन रानी की गाथा :–

वीरसिंह की पत्नी अहिमन रानी, इस गाथा की नायिका है। वह सरोवर में स्नान करने की इच्छा व्यक्त करती है। सास मना करती है पर वह नहीं मानती और सखियों के साथ सरोवर नहाने जाती है। वहाँ एक व्यापारी से उसकी भेंट हो जाती है। वह घड़ा चुरा लेता है। वह अहिमन रानी को पासा खेलने के लिए आमंत्रित करता है। रानी के सब गहने वह जीत लेता है। रानी कहती है कि अब कैसे मैं आभूषणहीन होकर राजा को मुँह दिखाऊँगी। रानी कहती है कि मेरा मायका दुर्ग राज में है। इतना सुनकर वह व्यापारी रानी को नये वस्त्र और आभूषण देता है और सोने का घड़ा देता है। रानी लौटती है। राजा वीरसिंह उसके वस्त्राभूषण देखकर शंकित हो जाता है। राजा की इच्छा से अहिमन अपने मायके के लिए प्रस्थान करती है। राज्य के बाहर होते ही राजा रानी के बाल पकड़कर घोड़े की पूंछ से बांध देता है और घोड़े को जोर से दौड़ाकर भगा देता है। जिससे अहिमन रानी की मृत्यु हो जाती है। उसका व्यापारी भाई आता है। मृत बहन को देखकर शोकमग्न होता है। इसी समय महादेव और पार्वती के प्रताप से अहिमन पुनर्जीवित होकर ससुराल जाती है। वीरसिंह सो रहे थे। सास के काम में वह हाथ बटाती है। सास अहिमन को नहीं पहचान पाती। वीरसिंह भी व्यापारी के पास उसकी बहन ब्याहने का प्रस्ताव रखता है। व्यापारी वीरसिंह से कहता है कि तुम अपनी ही पत्नी को नहीं पहचान पा रहे हो। पुनः अहिमन अपने पति को प्राप्त करती है।

इस कथा में पति–पत्नी के प्रेम, संदेह, हत्या, देवी द्वारा पुनर्जीवित करने का वर्णन है। इसमें व्यापारी जाति का भी उल्लेख है। इसमें भारतीय नारी के परंपरागत रूप का चित्रण है। विशेष रूप से उसकी निष्ठा, कर्तव्य परायणता तथा क्षमाशीलता की भावना प्रधान है।

रेवा रानी की गाथा :–

रेवा रानी इस गाथा की नायिका है। वह राजा उग्रसेन के सम्मुख तालाब नहाने की इच्छा व्यक्त करती है। रानी की इच्छा पूर्ण होती है। सात सखियाँ आगे और सात सखियाँ पीछे हो जाती हैं। रानी महल से बाहर निकलती है। तीन घंटे बाद तालाब के पार पहुँचती है। पास ही फुलवारी देखकर रानी रुक जाती है। सखियाँ पीछे रह जाती है। उचित अवसर देखकर दुमदुमी निशाचर उग्रसेन का रूप धरकर रानी का रास्ता रोक लेता है। रानी से अपनी कामेक्षा व्यक्त करता है। उग्रसेन को फटकारते हुए रानी महल लौट जाने के लिए कहती है। निशाचर क्रुद्ध होकर पास के पेड़ों को उखाड़ फेंकता है। पशु जीवन–दान की याचना करते हैं। अचानक धुंधलका छा जाता है। वह अपनी इच्छा तृप्त कर लेता है। अब रानी क्रोध के आवेश में श्राप देना चाहती है। दानव उसे शांत करते हुए कहता है कि तेरा पुत्र अपने बल से सारी दुनिया को कंपा देगा। यह कहता हुआ वह लुप्त हो जाता है। रानी का मन मलिन हो जाता है। खोजते हुए सखियाँ आ पहुँचती हैं। रानी अपनी व्यथा स्पष्ट करते हुए बहाना बनाती है कि बंदरों ने उसकी यह दुर्गति की है। सखियाँ लौटने का आग्रह करती हैं। रानी महल पहुँचती है। छः माह के बाद रानी के गर्भवती होने का समाचार नगर में फैल जाता है। दस माह लगते रानी केशराज को जन्म देती है।

प्रस्तुत कथा में नारी की परवशता और असहायता का चित्रण किया गया है। पुरुष की दानवी शक्ति के समक्ष नारी का देवी रूप असमर्थ हो जाता है। परंपरा से नारी पुरुष की कुचेष्टा का शिकार बनती रही है। इसके दुष्परिणामों को भी वह हृदय पर पत्थर रखकर झेलती रही है। इस कथा में पुरुष के समक्ष नारी के अपकर्ष का चित्रण है।

केवला रानी की गाथा :–

केवला रानी हरदी शहर के राजा मदनसिंह की पत्नी थी। तोते से वह अपने पति के पास विदा कराने का संदेश भेजती है। निमंत्रण पाते ही मदनसिंह प्रस्थान करते हैं। हरदी शहर में पहुँचकर वे ससुराल में अन्न–जल तक ग्रहण नहीं करते और खड़े–खड़े गौना कराने का आग्रह करते हैं।

अन्य परिजन को आगे चलने का आदेश देकर राजा मदनसिंह केवला रानी को अपने घोड़े की पूंछ से बांध देते हैं और घोड़ा कुदाते हुए आगे बढ़ते हैं। केवला रानी रोती–बिलखती है। अंत में सोलहो सिगार किये रानी स्वर्ग सिधारती है। उधर से नारद मुनि पधारते हैं। पार्वती भी आ पहुँचती हैं। वे नारद मुनि से केवला को पुनर्जीवित

करने का आग्रह करती है। केवला जी उठती है। अब वह ससुराल के लिए प्रस्थान करती है। राजा मदनसिंह पासा खेलने बैठे रहते हैं। वह भी खेलने लगती है और राजा को हरा देती है। राजा केवला के पैर पड़ने लगता है। रानी अपने पुनर्जीवित होने की कथा राजा से कहती है। राजा को पश्चाताप होता है और वे सुखपूर्वक रहने लगते हैं। अन्य प्रेमवार्ताओं की तरह इसमें भी प्रेमांकुर का पल्लवित होना, विरह और पुनर्मिलन का रोचक वर्णन मिलता है।

फुलबासन की गाथा :–

माता जानकी, लक्ष्मण जती जोगी से अपने स्वप्न की चर्चा करते हुए कहती हैं कि उन्होंने बिना जोती हुई जमीन के पसहर चावल, हरी मूंग की दाल और बिना सींक की पत्तल में भोजन किया। 'फुलबासन' का फूल लाने के संबंध में भी वे लक्ष्मण को आदेश देती हैं। लक्ष्मण वनमार्ग की ओर गमन करते हैं। आठ दिन और नौ रात चलने के उपरांत वे बारह पहाड़ और सोलह सेंध में प्रवेश करते हैं। वहाँ एक जोगी से भेंट होती है। दूर–दूर तक उसकी जटाएँ फैली हुई थीं। लक्ष्मण उसमें फँस जाते हैं। लक्ष्मण छह दिनों तक जोगी की सेवा करते हैं। वे प्रसन्न होकर वरदान मांगने के लिए कहते हैं। लक्ष्मण 'फुलबासन' मांगते हैं। जोगी कहते हैं कि भांवरगढ़ के राजा शाल की सात बेटियाँ हैं। वे सरोवर में स्नान करने आती हैं। छह बहिने तो किनारे ही स्नान कर लेती हैं पर सातवीं फुलवासन आधी रात को सरोवर जाकर फूल बन जाती है। वहाँ जाकर फुलबासन का वस्त्र ले आओ। लक्ष्मण जाते हैं और फुलबासन का वस्त्र ले जाते हैं। लक्ष्मण फुलबासन को लेकर चले जाते हैं। मार्ग में अपना परिचय देते हैं और वे आग्रह करते हैं कि जैसे सब लोग आए तुम सरोवर जाकर फूल बन जाना। फुलबासन सब लोगों के देखते–देखते ही फूल बन जाती है। यह देखकर लोग आश्चर्यचकित रह जाते हैं। उपर्युक्त कथा रामायणकालीन है। लोक मानस में यह बहुचर्चित है।

इस गाथा में फूलकुंवर के अद्‌भुत पराक्रम, युद्‌ध–कौशल का वर्णन है। कथा का उद्‌देश्य नारियों में कर्तव्य भावना का उद्रेक करना है। इस पौराणिक कथानक में काल्पनिकता का अद्‌भुत समन्वय है।

पंडवानी गाथा :–

यह गाथा महाभारत कालीन ऐतिहासिक पात्रों और चरित्रों से संबंधित है। इसका कथानक छत्तीसगढ़ी अन्य लोक गाथाओं में सबसे वृहत् है। वीररस प्रधान इस 'पंडवानी गाथा' की नायिका इतिहास प्रसिद्‌ध पात्र पाँच पांडवों की पत्नी द्रौपदी है।

जो एक दिन तीजा–पोला (छत्तीसगढ़ में प्रचलित त्यौहार) के अवसर पर मायका जाने की बात करती है। तब द्रौपदी को पांच पांडवों में से अर्जुन उसके मायका पहुँचाने के लिए साथ में ले जाते हैं। तब रास्ते में कौरवों का साम्राज्य भूमि गढ़हंसुला में अर्जुन को कौरवों द्वारा सपत्नीक बंदी बना लिया जाता है। कथा में वर्णित है कि द्रौपदी जब

कृष्ण का स्मरण करती है तो वे इस घटनी की जानकारी पांडवों को देते हैं। यह सुनकर अर्जुन के बारे पांडव सारा वृत्तांत पता करते है। कौरवों द्वारा क़ैद किये गए अर्जुन पाताल में होते हैं। उन्हें मुक्त करने के लिए पांडव, काली नागिन से निवेदन करते हैं। तब नागिन द्रवीभूत हो जाती है। उसके कहने पर बभ्रुवाहन किसी तरह सात समुद्र और सात धार को पार कर किसी तरह सुरही गाय का गोबर और कच्चा दूध लाने में सफल होता है। तब अर्जुन को क़ैद से मुक्ति मिलती है और वह फिर से अपनी पत्नी को लेकर सरगरोहिणी की और चल पड़ते हैं। इस बीच रास्ते में राजा तुरका के राज्य में पहुँचने पर उससे युद्ध होता है। जिसमें राजा तुरका अर्जुन से पराजित होता है। बहुत कठिनाई से अर्जुन चार दिन बाद अपनी पत्नी द्रौपदी के साथ उसका मायका सरगरोहिणी पहुँचते हैं। जहाँ प्रवेश करते ही द्रौपदी अपने पिता को पनिहारिन के द्वारा इसकी सूचना भेजती है। तब हर्षोल्लास से उनका स्वागत किया जाता है। इस तरह द्रौपदी मायका पहुँचती है।

इस कथा में महाभारत के पात्र ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं पर अनेक घटनाएँ इतिहास में वर्णित नहीं हैं। वास्तव में ये काल्पनिक हैं। संभवतः इनमें प्रभावोत्पादकता भी दृष्टि से ही पात्रों को ऐतिहासिक रूप दे दिया गया है। अन्य गाथाओं की तरह कार्य सिद्धि के पूर्व विभिन्न प्रकार की बाधाओं और उनसे मुक्ति का वर्णन उसमें भी मिलता है। प्रथम दृष्टि में कार्य असंभव प्रतीत होते हैं पर गाथाकार कोई–न–कोई अद्भुत मार्ग निकालकर सुनने वालों को आश्वस्त कर देता है।

पराक्रम और चमत्कार का अद्भुत समन्वय इस लोक–गाथा में है। अर्जुन तथा द्रोपदी के परस्पर वार्तालाप में पति–पत्नी के मधुर संबंधों की झलक भी मिलती है। नारी की आकांक्षा और मायका के प्रति आकर्षण का भाव इस गाथा में वर्णित है।

देवी की गाथा :–

देवी गाथाओं में ऐतिहासिक तथा लोक तत्वों का विचित्र सम्मिश्रण रहता है। एक देवी गाथा में अकबर अपने गढ़ (दिल्ली) में प्रकाश पुंज देखते हैं और बीरबल से कहते हैं इस प्रकाश का पता लगाओ। बीरबल नेगी को भेजते हैं। नेगी वापस आकर सूचना देता है कि वह प्रकाश देवी के स्थान पर हो रहा है। अकबर बीरबल को भेजते हैं कि देवी को दरबार में हाजिर करो। बीरबल देवी के पास पहुँचते हैं और अकबर का संदेश सुनाते हैं। देवी कुंपित हो उठती है। बीरबल कांपने लगते हैं। उस पर राजभवन में अकबर पर देवी का प्रकोप टूट पड़ता है। अकबर पूजा की सामग्री तैयार कर देवी के स्थान पर पहुँचते हैं और देवी को प्रसन्न कर कृपा का पात्र बनते हैं।

कल्पना आधारित इस गाथा में मध्यकालीन मुस्लिम साम्राज्य के वर्चस्व और अकबर की धार्मिक भावनाओं का वर्णन है। इसमें हिंदू–मुस्लिम सौहार्द का संदेश अंतर्निहित है। जो आज के समाज के लिए प्रासंगिक भी है। शिष्ट साहित्य या लोक

साहित्य की कोई भी विधा हो, उसमें सामाजिक हित की भावना निहित रहती है। इस तथ्य की पुष्टि उक्त देवी गाथा से होती है।

लोरिक चंदैनी :–

छत्तीसगढ़ी लोक–गाथाओं के अंतर्गत लोरिक चंदैनी गाथा भी लोकप्रिय है। यहाँ इस लोक गाथा को लोरिक चंदैनी अथवा चनैनी नाम से छत्तीसगढ़ी लोक–साहित्य में अध्ययन किया जाता है।

उक्त लोक–गाथा के छत्तीसगढ़ी रूप को फादर वेरियर एल्विन ने अंग्रेजी में अनुवाद कर अपने ग्रंथ में 'फोक सांग्स आफ छत्तीसगढ़ी' में उद्धृत किया है'। लोक गाथा की संक्षिप्त कथा इस प्रकार हैः चनैनी अपने पिता के घर से अपने पति वीर बावन के घर जा रही है। वीर बावन गउरा का निवासी है। मार्ग में महुआ चमार ने चनैनी को अपनी स्त्री बनाना चाहा लोरिक वहाँ सहायता के लिए आ गया। और भटुआ चमार को मार भगाया। लोरिक अपनी स्त्री मंजरी के साथ गउरा में ही रहता है। चनैनी भटुआ के साथ लड़ते हुए लोरिक की वीरता देखकर मुग्ध होती है। लोरिक भी चनैनी की सुंदरता को देखकर मोहित होता है। दूसरे दिन लोरिक रस्सी लेकर चनैनी के घर के पीछे पहुँचता है वहाँ पहुँचने पर चनैनी पहले तो उसे चिढ़ाती है पर बाद में उसे ऊपर चढ़ा लेती है। दोनों गउरा से भाग चलने का निश्चय करते हैं। अंत में एक दिन लोरिक तैयार हो जाता है और चनैनी को लेकर गढ़ हरदी के लिए चल देता है। मार्ग में उसका भाई संवरू रोकता है। परंतु वह नहीं रुकता। वीर बावन उनका पीछा करता है परंतु वह लोरिक को नहीं मार पाता। मार्ग में लोरिक को सांप कांट लेता है परंतु महादेव व पार्वती की कृपा से वह पुनः जीवित हो उठता है। आगे चलकर करिघा के राजा से युद्ध होता है। लोरिक, उस राजा को हरा देता है। करिघा का राजा उसे मारने के लिए षड्यंत्र रचता है और उसे पाटनगढ़ के राजा के यहाँ भेजता है। लोरिक करिघा की चाल समझ जाता है। वह हरदीगढ़ चला जाता है। वहाँ आनंद से रहने लगता है। इसी बीच गउरा से समाचार आता है कि उसकी मंजरिया भीख मांग रही है। उसके भाई–बंधु सभी मर गए हैं। गायें इत्यादि भाग गई हैं और घर ध्वंस हो गया है। लोरिक चनैनी के साथ पुनः लौटता है। लोरिक अपनी गायों तथा जानवरों की खोज में चला जाता है। मंजरिया और चनैनी में मारपीट होती है। मंजरिया विजयी होती है वह बड़े अभिमान से पानी लेकर पति का स्वागत करने को आती है, पर बर्तन का पानी भूल से गंदला निकलता है। लोरिक यह देखकर अत्यंत दुखी होता है और घर छोड़कर कहीं चला जाता है और फिर कभी नहीं लौटता।

श्री हीरालाल काव्योपाध्याय द्वारा प्रस्तुत लोरिक का एक अन्य रूप भी है। वीर बावन एक महाबली व्यक्ति था जो कि कुंभकर्ण के समान छः महीना सोता था और छः महीने जागता था। उसकी स्त्री का नाम चंदा था जो कि अत्यंत रूपवती थी। एक बार वीर बावन गंभीर निद्रा में निमग्न था। चंदा ने अपने गाँव में लोरी नामक धोबी को

कपड़ा धोते देखा और उस पर मोहित हो गई। उसने खोरी को अपने मन में बुलाया। कोठे पर जाने के लिए चंदा ने नीचे रस्सी फेंकी। कुछ देर तक उसने लोरी को चिढ़ाया परंतु अंत में वह चढ़ गया। चंदा पुनः महल में छिप गई परंतु मोरी ने उसे दूनिया लोरी और चंदा ने रात्रि एक ही साथ व्यतीत की। लोरी प्रातः काल अपनी पगड़ी भूल गया और चंदा की साड़ी को लोरी की धोबिन पहचान गई। लोरी ने उसे सब कथा बतला दी। घोबिन उन दोनों प्रेमियों की द्रुती बन गई।

चंदा और लोरी दूसरे देश भागने की तैयारी करने लगे। पहले लोरी तैयार नहीं होता। उसने वीर बावन को जगाने का प्रयत्न किया परंतु वह नहीं जगा। अंत में लोरी को चंदा के साथ भागना ही पड़ा। चलते–चलते ये एक जंगल में पहुँचे जहाँ एक किला था और आवश्यकता की सारी सामग्रियां भी थीं। वे वहीं आनंद से रहने लगे। इधर छः महीने के बाद वीर बावन की निद्रा टूटी। उसने लोरी का पीछा किया। लोरी से उसका युद्ध हुआ और वह हार गया। निराश होकर वह लौट आया और अकेले ही रहने लगा।

लोरिक कथा में प्रायः वे सभी तत्व पाए जाते है जो अन्य वीरगाथाओं में चित्रित हैं।

उक्त लोक गाथाओं के अलावा नारी अस्मिता और उदात्त चरित्र से संबंधित चंदा गुवालिन, धोबिन की गाथा आदि प्रचलित हैं। नारी प्रधान लोक गाथाओं के समानांतर पुरुष प्रधान लोकगाथाएँ भी लोक कंठ में जनमानस को अनुरंजित कर रही हैं। वर्तमान विज्ञान और तकनीकी युग के तीव्र परिवर्तनशील दौर में छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति की धरोहर के रूप में लोक गाथाओं का लिपिबद्ध संरक्षण अत्यंत आवश्यकता।

छत्तीसगढ़ी लोक कथाओं के संग्रह का सर्वप्रथम प्रयास करने का श्रेय यूरोपीय विद्वानों को है। सन् 1644 ई. में बेरियर एल्विन की पुस्तक 'फोक टेल्स आफ महाकोसल' प्रकाशित हुई। इस दिशा में किए गए नवीनतम प्रयासों में यह सर्वोत्तम है। अपनी पुस्तक की भूमिका में वैरियर एल्विन ने जहाँ अनेक प्रकाशनों के अन्य वैज्ञानिक दोष गिनाए हैं वहाँ लोककथाओं मे मनमानी कांट–छांट करने पर भी आपत्ति की है।

सहायक ग्रंथ सूची–

1 गुप्त, प्यारेलाल प्राचीन छत्तीसगढ़, रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर, वर्ष 1973
12 1 जैन, बालचंदः मानव शास्त्रीय उप–विभाग प्रदर्शिका, महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर, 1988, पृ. 5 से 20.

2. लाल, मदन छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन, श्री प्रकाशन, रायपुर 1990, पृ. 14. 4 की संस्कृति का अंक 10–11 (2000–01) संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, पृ. 123–24.

3. शुक्ल, हीरालाल आदिवासी सामंतवाद, नई दिल्ली, 1987, पृ. 18.

4. शुक्ल, हीरालालः प्राचीन बस्तर दण्डकारण्य का सांस्कृतिक इतिहास, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, 1978, पृ. 54.

5. खरे, आशाः छत्तीसगढ़ लोक–गाथा, पण्डवानी, संगीतिक अध्ययन, कला सौरभ, अंक 10, वर्ष–मार्च 2002, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, पृ., 59–68. 8 मोहम्मद, शरीफः लोक–नृत्य एवं बदलता परिवेश कला–वैभव, संयुक्तांक, वर्ष 2000–01, भारतीय कला का इतिहास एवं संस्कृति विभाग, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, पृ. 110–115.

6. निरगुणे बसंतः छत्तीसगढ़ की प्रमुख जनजातियाँ महावीर पब्लिशर्स, इंदौर, 2004.

7. पाण्डेय, श्याम कुमारः छत्तीसगढ़ का इतिहास तथा वास्तु शिल्प म. प्र हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, वर्ष 2002, पृ. 39

8. प्रजापति, महेशचंद्रराय छत्तीसगढ़ की शिल्पकला में मृतक स्मृति स्तम्भों का सांस्कृतिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध–प्रबंध विवि. खैरागढ़, 2007, पृ. 87.

9. महावर, निरंजनः छत्तीसगढ़ के मृणमूर्ति शिल्प, चौमासा, म. प्र. आदिवासी लोककला परिषद्, भोपाल, पृ. 97.

10. सहसी, वासुदेव बस्तर का आदिमजन व घोटुल परंपरा, कला वैभव अंक 17, वर्ष 2007–08 इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़, पू. 239–255. 14 पंजरेकर, प्रवीण स्तर के नृपूर्ति शिल्प की तकनीक, कला वैभव, अंक 10–11 (वर्ष 2000–01), इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, पृ., 125–27.

11.वाजपेयी, कृष्णदत्तः छत्तीसगढ़ का पुरातत्त्व लोचन प्रसाद पाण्डेय का अवदान, कला–वैभव, संयुक्तांक 13–14, वर्ष 2003–04, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, पृ. 10–17.

❑❑❑

संपर्कः

आरती पाठक– कालिंदी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ईमेलः artipathak@hotmail.com, मो. 9584812608

रेखाचित्र

भैयामाय

प्रतिभा राजहंस*

अपनी बड़ी माँ–––ताई को हम भैयामाय कहते थे। अर्थात् हमारे भैया लोगों की माँ। बचपन की उम्र में हमें माँ से ज्यादा भैयामाय अच्छी लगती थीं। क्योंकि, वे हमें हमारी माँ से अधिक प्यार करती थीं। वे हमारी गलती होने पर भी हमें माँ की डाँट और मार से बचा लेती थीं। बचा ही नहीं लेती थीं, बल्कि उल्टे माँ को ही डाँट देती थीं और झपटकर हमें अपने आँचल में छिपा अपने ओसारे पर अपने संरक्षण में ले जाकर रखती थीं। हम तीनों भाई–बहन डेढ़–दो साल के छोटे–बड़े थे, करीब एक–से उम्र के। सो हमें संभालने में परेशान हो जाती थी, अकेली माँ।

हमारा जुड़ाव माँ से अधिक भैयामाय से ही था। इसके कई कारण थे। एक तो माँ को घर के कामों को निबटाते हुए हमें पढ़ाना भी पड़ता था और पढ़ाई में हमारी रुचि जरा कम ही हुआ करती थी। संयुक्त परिवार के बड़े–से घर–आँगन में हमेशा कोई–न–कोई रोचक नजारा होता रहता था, जो पढ़ाई से हमारा ध्यान बरबस खींच लेता और नहीं पढ़ने पर माँ से मार खानी पड़ती थी। आज भी वे दृश्य याद आतें हैं कि गोयठा चुल्हे में डालते हुए और कभी साग–सब्जी छौंकते या माँड़ पसाते हुए जब माँ हमारी तरफ भी देखने की कोशिश करतीं और ध्यान बँट जाने पर माँ का हाथ कभी चूल्हे या गर्म बर्तन से छू जाता या माँड़ हाथ पर से बहने लगता था तो जलन से छटपटाई माँ गुस्सा उठती थीं। इधर माँ को हम काम में उलझी देखकर किताब या स्लेट के बदले मुँडेर पर कौओं की लड़ाई देखने में व्यस्त हो जाते थे कि अचानक पीठ पर 'धम्म' की आवाज के साथ माँ का मुक्का पड़ता था। मुक्के की धमक से माथा तक झन्ना उठता था और जल्दी–जल्दी से छूटा हुआ पाठ जोर–जोर से पढ़ने की कोशिश में हमारी रुलाई फूट पड़ती थी। एक–दो बार तो भैयामाय बर्दाश्त कर लेती थीं। उसके बाद हमला बोल देती थीं– 'हड़ासंख नैतिन, बच्चा क मारी देभौ की?' वे झपटकर हमें पीछे खींच लेतीं और भर पाँजा उठाकर अपने ओसारे पर ले जाती हुई

* प्रोफेसर, तिलका मांझी विश्वविद्यालय, भागलपुर, प्रतिष्ठित रचनाएँ– उपन्यास 'प्रतिशोध', कहानी संग्रह– 'सरप्राइज गिफ्ट', कविता संग्रह– 'सम–विषम', आलेख– 'निराला' साहित्य में व्यंग्य', 'निबंध समुच्चय', तथा 'प्रलेख'।

माँ के लिए गालियों की बौछार करती जातीं। माँ हतप्रभ रह जातीं। फिर हम पढ़ाई से मुक्त होकर खेल में व्यस्त हो जाते। तब हमें भैयामाय की झिड़की खानी पड़ती––. 'भले चालीं नी धूनै छै मैयां। कखनूँ पढाय में मने नै लागै छै है बुतरू बच्चा के।'

माँ कभी भैयामाय को कोई जबाब नहीं देती थीं। वे उनका अदब मानती थीं। कभी–कभी किसी बात पर नाराजगी भी होती थी। पर, हार माँ की ही होती थी। भैयामाय बड़ी जो थीं।

भैयामाय का स्वभाव अजीब था। वे हमें बहुत प्यार करती थीं। अच्छी–अच्छी चीजें भी देती थीं खाने के लिए। पर, उन्हीं खाने की चीजों के लिए माँ से झगड़ पड़ती थीं। वे माँ के कमरे से भी दूध–दही, फल–फूल अक्सर उठाकर भैया लोगों को खिला देतीं। जब माँ खाने या खिलाने के समय खोजने जातीं और चीजें नहीं पातीं तो गुस्सा हो जातीं थीं। माँ के बिगड़ने का यही कारण था। लेकिन, भैयामाय माँ को इतनी तरजीह ही कहाँ देती थीं कि माँ की बात लगने देतीं।

भैयामाय बहुत सरल, पर स्वाभिमानी, नम्र पर बहुत जिद्दी स्वभाव की किसान परिवार की बहू–बेटी थीं। वे जी–जान से खटने वाली महिला थीं। किफायती थीं। संचयी थीं। स्वभाव से हँसमुख थीं। उनके चेहरे में विशेष आकर्षण नहीं था। दादी उन्हें कुरूप ही कहती थीं। दंतविहीन पोपला मुँह और साधारण कद–काठी थी उनकी, जबकि, दादी गोरी थीं। उनके लंबे चेहरे पर लंबी नाक और लाल ओंठ बहुत शोभते थे। सुराहीदार गर्दन और इकहरी देह उनको सुंदर बनाते थे। दादी के भरमुँह दाँत भी थे। भैयामाय को देखकर पागुर करती बकरी का मुँह ख्याल आता था। हम भैयामाय से उनके दाँत के बारे में पूछते होते तब दादी कुढ़कर कहतीं– 'हमरी सास छिकै, तहीं सें दाँत टूटी गेलै।' तब हम इसके पीछे छिपा व्यंग्य नहीं समझते थे। बाद में पता चला कि भैयामाय को जवानी में ही त्रिदोष हुआ था, जिसमें उनके दाँत और बाल चले गए थे। भैयामाय के बाल छोटे थे, करीब बिता भर के और एक कान से दूसरे कान तक गर्दन पर से डेढ़ इंच ऊपर तक के सारे बाल झड़ गए थे। यह भी हमें अजीब लगता था। रोज गिरती बेला में जब वे माथे में तेल चुपड़कर बाल बाँधती थीं तो मुश्किल से उंगली भर लंबी और उँगली ही जितनी मोटी चोटी बनती थी। उसे गूँथकर डोरे के सहारे जब जूड़े की शक्ल देतीं तो तेल की शीशी के ढक्कन जितना बड़ा जूड़ा बनता था। उनका बालों को झाड़कर सँवारना, उनको गूँथकर चोटी और फिर जूड़ा बनाते देखना हमारे लिए कौतूहल का विषय होता था। परंतु, अंत में इतना छोटा जूड़ा देखकर हमारा मन भी छोटा हो जाता था। बाल सँवारकर वे बड़े ख्याल से मुँह–हाथ धोतीं, फिर अपने हाथ में छोटा–सा आईना लेकर माँग में कायदे से सिंदूर भरतीं और माथे पर गोल–गोल सिंदूर का टीका लगाती थीं तो बड़ी भरी–भरी लगने लगतीं और हमारा संकुचित मन भी उन्हें देख भरा–भरा हो उठता था।

भैयामाय को कुछ ही कहानियाँ मालूम थीं और मेरे लिए तो बस एक ही। जब–जब कहानी सुनाने के लिए कहते हम मचल पड़ते थे, तब–तब वे शिव–पार्वती की वही कहानी सुनातीं, जिसमें भगवान शिव ने कोढ़ी का रूप धारण कर पार्वती जी की परीक्षा ली थी तथा पार्वती ने सेवा–सुश्रूषा कर उन्हें प्रसन्न किया था। शिव–पार्वती की उस कहानी को बार–बार सुनना हमें अत्यंत प्रिय था। उसका कारण बाद में पता चला। भैयामाय कहानी के पात्रों, घटनाओं और परिवेश का ऐसा सजीव चित्रण करती थीं कि हमारा बालमन उन्हें अपनी आँखों के सामने बिलकुल स्पष्ट देखता था। यही नहीं, तदनुरूप अनुभव भी करता चलता था। जब वे शिव के मक्खी भिनभिनाते दुर्गंध से भरे कोढ़ी रूप का वर्णन करती तो कथा सुनने के लालच के बावजूद हम बड़ी मुश्किल से अपनी उल्टी रोकते। फिर सुंदर युवा रूप में शिव के द्वारा पार्वती को सोने के झूले में झुलाने का दृश्य प्रफुल्लित कर देता। जब भगवान शिव पार्वती के लिए सितारों और घुंघरुओं से भरी पटोरी पहनाते व सुंदर सज्जा करते थे, तब मैं कल्पना लोक में उस सुंदर पटोरी को देखने में मस्त हो जाती थी। लेकिन, पटोरी में घुंघरु उस उम्र तक नहीं देखे होने के कारण ठीक से उनका होना समझ नहीं पाती थी। भैयामाय बतलाती थीं कि जिस तरह साड़ी कि किनारी पर पाड़ लगे होते हैं, उसी तरह देवियों कि साड़ी की किनारी सितारों और घुंघरुओं से सजी होती हैं। मैं कल्पना में पटोरी देखने की कोशिश करती। पर, चित्र स्पष्ट नहीं होने पर जल्दी से हूँ करके कथा को आगे बढ़ाती जाती थी। इसके अलावा उन्हें सप्ता–विपदा और सूर्य के डोरे की ही कथाएँ मालूम थीं।

भैयामाय के जीवन की कहानी बड़े होने पर हमें पता चली, वह बड़ी अजीब थी। शादी के लिए उन्हें देखने जब हमारे छोटे बाबा गए थे, तब उनकी उपयोगितावादी बुद्धि ने दरवाजे पर दर्जन भर मवेशी, पुआल के बड़े–बड़े टाल, बड़ी–बड़ी केले की खानी और दर्जनों गुड़ से भरे टिन इत्यादि देखकर शादी पक्की कर ली थी। वापस आने पर जब दादी ने होने वाली बहू के रूप के बारे में पूछा तो उन्होंने बतलाया कि मिठाई परोसते वक्त उन्होंने लड़की का हाथ भर ही देखा था और हाथ अच्छा था। चेहरा देखने का उन्हें ख्याल ही नहीं रहा। फिर बोले– 'खैर, चिंता की कोई बात नहीं है। समधी संपन्न हैं।'.... और वे भावी समधी की संपन्नता के बखान में मस्त हो गए। भावी बहू की ऐसी अस्पष्ट तस्वीर ने दादी को उलझन में डाल दिया। छोटे भाई द्वारा शादी की बात पक्की कर लेने के बाद मेरे दादा जी का लड़की देखना ही मुनासिब नहीं था तो मना करने का सवाल कैसे उठ सकता था ? मन मसोसकर दादी ने अपने सोलह वर्षीय बेटे को सारी बातें कहीं और शादी के लिए विदा करते वक्त समझाकर कहा था कि दुलहिन पसंद नहीं आने पर दुलहा मंडप से उठकर भी आ सकता है। अगर, लड़की नहीं जँचे तो वे शादी नहीं करेंगे। पर, बचपन की बुद्धि और शायद बड़े–बुजुर्गों के लाज–डर से वे ऐसा नहीं कर पाए। उस दिन उन्हें साहस होता तो

जिंदगीभर पछताना नहीं पड़ता और न भैयामाय को परित्यक्ता की–सी जिंदगी ही बितानी पड़ती।

कहते हैं, शादी में बहू को देखकर दादी रो पड़ी थीं और वापसी के समय बहू के सूप भर गहने उतरवा लिए थे कि बेटे की दूसरी शादी करवा देंगी। कई वर्षों तक बहू का द्विरागमन नहीं करवाया गया। पर, सामाजिक दबाव से दादी के मन की बात मन में ही रह गई। बहू का गौना करवाना पड़ा। तब तक वे जवान हो चुकी थीं और उम्र के अनुसार चेहरे पर आकर्षण भी आ गया था। लेकिन, माता–पुत्र को वह सुहाता नहीं था। फिर भी, अनचाहे या अधूरे मन से ही हमारे बड़े बाबूजी रात के अँधेरे में उनके कमरे में जाते थे। जल्दी ही उनकी गोद भी भरी थी। पर, दिन में ? दिन में वे उनकी छाया से भी दूर भागते थे। इससे खिन्न भैयामाय उनको चिढ़ाने का कोई मौका हाथ से नहीं जाने देती थीं और नाहक मार खा बैठती थीं।

भैयामाय को सभी मानते थे। बड़े प्यार और छोटे इज्जत करते थे। मानते शायद बड़े बाबूजी भी थे। लेकिन, दादी या औरों के सामने हमेशा विपरीत व्यवहार करते थे। यानी कि रात की सुहागसेज की रानी दिन में बाँदी हो जाती थी, तिलस्मी किस्से–कहानियों के पात्रों की तरह। यही उपेक्षाभाव भैयामाय के मन में ग्रंथि बना गयी और उन्हें बड़े बाबूजी को चिढ़ाने में मजा आने लगा। ग्रंथि बड़े बाबूजी के मन में भी थी। घर के लोग कहते हैं– अगर संयुक्त परिवार नहीं होता तो बहुत संभव था कि दोनों के संबंध सामान्य हो जाते। क्योंकि, जिस तरह बड़े बाबूजी समाज में प्रतिष्ठित एक संपन्न और कुशल किसान थे, उसी तरह भैयामाय चार बेटों और एक बेटी की माँ होकर सुलक्षणी और कुशल गृहिणी थीं। गोरे न तो बड़े बाबूजी थे, न ही भैयामाय। इसके अलावा भी कई विशेषताएँ थीं उनमें। वे कम तेल–मसाले में सुस्वादु खाना बनातीं, घर के लोगों के अलावा जन–मजदूर तक का ध्यान रखतीं और घर से बाहर तक के काम में दिनभर तन–मन से भिड़ी रहतीं। जिस मेहनत और लगन से बड़े बाबूजी खेती में खटते थे, उसी मेहनत और लगन से भैयामाय घर आए फसल सहित सारे घर को संभालती थीं। भैयामाय का सामाजिक पक्ष भी वैसा ही महत्त्वपूर्ण था। गाँव में बड़े बाबूजी सबसे बड़े थे। इसलिए भैयामाय गाँव भर की 'भाउज' थीं। इस नाते सबके सुख–दुख में शरीक होतीं और सबों से सम्मान पाती थीं। घर में हमारे बाबूजी सबसे अधिक पढे–लिखे, ऊँचे ओहदेवाले और इलाके भर में सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे स्वयं उन्हें माँ का मान देते थे। इसलिए भी सभी उनकी इज्जत करते थे। दादी के बाद घर पर भैयामाय का रौब चलता था। पर, मन का वह कोना, जहाँ पति का प्यार होना चाहिए था, भरे घर में पति की स्वीकार्यता से मिली इज्जत होनी चाहिए थी, वह तो खाली ही रह जाता था। यही उनके मन को कचोटता था। उन्हें जब भी किसी काम के लिए पैसों की आवश्यकता होती और बाबूजी से कहतीं तो बाबूजी दुगुना पैसा इज्जत के साथ देते थे। लेकिन, बड़े बाबूजी नहीं। उल्टे दुत्कार

देते। भैयामाय यह सह नहीं पाती थीं। उन्हें दादी से ईर्ष्या होती थी। क्योंकि, दोनों बेटे– बाबूजी और बड़े बाबूजी अपनी कमाई उन्हें ही देते। उन्हें मालकिन बनाकर रखते थे और भैयामाय को अपनी आवश्यकतानुसार कामों के लिए पैसा माँगना पड़ता था। कभी–कभी बड़े अधिकार से धान–चावल बेचकर भी अपना काम पूरा कर लेती थीं। वैसे उनकी जरूरतें थीं भी बहुत सीमित। बीड़ी या इसी तरह की छोटी–मोटी चीजों की ही उन्हें चाहत होती थी। लेकिन, चाहत तो चाहत है और मालकिन की दावेदारी वे अपना हक मानती थीं।

उनकी आधी जिंदगी इसी तरह की नहीं खत्म होने वाली खींचा–तानी में बीत गई। जब बेटे बड़े हुए, तब उन्हें उम्मीद होने लगी कि दादी जैसी ही इज्जत उन्हें उनके बेटे देंगे। आखिर चार बेटों की माँ थी वो। लेकिन, तब तक वह जमाना बीत चुका था और उनके बेटे अपनी कमाई पत्नियों को देने लगे थे। भैयामाय मन मसोसकर रह गई थीं। फिर से उन्हें बड़े बाबूजी से ही उम्मीदें होने लगी थीं, जिनके पूरा होने की न कभी अतीत में गुंजाइश रही थी, न भविष्य में होने वाली थी। अक्सर ऐसे मौके पर हास्यापद हो जाती थीं वे और माँ बढ़कर उन्हें संभाल लेती थीं। बड़े बाबू जी उन्हें चिढ़ाने के लिए आँगन में खड़े हो दादी से कहते थे कि वे साठ की उम्र में भी दूसरी शादी कर सकते हैं। यानी पाँच बच्चों के पिता का शादी हेतु अपनी उम्मीदवारी का प्रदर्शन। यह उस जमाने में कोई कठिन काम नहीं था भी नहीं। सोचकर लगता है कि कैसा लगता होगा भैयामाय को ? हाँलाकि यह कहने भर की बात रही। चरित्र के धनी थे दादा।

कई सारे प्रसंग हैं भैयामाय से जुड़े, जिनका वर्णन यहाँ संभव नहीं। सबसे अंतिम और महत्त्वपूर्ण प्रसंग इस प्रकार है– भैयामाय को करीब पचपन की उम्र के आस–पास बच्चेदानी का कैंसर हो गया था। जब गाँव से आए भाईजी से बाबूजी को इसकी सूचना मिली तब वे इसे मानने को जैसे तैयार ही नहीं हुए थे। वे जल्दी से गाँव जाकर उनसे मिलने व डॉक्टर से उन्हें दिखाने के लिए रवाना हो गए थे। उन्हें शहर लाकर बाबूजी ने अपने से डॉक्टर को दिखलाया और कैंसर की पुष्टि होने पर रो पड़े थे।

कितना भरोसा था लक्ष्मण जैसे देवर पर और आज ?.....वे भी निरूपाय हो गए? एकदम बेबस .....।

अपनी 'भाउज' से चारों धाम तीर्थ करवाने का वादा पूरा भी नहीं हो पाया था और वे जानें लगी थीं। अब तक तो उनके और अपने बच्चों की पढ़ाई–लिखाई भी पूरी नहीं हो पाई थी। न उनके मनमुताबिक पक्का घर ही बनवा पाए थे। बाबूजी को पहली बार लोगों ने रोते देखा था तब।

डॉक्टर ने उनकी जिंदगी के अधिकतम नब्बे दिन बाकी बतलाकर उनके क्रियाकर्म में लगने की सलाह दी थी। शायद यह बात भैयामाय ने सुन ली थी या उन्हें अपनी अंतिम यात्रा का आभाष हो गया था। जब उन्हें वापस गाँव लाकर बिस्तर से उठने से मना कर बहुओं ने तीमारदारी शुरू कर दी और गाँव के लोग एक–एककर मिलने आने लगे तो वे अच्छी तरह से समझ गई थीं। लेकिन, तब उनकी आँखें किसी और का इंतजार कर रही थीं। कई दिनों तक नहीं बोलीं। जब उन्हें मृत्यु की आहट पास महसूस हुई तब दादी से बोलीं – *सब्भे त भेंट करै ल ऐबे करै छै, एक आदमी नै आवै छै।'* दादी उस आदमी का संकेत समझकर बड़े बाबूजी के पास गईं। टूटी आवाज में संवाद देकर जब आँसू भरी आँखें पोछने लगीं, तब बड़े बाबूजी ने जानें क्यों अनायास ही पूछ लिया था – 'हम्में की कहबै ?' पर, दादी बिफर पड़ी थीं– आभूँ हम्मै सिखाय देबौ? संकुचाते हुए–से बड़े बाबूजी आकर उनके सिरहाने खड़े हो गए थे।

जिंदगीभर दिन के उजाले में जिनसे आँखें नहीं मिला सकी थीं, उन्हें कनखी से एक बार देखने का दुस्साहस किया था भैयामाय ने और शायद डर या कि संकोच से मुँह फेर लिया था तो दादा हड़बड़ाकर बोल पड़े थे – 'राम नाम कहौ।' वे धीरे से बोली थीं 'कहै छियै।'

अंतिम बार या सबके सामने पहली बार पति–पत्नी में यही संवाद हो पाया था। तब किसी के पास कोई उपाय नहीं था यह जानने का कि दिन में बड़े बाबूजी का मिलने आना, सबके सामने बात करना उन्हें कितना सुखी कर सका था या इससे अभाव की कचोट कम हुई थी कि नहीं या कि ये बातें उनकी महायात्रा के सामने अति नगण्य हो गई थीं। बड़े बाबूजी की आँखों में आँसू आ गए थे शायद। वे जल्दी से देहरी से उतर आँगन के पार द्वार पर चले गए थे। भैयामाय ने मानो तृप्त होकर अपनी आँखें बंद कर ली थीं, जैसे सो रही हों। आँगन में आज पहली बार सबके सामने बड़े बाबूजी उनके पास आए थे। गाँव–गाँव के लोग, जिन्होंने यह देखा था, आज भी आँखों में आँसू भरकर चर्चा करते हैं। नियत समय में भैयामाय ने दुनिया से विदा ली। बेटों ने कंधा दिया। समाज के लोग साथ गए। पर, बड़े बाबूजी हमेशा की तरह द्वार पर बैठे ही रह गए थे। निर्द्वंद से। दिल में उठ रहे हिलकोरों को सख्ती से दबाए हुए–से।

एक अनिर्णीत लड़ाई या कि प्यार का साथी चला गया था। किसी ने नहीं जाना कि सबसे मजबूत कलेजे के आदमी ने वह पल कैसे झेला ? जीवन भर की लड़ाई का ऐसा अंत तो बड़े बाबूजी ने भी नहीं सोचा होगा। समानांतर ही सही, लेकिन दिशाएँ तो दोनों की एक ही रही थीं।

कहते हैं, उसके बाद जिंदगीभर रहे संकोची बड़े बाबूजी अपनी माँ–बहनों के पास या हमउम्रों के पास भैयामाय की प्रशंसा में बोलते ही रहते थे। सुनने वाला

सोचता– काश! ये शब्द उसने सुने होते, जिसके लिए कहे जा रहे हैं तो वह जीते जी स्वर्ग का सुख पा गई होती।

उम्र के अंतिम पड़ाव में बहुत अकेले पड़ गए थे बड़े बाबूजी। अति संयमित व्यक्ति का संयम कभी–कभार छूट ही जाता है। अकेले उदास आँखों से छप्पर के एक–एक बाँस–बल्लियों को देखते–गिनते उनकी आँखों से आँसू कब बह जाते, उन्हें पता भी न चलता था। कभी बोल पड़ते थे – "केकरा से बात करियै, दीवालो त नै बोलै दे कुच्छू ?"

"शायद तब उन्हें भैयामाय की सबसे अधिक जरूरत हो गई थी।"

❑❑❑

संपर्क:

प्रतिभा राजहंस – 2/विक्रमशिला कॉलोनी, रामसर, जंगली काली स्थान के पास, भागलपुर, बिहार–812007, ईमेल : pratibha.rajhans40@gmail.com, मो. 9939721764

प्रहारक, बाण हो कि हो बात,
चीज़ क्या, आरपार जो न हो?

दान क्या, भिखमंगों के स्वर्ग!
प्रण तक तू उदार जो न हो?

फेंक वह जीत, या कि वह हार,
मिला बलि में प्रहार जो न हो?

चुनौती किसे? और किस भाँति?
कि अरि के कर कुठार जो न हो?

हार क्या?–कलियों का जी छेद,
बिंधा उनसे दुलार जो न हो?

प्यार क्या? ख़तरों का झूलना
झूलना बना प्यार जो न हो?

लौह बंधन, कि वार पर वार,
मधुर–स्वर क्यों? सितार जो न हो?

रखे लज्जा क्यों संत कपास!
पेर कर, तार–तार जो न हो?

दिखे हरियाली? मेघ श्याम,
कृषक चरणोपहार जो न हो?

शूलियाँ बने प्रश्न के चिह्न,
देश का चढ़ा प्यार जो न हो?

तुम्हारे मेरे बीचों–बीच,
प्रणय का, बँधा तार जो न हो?

अरे हो जाय रुधिर बेस्वाद,
लाड़ला मरण–ज्वार जो न हो?

– **माखनलाल चतुर्वेदी**

बाल नाटक

''सारा नाटक गुड़–गोबर''

सुनील गज्जाणी*

पात्र– परिचय

1 – प्रांजल
2 – राघव
3 – सूत्रधार
4 – लल्लू लाल
5 – बापू जी

वातावरण – दिन

दृश्य – एक

(कमरा सुसज्जित पिता–पुत्र सामान्य कपड़ों में चहल–कदमी कर रहे हैं। पिता, मन ही मन बुदबुदाता तथा हाथों से कुछ इशारा करता तथा पुत्र असमंजस भाव में उसे देखता–देखता कुर्सी पर बैठ जाता है तथा पिता पूर्ववत्)

प्रांजल – पता नहीं कुछ सोचने के लिए चहल–कदमी कर रहे हैं या कुछ सोच रहे हैं, पापा से पूछना पड़ेगा।

(प्रांजल उठकर राघव के साथ पुनः चहल–कदमी करने लगता है।)

– पापा, एक बात बताओगे?

(राघव बिना कोई प्रत्युत्तर दिए पूर्ववत, प्रांजल पुनः)

– पापा, एक आइडिया दूँ क्या?

(राघव पूर्ववत, तो प्रांजल तेजी से चहल–कदमी कर रहे राघव के साथ फुदक–फुदक चलता हुआ अचानक से सामने आकर खड़े हो जाता है और उसके यूँ सामने आने से राघव लड़खड़ाता हुआ चिल्लाया)

राघव – (चिल्लाता) अरे! अब ओवरटेक कैसा, चालान कटवा लिया ना।

प्रांजल – (चौंकता) पापा कमाल है आप कमरे में चहलकदमी करते–करते हाईवे कैसे पहुँच गए?

* अध्यक्ष, बुनियाद साहित्य एवं कला संस्थान, बीकानेर

राघव – (सकपकाता) मैं ख़्यालों में इतना खोया हुआ था कि ध्यान ही नहीं रहा।

प्रांजल – (चहकता) अरे, ऐसा सीन तो सलमान की फिल्म में देखा था। इंस्पेक्टर डिजिटल पिक्चर को असली सलमान खान समझता रहा कि.....

राघव – (हंसता) अरे, वैसा नहीं! सुबह ऑफिस जाते समय जो घटना मेरे साथ हुई उससे हैरान था।

प्रांजल – कैसी घटना?

राघव – पुलिस वाले ने मेरा चालान काट लिया।

प्रांजल – पापा, उसे घटना नहीं गलती कहते हैं। हेलमेट नहीं पहना होगा?

राघव – बेटा, बिना हेलमेट के मैं बाइक चलाता ही नहीं।

प्रांजल – तो सिग्नल तोड़ दिया होगा?

राघव – बेटा! मैं यातायात नियमों की बखूबी पालना करता हूँ।

प्रांजल – फिर कैसे?

राघव – अरे! मेरा कलिग पुरोहित है ना, वो बिना हेलमेट के था तो पुलिस ने पकड़ लिया। जब उसका चालान पुलिस काट रही थी तो पास से ही एक बिना हेलमेट के एक बाइकर उसे सलाम ठोकती हुई धड़ल्ले से निकली तो मैं बिफर गया और फिर चालान कट गया।

प्रांजल – बिफरने पर चालान?

राघव – नहीं! पुलिस से उलझने पर। इंस्पेक्टर बोला, जिसे चाहूँ मैं पकडू जिसे चाहूँ छोडू तुझे क्या।

प्रांजल – हाँ, सही बोला।

राघव – अरे, हमारा कर्तव्य है कि गलत हो रहा हो उसके ख़िलाफ आवाज़ उठाई जाए।

प्रांजल – सही बात। जागरूक रहना और जागरूक करना चाहिए। आपका कलिग जागरूक हुआ अपने कर्तव्य के प्रति?

राघव – नहीं! मगर इंस्पेक्टर हो गया।

प्रांजल – (खुश) कि अपने कर्तव्य का पालन मनमर्जी से नहीं बल्कि ज़िम्मेदारी से करेगा।

राघव – (खिन्न) नहीं, बेटा। बोला ज्यादा ज्ञान झाड़ रहे हो ना, चलो अपना ड्राइविंग लाइसेंस दिखाओ। मैंने कहा आप हेलमेट की चैकिंग करते हैं ना..... तो मेरी बात पूरी होने से पहले ही बोला 'ज्यादा स्मार्ट नहीं, समझे'।

प्रांजल – पुलिस के सामने ओवर स्मार्ट तो कभी बनना ही नहीं चाहिए। आप मेरे सामने बनते हैं तो पुलिस के सामने तो....

राघव – (बुदबुदाता) आज के बच्चे कितने जल्दी स्मार्ट हो जाते हैं अपनी उम्र से, इतनी उम्र में मैं तो लल्लू लाल हुआ करता था।

प्रांजल – (मुस्कुराता) पापा!

राघव – (सकपकाता) सुन लिया क्या?

प्रांजल – आप सुनाएगें तब ना कि फिर क्या हुआ।

राघव – चालान कटवाना पड़ा, लाइसेंस पहली बार घर पे भूला और चालान...

प्रांजल – (दर्शकों से) अब क्या करें ऐसे लोगों का, ये भी कोई लापरवाही या भूलने वाली बात होती है।

राघव – (झुँझलाता) इसमें तुम्हारी मम्मी की गलती है।

प्रांजल – ये बात मम्मी के सामने बोलेंगे। बुलाऊँ मम्मी को।

राघव – (दबा स्वर) अरे! तुम्हारी मम्मी से सुबह माथा पच्ची होने के कारण ही तो भूल गया.....पूछ रही थी अभी महिना बाकी पड़ा है और तुम्हारे पर्स में इतने ही पैसे बचे हैं, कहाँ गए, किसमें खर्च किए?

प्रांजल – तो इसमें गलत क्या ये तो मम्मी मुझे भी पूछती है, उसका मतलब मैं भी अपने होमवर्क की कॉपियाँ घर पे भूल जाऊँ।

राघव – (झुँझलाता) अरे, बेटा, तू बेटा है और मैं.....।

प्रांजल – उफ! आपका फ़िजूल में यूँ उलझना आपके लिए हर बार नुक्सानदेह होता है। शुक्र मनाईए यहाँ मम्मी नहीं है इस वक़्त वर्ना पुलिस अंकल तरह चालान काटने की बजाए पर्स के बाद मोबाइल की भी जाँच–पड़ताल हो जाती है कि किसके मैसेज आए, इसके इतने मैसेज क्यूँ आ रहे, सुबह गुड मॉर्निंग मुझे करने की फुर्सत ही नहीं अपने व्हाट्सअप में हर किसी को, अरे, ये लेडी कौन है इसका नंबर तो पहले कभी नहीं देखा और....।

राघव – (उसके मुँह पे हाथ रख, दबे स्वर में) अरे, तेरी मम्मी ने ये सुन लिया तो मोबाइल पे सर्जीकल स्ट्राईक कर देगी।.....ऑफिस में बॉस तो घर में बिग बॉस, ऑफिस में बॉस नज़रें गड़ाए रहता है तो घर में बिग बॉस।

प्रांजल – तो ऑफिस और घर के बीच जिंदगी जी लिया कीजिए।

राघव – जिंदगी! धोबी के कुत्ते–सी हो गई है, ना घर की ना घाट की। बेटा! तुम्हारी मम्मी बार–बार फ़ोन कर लोकशन ट्रेस करती रहती है, झूठ बोलकर दोस्तों के साथ पार्टी कर रहा होता हूँ तो कह देती है, चलो विडियो कॉल करो। बताओ बेटा, करूँ भी तो क्या करूँ, खुलकर जी भी नहीं सकता (मन ही मन सुबकता)।

प्रांजल – पापा, आप मेरे कंधे पे सिर रखकर अपना मन हल्का कर लीजिए।

राघव – (चौंकता) क्या! अरे, पिता हूँ तेरा।

प्रांजल – अरे, तो मैं भी बेटा हूँ आपका। वैसे भी दुख–दर्द में रिश्ते नहीं, साथ देखा जाता है।

राघव – कमाल है! आज के बच्चें उम्र से पहले मैच्योर हो रहे हैं।

प्रांजल – (इतराता) पापा! ये एंड्रायड मोबाइल का ज़माना है।

राघव – (चौंकता) मोबाइल! ओह, मैं अपना फोन तो डाइनिंग टेबल पे ही भूल गया, तुम्हारी मम्मी के हाथ लगे उससे पहले ही झटपट लेकर आता हूँ (तेजी से मंच से बाहर)

प्रांजल – (अफ़सोस) हर बेटे का पहला हीरो पापा होता है लेकिन मेरे हीरो कैसे हैं देख ही रहे हैं। (दर्शकों से) आपके पापा तो ऐसे नहीं है ना?

राघव – (मंच पर हाथ में मोबाइल थामे तेजी से आकर ठंडी सांसे छोड़ता) शुक्र है बच गया वर्ना.....।

प्रांजल – (बात काटता) जन हानि को छोड़, बाकी सभी प्राकृतिक आपदाएँ आ जाती।

राघव – (दर्शकों) संतान अपने माता–पिता का नाम रोषन करने की चेष्टा करती है, मगर ये संतान अपने पिता के व्यक्तित्व का चरित्र–चित्रण कितने गर्वित भाव से कर रही है, आप देख ही रहे हैं और आप तो ऐसा पशस्ति–गान तो नहीं करते ना...?

प्रांजल – क्या पापा आप भी बच्चों–सी बातें करने लगे, लाईए मोबाइल दीजिए।

राघव – (हंसता) कमाल है! बेटा पिता–सी बात करें तो कोई बात नहीं और पिता बेटे–सी बात करें तो दिक़्कत, मैं तो बचपन में ऐसा.....।

प्रांजल – (मोबाइल झपटता–सा) क्या पापा, मुझे लेज़ी लोग पसंद नहीं है, एकदम चुस्ती रखिए और अब आपके बचपन से मुझे क्या लेना–देना। आज आपके दस पैसे वाला ज़माना नहीं है आज का ज़माना.....।

राघव – (गंभीर) जिसमें बच्चा अपने बचपन को जी नहीं पा रहा है सलीके से।

प्रांजल – (तुनकता) ओ़फो पापा! पेन ड्राइव के जमाने में फिर से लोपी की बातें! (मोबाइल देखता) ओह! आय एम गेटिंग लेट।

राघव – (आश्चर्य) गेटिंग लेट! अरे, पहले बोलना था। क्या ऑन लाईन क्लास का टाईम चेंज हो गया?

प्रांजल – उ़फ! ऑन लाईन क्लासेज से तो उकता गया हूँ इस कोरोना काल में।

राघव – मगर बेटा पढ़ना भी ज़रूरी है ना।

प्रांजल – आय नो पापा, मैंने दो घंटे की क्लास भी अटैंड कर ली, लगातार मोबाइल में आंखें फाड़ते–फाड़ते आंखे जलने लगी थी।

राघव – (अफ़सोस) ओह! इस हिसाब से हमारी लोपी वाला ज़माना ठीक था। चलो थोड़ा रेस्ट कर लो।

प्रांजल – ''थेंक्यू पापा, इसीलिए आपका मोबाइल लिया था।

राघव – रेस्ट, मोबाइल से!

प्रांजल – हाँ पापा, ऑन लाइन गेम खेलूंगा ना, अभी मैच है तो रिलेक्स हो जाऊँगा। आप जाते हुए गेट बंद करते हुए जाईएगा, ओके।

राघव – घोर आश्चर्य! हमारे ज़माने में तो आंखों में जलन होने पर गुलाब जल डालते थे, रिलेक्स होने के लिए थोड़ा सुस्ता लेते थे और आज के ज़माने में.....।

प्रांजल – (बात काटता) अरे पापा, आपको अभी इसका चस्का नहीं लगा ना। वैसे ये वो कहावत वाली बात है ज़हर ही ज़हर को.....।

राघव – (बात काटता) समझ गया बेटा तुम्हारी बात कि ज़हर ही ज़हर को काटता है मगर ज़हर अति होना भी नुकसानदायक होता है (प्रांजल मोबाइल में व्यस्त हो जाता है, राघव कुछ क्षण देखता रहा) बचपन कितना कैद–सा हो गया ज़माने की होड़ में (राघव, लाईट, दरवाज़ा बंद करने का अभिनय कर मंच से प्रस्थान और किशोर का आगमन)

सूत्रधार – (लाईट जलाकर प्रांजल की ओर देखता) ऑन लाईन क्रिकेट खेला जा रहा है। माता–पिता को नज़र रखनी चाहिए कि बच्चा कौनसा गेम और क्या खेल रहा है। मोबाइल के खेल, मैदानी खेलों से अलग होते हैं, बस अभी ज्ञान इतना ही। मैं अपना परिचय इस प्रकार देना चाहूँगा कि आजकल तो बाल भी उम्र से पहले सफ़ेद हो जाते हैं कइयों के, इसलिए यह भी ज़रूरी नहीं की हर सफ़ेद बालों वाला अनुभवी ही हो, अनुभव उम्र से नहीं होता, उसी तरह कद से किसका व्यक्तित्व नहीं आंका जा सकता तो रंग–रूप से उसका चरित्र.... (प्रांजल सुनता–सुनता झुँझलाकर)

प्रांजल – (झुंझलाता) दूसरों के गिरेवान में झाँकने से पहले अपने गिरबान में झाँक लेना चाहिए, समझे। सूत्रधार की तरह इतराओ मत।

सूत्रधार – (सकपकाता) मैं इतरा नहीं रहा भूमिका बना रहा था अपनी।

प्रांजल – ओह! अपने मियाँ मुँह मिठ्ठू! किसी ओर को भेज देते जो तुम्हारा इंट्रोडक्शन करने के लिए।

सूत्रधार – अभी ऐसा कोई सिस्टम आया नहीं है कि सूत्रधार का परिचय देने को पहले कोई आए।

प्रांजल – ठीक है तो ट्वंटी–ट्वंटी के मैच में टेस्ट मैच क्यूँ दिखा रहे हो।

सूत्रधार – (मुस्कुराता) मंच पर, आने का बहुत दिनों बाद मौका मिला तो....।

प्रांजल – (बात काटता) भड़ास निकाल लूँ।

सूत्रधार – जो इन दिनों थोड़ा–बहुत पढ़ा है, वो ज्ञान मैं बाँट दूँ।

प्रांजल – ये तो वो ही वाली बात हो गई कि एक नाटक किया नहीं की समझो रंगकर्मी हो गए, दो किताबें पढ़ी नहीं की विद्वान हो गए और सूत्रधार का रोल मिलते ही सोचे कि मुख्य किरदार में मैं आ गया और.....।

सूत्रधार – (झुंझलाता) मैंने निर्देशक को पहले ही समझाया था कि इसको पहले दृष्य में मत रखो, बोल–बोलकर पका देता है। अगर नाटक मुझसे शुरू होता है तो तुम्हे अब तक मंच पर आने ही नहीं देता, अपनी पूरी सूत्रधारी में नाटक खत्म कर देता।

प्रांजल – (चौंकता) अरे, तुम तो सच में मुझ पर भड़क रहे हो। (फुसफुसाता)

सूत्रधार – मैंने निर्देशक से कहा कि मैं नेचुरल एक्टिंग दिखाऊँगा, जो दिखा रहा हूँ।

प्रांजल – अबे तो नेचुरल एक्टिंग स्क्रिप्ट वाली दिखा अपने नेचुरल स्वभाव वाली नहीं, जब देखों लड़ने का मौका ढूंढता है (पूर्ववत)

सूत्रधार – (उत्साहित) पहली बार इन बच्चों के सामने आया तो....

प्रांजल – (बात काटता) नाटक का कचरा दूँ, अब स्क्रिप्ट वाली.....।

सूत्रधार – समझ गया, समझ गया! चल तू अब अपनी पॉजिशन ले!

प्रांजल – (दर्शकों) ये ट्वंटी–ट्वंटी देख–देखकर क्रिकेट के नियम जान गया मगर एक्टिंग कैसे की जाती है अभी तक नहीं समझ पाया।

(यह कहकर प्रांजल झटपट अपने यथा स्थान चला जाता है और सूत्रधार वापिस विंग से मंच पर प्रवेश करने का अभिनय करता)

सूत्रधार – तो देखा आपने पिता–पुत्र की यह कहानी किसी टीवी धारावाहिक की तरह शुरू कहाँ से हुई और पहुँची कहाँ पे। तकनीकि युग ने जहाँ ज़िंदगी सुगम की है तो राघव जैसे व्यक्तियों की उलझनों भरी भी.... (प्रांजल की ओर देखता) बंद कमरे में बैठा व्यक्ति पूरी दुनिया से जुड़ जाता है मगर अपने ही घर के सभी सदस्यों से कटा हुआ..... कहने को हर चीज़ ऑन लाईन मगर रिश्तें ऑफ लाईन होते जा रहे हैं.... प्रत्यक्ष है ये प्रांजल जो अपने पिता को कमरे से बाहर भेज अपने ऑन लाईन दोस्तों में खुश हो रहा है उफ!..... और इस कोरोना काल में तो जो थोड़ा–बहुत कुछ बचा हुआ था वो सारी हदें ही पार हो गई। जो देखो ऑनलाईन, बाजार ऑनलाईन, रिश्ते ऑनलाईन, मनोरंजन ऑनलाईन, पढ़ाई ऑनलाईन, भक्ति भाव ऑनलाईन..... (गंभीर) देखिए दाह संस्कार भी..... (तभी मोबाइल की धुन बजने लगती है और वो सकपकाता हुआ बुदबुदाया) निर्देशक ने बोला था कि मंच पे जाओ तब मोबाइल बंद होना

चाहिए जो मैं स्वीच ऑफ करना भूल गया था, वो मुझे यूँ देख जल–भुन रहा होगा (जेब से फ़ोन जैसे ही देखता है, बड़बड़ाता) अरे बाप रे! मर गया, मेरी इसी हरकत पे निर्देशक तो सिर्फ जल–भुन ही रहा होगा, मगर ये तो मुझे भस्म ही कर देंगे... मेरे बापू जी का फ़ोन है। फोन उठाऊ की नहीं, आगे कुआँ पीछे खाई (फोन रिसिव कर घबराता–सा) बापू जी रास्ते में ही हूँ ...वो....वो बाइक पंक्चर हो गई थी....क्या झूठ बोल रहा हूँ.....वो बापू जी.....(कुछ क्षण हाँ–ना, हाँ–ना करने के बाद रूंआसा होता कॉल डिस्कनेक्ट कर) बापू जी! राष्ट्रपिता बापू से एकदम उल्ट। मैं डाल–डाल तो वो पात–पात....वो गरजते हुए बोले बेटा अपनी दुकान मुंबई में नहीं, बीकानेर में ही है। दरअसल मैं उन्हें एक घंटे से झूठ बोल रहा हूँ कि रास्ते में हूँ... तो बोले 'चल बेटा विडियो कॉलिंग. .... (झुंझलाता) अब तो झूठ भी नहीं बोल सकते (फिर घंटी बजती है, तुरंत रिसिव कर बोला) नहीं–नहीं पापा, समझिए पहुँच गया (फोन डिस्कनेक्ट कर देता है और दर्शकों की ओर...) बापू जी का फ़ोन था, कह रहे थे कि बेटा अपन दुकान का हिसाब–किताब घर पे कर लेंगे, कोई बात नहीं आराम से घर आ जाना। उनका घर का हिसाब–किताब, थप्पड़, मुक्का, लातें, डंडा, फटकार और थोक के भाव गालियाँ...क्या करूँ.....निर्देशक को तो फिर मना लूंगा मगर मेरे बापू जी अभी तक दोस्त नहीं बने ना.....(झुंझलाता हुआ प्रांजल की ओर देख) ओय प्रांजल! स्क्रिप्ट में तेरे लिए सिर्फ गेम खेलना ही नहीं लिखा हुआ है, अब चल मंच संभाल लेना मैं चलता हूँ। निर्देशक लल्लू लाल से उल्हाना सुनने को ना मिले कि 'हेडेड ओवर टेकन ओवर वाली रस्म नहीं कर के गया। (प्रांजल हैरत में देखता उसके पास आता है) हैरत में मत देख। अपनी भूमिका छोटी कर तेरी बड़ी कर रहा हूँ अब नाटक का सारा उल्हाना–शिकायत, तालियाँ–गालियाँ सब तेरे हवाले, ओके चलता हूँ। (मंच से प्रस्थान)

प्रांजल – कमाल है, ऐसा सूत्रधार तो पहली बार, देखा क्या नाटक ही ऐसा पहली बार कर रहा हूँ। पूरे नाटक का गुड़–गोबर हो गया.....जैसे–तैसे अब अपना कर्तव्य तो निभाना ही पड़ेगा बाकी तालियाँ–गालियाँ निर्देशक के नाम (वापिस यथा स्थान जाकर मोबाइल में व्यस्त और राघव का आगमन)

राघव – (अंगड़ाई लेता) मेरे घर में भी इतनी शांति है, पता नहीं था और झपकी आ गई।

प्रांजल – पापा ये शांति जब–जब मम्मी घर नहीं होती तब–तब होती है।

राघव – नहीं बेटा, मम्मी के बारे में ऐसा नहीं बोलते।

प्रांजल – मैं तो शांति के बारे में बोल रहा हूँ कि ये तब–तब ही होती है। लिजिए पापा ये मोबाइल अपना।

राघव – (खुश) वाह, आज अपने आप! हूँ! अच्छी बात, मोबाइल से खेलने की भी लिमिट होनी चाहिए; ज्यादा खेलना नुकसानदायक होता है।

प्रांजल – अरे, पापा! इसलिए दिया है कि मोबाइल का डेटा खत्म हो गया है।

राघव – क्या!

प्रांजल – आप चौंक तो ऐसे रहे हैं जैसे आपके व्हाट्सअप मैसेज मम्मी ने देख लिए हो। अरे रात बारह बजे फ़िर आ जाएगा डेटा।

राघव – (झुंझलाता) अबे, अभी तो कितना दिन पड़ा है, कैसे निकालूंगा।

प्रांजल – वाकई में ज़माना कितना बदल गया है। ज़ेब में दिन भर पैसे हो या ना हो चलता है मगर डेढ़ जीबी डेटा ना हो मानो ज़ायदाद लुट गई।

राघव – (पूर्व भाव) अबे तुझे सच में गेम खेलने के लिए किसने कहा था, सिर्फ एक्टिंग ही करनी थी।

प्रांजल – (चौंकता) अरे, हम यहाँ बच्चों को कुछ शिक्षा देने आए हैं अगर हम ऐसे लड़ेंगे तो हमसे ये क्या प्रेरणा लेंगे।(बुदबुदाता)

राघव – (पूर्व भाव) अच्छा! बच्चों की आड़ ले बचना चाहता है.....मगर बचेगा नहीं, तुझे पता है डेढ़ जीबी समय से पहले खत्म करना मतलब.....।

प्रांजल – (बात काटता) घर में, परिवार में, दोस्तों के संग बतियाना।

राघव – (आक्रोश) अच्छा! नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली, वाह! बेटा, आप पे बीते तो दर्द, किसी दूजे पे बीते तो बतंगड़। अपना खून–खून, दूसरे का पानी....।

प्रांजल – अबे तू पापा के किरदार से बाहर निकल गया ना, तो ले मैं भी निकलता हूँ बेटे के किरदार से। तुझे जो करना है कर ले, तेरा डेढ़ जीबी तो उड़ा दिया मैंने। निर्देशक को मैंने पहले ही कह दिया था कि मैं नेचुरल एक्टिंग तभी कर पाऊँगा जब सच में मैं गेम खेलूँगा तो निर्देशक बोला मोहित तेरा पापा बना है, मोबाइल उसी का होगा इसलिए जो चाहे ऑन लाईन गेम खेलना, बस एक्टिंग नेचुरल होनी चाहिए।

राघव – (पूर्व भाव) क्या! उस लल्लू लाल ने। खुद अपना नेट दूसरों के वाई–फाई पे चलाता है उसे इस दर्द का क्या एहसास। पहले उस लल्लू लाल से निपटता हूँ जिसने कारस्तानी निर्देशक बनकर की (तेज स्वर) ओय लल्लू लाल कहाँ है तू सामने आ। आज से तुझे वाई–फाई देना बंद, ये मेरा प्रतिशोध है।

लल्लू लाल –(झुझलाता हुआ मंच पर प्रवेश) अरे यार मोहित। बच्चों के सामने तुमने सारी मिट्टी पलीत करवा दी सिर्फ डेढ़ जीबी डेटा के लिए। बच्चों को हमारा संदेश क्या जाएगा। सारा नाटक गुड़–गोबर कर दिया।

राघव – आज के बच्चे बहुत फास्ट है, आई क्यू बहुत तेज़ है जो लेना है ले लिया। इस गुड़–गोबर में सूत्रधार बने उस राहुल का भी कम योगदान नहीं है, समझा ना। अरे, मैं मंच पे तो हूँ मगर तेरा वो लाडला कहाँ है जिसने.....।

सूत्रधार – (मंच पर प्रवेश करता, बात काटता हुआ) जिसने आप सभी को यूँ खुला छोड़ दिया। प्रांजल, राघव–लल्लू लाल – (तीनों एक स्वर) लो आ गया।

प्रांजल – नाटक का गुड़–गोबर करने के बाद।

राघव – नाटक का सर्व सत्यानाश करने के बाद।

लल्लू लाल –हमारी बच्चों के सामने मिट्टी पलीत कराने के बाद।

सूत्रधार – मौन हो जाओ मेरी प्यारी कठपुतलियों (तीनों यथावत हो जाते हैं) किरदार, सूत्रधार के अनुसार चलते हैं। सूत्रधार, लेखक के अनुसार तो यह नाटक प्यारे बच्चों को क्या संदेश देता है।

प्रांजल – मोबाइल बेशक हमारी जिंदगी से जुड़ गया मगर उसे अपनी दिनचर्या में शामिल मत कीजिए।

राघव – प्रशासन के नियमों की अवहेलना मत कीजिए क्योंकि वे नियम जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा ही बनाए गए होते हैं।

लल्लू लाल –(बुदबुदाता) अबे तू यहाँ डेंगू के मच्छर मारने आया।

सूत्रधार – (उसकी ओर देख गुस्से से बुदबुदाता) अबे पता है मुझे..... प्यारे बच्चों! सूत्रधार की तरह झूठ कभी नहीं बोलना चाहिए जो बात है अपने माता–पिता, अपने परिवार के सामने स्पष्ट रखनी चाहिए हो सकता है हमारा सच उन्हें प्रभावित कर जाए और झूठ कहीं ठेस पहुँचा दें और. ..... (मंच की ओर अपने बापू जी को देख चौंक उठा) हे बापू जी! बापू जी मंच की ओर आ रहे हैं।

(प्रांजल–राघव–लल्लू लाल – चौंकते, एक स्वर) – बाप रे बाप!

लल्लू लाल– अब तो नाटक महा गुड़–गोबर हो गया।

बापू जी – क्षमा चाहूँगा सब से की व्यवधान डाला। मगर मंच पर आने से अपने आप को रोक नहीं पाया। इसने मुझे बताया कि नाटक कर रहा था मगर बताया मेरी थप्पड़ें, मुक्के, छड़ी और गालियाँ खाने के बाद, मगर मुझे अच्छा लगा मगर इसे पीटना नहीं इसकी रचनात्मक गतिविधियों में भागीदारी देख, रचनात्मक कार्य करें तो किस माँ–बाप को बुरा लगेगा अगर ऐसी कोई रुचि रखता हो तो उसे प्रोत्साहित भी करना चाहिए जैसे मैं खुद इसका नाटक देखने चला आया, बहुत अच्छा लगा

सुखद लगा। मैंने इसे यही कहा कि बेशक रचनात्मक कार्यों में भागीदारी कर मगर अपने लक्ष्य, पढ़ाई से भटककर नहीं..... अच्छा बेटा, अब तेरा नाटक खत्म हो गया हो तो दुकानदारी में मेरा हाथ बटा, चल। क्या करूँ बच्चों! समय की पालना करना मुझे संस्कारों में मिला है, समय की नब्ज समझ समय को पकड़ो तो समझो आप सफल। अच्छा चलते हैं, राम–राम।

(बाकी सभी एक स्वर में) – राम–राम, धन्यवाद।

❑❑❑

संपर्क:

सुनील गज्जाणी– सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर – 334005 राजस्थान, ईमेल : sgajjani@gmail.com, मो. 09950215557

मैं फिर आऊँगा

गतिहीन समय ने
मुझे इस तरह फेंक दिया है

अपने से दूर
जिस तरह फेंक नहीं पाती हैं

चट्टानें लहरों को
मैं समय तक आया था यों

कि उसे भी आगे बढ़ाऊँ
मगर उसने

मुझे पीछें फेंक दिया है
मैं चला था जहाँ से

अलबत्ता वहाँ तक तो
नहीं ढकेल पाया है वह मुझे

और कुछ न कुछ मेरा
समय को भले नहीं

सरका पाया है आगे
खुद कुछ आगे चला गया है उससे

लाँघकर उसे छिटक गए हैं
मेरे शब्द

मगर मैं उसे अब
समूचा लाँघकर

आगे बढ़ना चाहता हूँ
अभी नहीं हो रहा है उतना

इतना करना है मुझे
और इसके लिए

मैं फिर आऊँगा।

– भवानी प्रसाद मिश्र

कहानी

औरत जात

कहानीकार : जीवनानंद दास*
अनुवादः विजय कुमार यादव**

वैशाख की दुपहरिया।

चपला आधा घंटा भी न सो पाई और जग गई। खिड़की की फाँक से कृष्णचूड़ा के वृक्ष दिख रहे थे। उनसे फूल झड़ रहे थे।

बगल के कमरे से कड़े चुरुट की गंध आ रही है। इसका मतलब कि पति ऑफिस से लौट आया है।

चपला उठ खड़ी हुई। हाथ में चुरुट लिए हेमेंद्र कमरे में घुसा और चपला की ओर एक बार देखकर कहा, "मोटर तैयार करने को कह दिया है।"

यह सुनते ही चपला अँगड़ाई लेते हुए बोली, "रहने दो, अब आज नहीं जाऊँगी।"

"अरे, तुमने ही तो कहा था कि आज शनिवार है ...."

"कहा तो था, लेकिन कहाँ जाऊँ? सिनेमा? क्या है आज?"

हेमेन बोला, "देखता हूँ, अखबार लाऊँ।"

जैसे ही हेमेन अख़बार लेकर कमरे में दाखिल हुआ, चपला बोली, "रहने दो, सिनेमा अच्छा नहीं लगता।"

उसकी बात सुनकर हेमेन ने थोड़ी निराशा के साथ कहा, "मानसून से पहले रेस तो शुरू होगी नहीं।"

चपला बोली, "रहने दो अब रेस–वेस की जरूरत नहीं– बहुत पैसे गँवाए हैं, जरा अख़बार तो देखूँ।"

हेमेन ने अख़बार उसकी ओर सरका दिया और निढाल होकर एक कुशन पर बैठ गया और हाथ में सिगार लिए हाँफने लगा। ऐसा लग रहा था मानो कोई मोटा मेंढक टाई बाँधे छींटदार कोट झुलाकर बैठा हो।

---

* बांग्ला भाषा के प्रतिष्ठित कवि, कहानीकार और उपन्यासकार।

** कविता, कहानी, आलोचना विधा में सक्रिय लेखन। बांग्ला से हिंदी में अनूदित एक उपन्यास, असमिया से हिंदी में अनूदित एक उपन्यास और एक कहानी संग्रह तथा हिंदी से बांग्ला में अनूदित तीन बाल पुस्तकें प्रकाशित।

चपला की उम्र चालीस पार कर चुकी है और हेमेन की उनचास। दोनों के शरीर मोटे होते जा रहे हैं, सिर पर बाल भी धीरे–धीरे कम हो रहे हैं। हेमेन की पैंट की बेल्ट जैसे उसकी तोंद को अब सँभाल नहीं पा रही; उसका चेहरा भी जैसे उसी तोंद की तरह फूला हुआ लग रहा है। चपला का चेहरा भी हेमेन जैसा ही है। ऐसा लगता है जैसे कल्पना या कोई सपना इनके चेहरे के आस–पास तक कभी फटका ही नहीं है।

हेमेन का अपना ऑफिस है। कुछ मँझोले आकार के ट्रक हैं, जो पिछले दस सालों से ईंट, गारा और सीमेंट लेकर कोलकाता की सड़कों पर दौड़ते रहते हैं। इसके अलावा और भी कई तरह के छोटे–मोटे धंधे हैं। एक मामूली कांट्रैक्टर के तौर पर कभी उसने चौबीस परगना में अपने कारोबारी जीवन की शुरुआत की थी। अब तो उसके समूचे कारोबार का मुख्यालय कलकत्ता में है, जिसमें दो–तीन लाख रुपये लगे हुए हैं।

चपला अखबार देख रही थी। उसमें एक जगह यह सूचना थी कि ढनढनिया मारवाड़ी ने एक भव्य भोज का आयोजन किया था; निमंत्रित लोगों की सूची में लगभग सौ नाम थे। चपला बहुत ध्यान से गंभीरतापूर्वक एक–एक नाम देख रही थी। सारे नाम देखने में उसे तकरीबन आधा घंटा लग गया और उतनी देर में हेमेन का चुरुट भी खत्म हो गया। चपला ने एक लंबी साँस लेकर अखबार एक ओर रख दिया।

नहीं, अभी वे इतने बड़े लोग नहीं हुए कि अखबार के उस कॉलम में उनके भी नाम छपे। लेकिन ढनढनिया के भोज में उसका पति भी तो गया था, चपला भी तो गई थी। नहीं– जैसा वे खुद सोचते हैं, वैसा कुछ नहीं, अभी भी वे बहुत पीछे हैं; सौ नामों की सूची में उनका नाम कहीं नहीं है, आज भी नहीं– अब उनकी उम्र लगभग पचास की होने को आई।

चपला किंचित बेचैन हो उठी। चुपचाप बैठे रहने से उसके मन में एक विरक्ति सी आ जाती–लोगों पर, इस दुनिया पर, अपनी जिंदगी की नाकामी पर। चपला हिलते–डुलते उठ बैठी और बोली, "चलो, लीला के घर चलते हैं।"

"ठीक है, पहले टॉयलेट कर आओ।"

आधे घंटे के अंदर टॉयलेट से फारिग होकर, बनाव–शृंगार कर चपला आकर बोली– "चाय पी थी?"

हेमेन ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

"तो फिर यासीन से कहती हूँ; बना लाए।"

"छोड़ो, उसकी जगह मैं एक और चुरुट जला लेता हूँ, कहाँ चलोगी?"

"चलो, लीला के घर चलते हैं।"

"लीला? सुना है, द्विजेन उसे लेकर चला जाएगा।"

"कहाँ?"

"शिलांग।"

"क्यों?"

"कलकत्ते की इस गर्मी में हम भी तो दो–चार दिन के लिए कहीं जा सकते थे; सब लोग तो जा ही रहे हैं।"

"थोड़ा सब्र रखो, कुछ बड़े ऑर्डर आए हैं। अच्छे बच्चे की तरह धैर्य रखो मेरे लल्ला। लेकिन क्या लीला को लेकर द्विजेन सचमुच जा रहा है?"

उसकी बात सुनकर हेमेन किंचित मुस्कुराया।

चपला बोली, "जानते हो, उन दोनों में एकदम नहीं बनती है?"

द्विजेन के बारे में सोचकर चपला को बहुत बुरा लग रहा था।

हेमेन को भी.... द्विजेन के बारे में सोचकर बुरा ही लगा।

मोटरकार कुछ खराब सी लग रही थी। हेमेन ने मायूस होकर एक नजर कार की ओर डाली– "इस मोटरकार को क्या हो गया है?"

चपला बोली– "अब तो... चलो ऊपर ही चलें।"

हेमेन ने औजार निकालकर कार के कल–पुर्जे ठीक करने की कोशिश की, फिर मुँह खोलकर कार की ओर देखा– करीब पाँच मिनट तक मेहनत करता रहा, लेकिन कार एक सूत भी नहीं हिली।

आखिर में गाड़ी को ड्राइवर के हवाले छोड़कर हेमेन बोला– "चलो, बस से चलते हैं।" और वे बस से ही गए।

हेमेन ने बालीगंज एवेन्यू में घर लिया है– लेकिन द्विजेन अब भी उसी पुराने श्यामबाजार में रहता है। कई बार कहने के बावजूद उसे खींचकर एवेन्यू की ओर लाया नहीं जा सका; वह बस कहता रहता है, 'अच्छा, आ रहा हूँ'– आ रहा हूँ," लेकिन आता नहीं। इन दस सालों में भी वह नहीं आ सका। क्या द्विजेन के पास पैसे कम हैं? बिलकुल नहीं। वह कंजूस भी नहीं है– और न ही लीला। लेकिन असल में इन दोनों की आपस में बनती ही नहीं। पति–पत्नी होकर भी इन दोनों की आपस में क्यों नहीं बनती, हेमेन यह समझ नहीं पा रहा था। वह समझ नहीं पा रहा था कि क्यों ये दोनों हमेशा एक–दूसरे को सिर्फ चोट ही पहुँचाते रहते हैं?

बस में भीड़ थी। चपला को देखकर भी कोई सीट से नहीं उठा। अगले स्टॉप पर एक आदमी के उतरने पर हेमेन ने चपला को वहीं बैठने भेज दिया। एक–दो मिनट बाद जब उसे महसूस हुआ कि चपला के बगल में कोई कुली जैसा बैठा है, तो वह झटपट अपनी पत्नी का हाथ पकड़कर उसे बस से उतार लाया।

इसके बाद उन्होंने एक टैक्सी ले ली।

तीसरी मंजिल पर पहुँचने से पहले ही लीला की आवाज सुनाई पड़ी। शायद किसी नौकर को डाँट रही थी। शायद नौकर बहुत ही बदतमीज और ढीठ था और लीला की आवाज भी वैसी ही तेज और कड़क थी। हेमेन को लगा बस, यही है असली

दबदबे वाली आवाज जो उसकी पत्नी के पास नहीं है। ऐसी आवाज न होने पर घर के नौकर–चाकरों का भी मन बढ़ जाता है और दोस्तों की रखैलों को भी काबू में नहीं रखा जा सकता। लेकिन खुद हेमेन की आवाज भी ऐसी नहीं है– फिर भी हर पग पर अपने कारोबार से संबंधित न जाने कितने काम सहजता से हासिल कर लिए हैं उसने। सोचते–सोचते हेमेन ने परम संतोष के साथ दूसरी मंजिल के पापोस पर अपने बूटों को अच्छी तरह से रगड़ा। उसकी देखा–देखी चपला ने भी अपनी हाई हील रगड़ ली।

हेमेन ने चपला से कहा, "खबरदार, लीला के साथ तनिक भी मत उलझना, अपने तौर–तरीके ठीक रखना, समझीं?"

उसे समझ में नहीं आया कि सिगार जलाए या नहीं; कम से कम जेब से निकाला तो था, लेकिन जैसे ही ऊपर की मंज़िल पर पहुँचा, उसे फिर से जेब में रख लिया।

लीला की आवाज डाइनिंग रूम की तरफ से आ रही थी– शायद नौकर–चाकरों से कुछ कहा–सुनी हो रही थी। हेमेन उधर नहीं गया। द्विजेन शायद ड्रॉइंगरूम में है, यह सोचकर वह चपला के साथ ड्रॉइंगरूम में घुसा। लेकिन वहाँ कोई था ही नहीं।

हेमेन ने पुकारा, "द्विजेन।"लेकिन कोई कोई जवाब नहीं मिला।

घड़ी ने पौने तीन बजाए थे।

बेडरूम में भी कोई नहीं था। आखिरकार वे दोनों डाइनिंग रूम की ओर गए; अंदर जाकर देखा कि भयानक रणचंडी बनी लीला डिनर टेबल पर बैठी हुई है! उसके हाथ में पावरोटी काटने वाले दो चाकू नाच रहे हैं; द्विजेन अपने हाथ में एक स्लाइस ब्रेड लिए एक तरफ चुपचाप एक कुर्सी पर बैठा है।

– "द्विजेन"

– "द्विजेन बाबू"

लीला आगे बढ़कर बोली, "हुआ, बहुत हुआ। उसका और ज्यादा मन बढ़ाने की जरूरत नहीं है।"

लीला ने ब्रेड काटने वाले एक चाकू को प्लेट पर फेंका और दूसरे को अपने हाथ पर रखते हुए बोली– "अभी ही हमारी चाय खत्म हुई है।"

चपला बोली, "अच्छा ही हुआ।"

हेमेन एक कुर्सी खींच लाया था और द्विजेन के पास बैठकर उसकी गर्दन में बाँह डालकर फुसफुसा रहा था।

यह देखकर लीला बोली– "उसका मन और ज्यादा न बढ़ाओ, देवरजी।"

चपला बोली, "अरे बेचारा, दिनभर मेहनत करके आता है..."

लीला आँखें तरेर कर बोली, "बेचारा मतलब?"

– "मैं द्विजेन बाबू की बात कर रही थी..."

– "द्विजेन बाबू बेचारा, और मैं?"

चपला कुछ नहीं बोली।

"हुँह, बेचारा दिनभर मेहनत करके आता है..."

इसके बाद चपला चुप हो गई।

लीला फिर बोली– "दिनभर मेहनत करके आता है, तो फिर क्या करना चाहिए उसके साथ, देवरानी जी?"

चपला बोली, "सुना है तुम लोग कहीं घूमने जा रहे हो?"

छुरी से नाखून काटते–काटते लीला बोली– "किसने कहा? कहाँ?"

द्विजेन बोला– "छुरी से नाखून मत काटो।"

लीला ने छुरी का हैंडल मज़बूती से पकड़कर जलती निगाहों से द्विजेन की ओर देखा। यह देखकर हेमेन का कलेजा काँप उठा; उसने द्विजेन की गर्दन से अपना हाथ हटा लिया और अपनी आँखों में बहुत ही विनम्रता भरकर लीला की ओर देखा।

द्विजेन बोला– "यह ब्रेड काटने वाला चाकू नहीं है? भूल क्यों जाती हो?"

हेमेन ने द्विजेन के कंधे पर हल्के धौल जमाते हुए कहा– "अरे रहने दो, छोड़ो भी।"

– "रहने दे? कैसे रहने देता है, अभी दिखाती हूँ!" यह कहते हुए लीला ने अचानक द्विजेन के सिर को लक्ष्य कर चाकू फेंक मारा। चाकू लक्ष्य भ्रष्ट होकर दीवार से जा टकराया।

इस घटना के बाद कुछ मिनट तक सब स्तब्ध होकर बैठे रहे। टेबल पर एक और चाकू था, लेकिन लीला ने उसे नहीं उठाया। द्विजेन ने चश्मा उतारकर अपनी आँखें पोंछते हुए कहा– "ब्रेड काटने वाला भोंथरा चाकू अगर माथे पर लग भी जाता तो क्या होता?"

लीला बोली, "लेकिन अगर आँख में लग जाता तो?"

"तो क्या होता?"

"क्या होता? पुतली बाहर निकल आती और क्या होता!"

हेमेन बोला– "छि!"

चपला ने कहा– "अगर तुम्हारे पति को ऐसा होता तो तुम्हें अच्छा लगता क्या, लीला?"

लीला बोली– "मेरा पति ! हा! क्या खूब पति हैं!"

हेमेन हैरानी से बोला– "क्या कह रही हो?"

चपला ने हेमेन को आँखों के इशारे से कहा, "चुप!"

द्विजेन सिर झुकाकर मंद–मंद मुस्कुराने लगा। लीला कुछ देर तक मुँह फुलाकर चुप बैठी रही। फिर बोली, "बच्चों की तरह ताक–झाँककर सबने मिलकर दिमाग खा लिया है।"

हेमेन बोला, "किसका दिमाग? द्विजेन का?"

"और किसका?"

''किसने खाया?''

– "क्यों, तुमने और तुम्हारी पत्नी ने!"

यह सुनकर हेमेन के चेहरे पर जैसे खून उतर आया। वह जलती निगाहों से लीला की ओर देखने लगा।

वह शायद कुछ कर न बैठे, इस डर से चपला साँस रोके उसकी ओर देखती खड़ी रही।

द्विजेन ने हेमेन को हलका–सा धक्का देकर कहा– "चाय पिओगे?"

चपला बोली– "लगता है द्विजेन बाबू ने ठीक से चाय पी नहीं.... चलो, मैं ही बना देती हूँ।"

यह सुनते ही लीला गुस्से से बिफरती हुई बोली– "क्यों, तुम बनाओगी तो उसे अच्छा लगेगा और मैं बनाऊँगी तो नहीं लगेगा?"

चपला ने उस बात का कोई जवाब नहीं दिया और स्टोव जलाने जाने लगी। उसी समय लीला ने चपला की कलाई पकड़कर कहा– "स्टोव जलाकर तो देखो। देखती हूँ मैं भी, कैसे जलाती हो। समझीं?"

दरवाजे से ठोकर खाकर लड़खड़ाती हुई चपला किसी तरह खुद को संभालती हुई एक कुर्सी पर जाकर धम से बैठ गई। लग रहा था, जैसे उसके पूरे शरीर में झुरझुरी–सी दौड़ गई हो।

द्विजेन ने पंखा चलाकर कुर्सी सहित चपला को उठाकर पंखे के नीचे बैठा दिया। फिर धीरे–धीरे उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। यह देखकर लीला व्यंग्य से बोल उठी, "सब जानती हूँ। यही सब तो करते हो तुम!... यूँ ही क्या मैं तुमसे नाराज होती हूँ? जरा–सी नजर हटाई नहीं कि..."

लीला उठ खड़ी हुई। द्विजेन धीरे से हटकर अपनी जगह पर जाकर बैठ गया।

लीला बोली– "तुम्हें जरा भी शर्म नहीं आती? चपला से तुम्हारा कोई खून का रिश्ता नहीं फिर उसे कुर्सी सहित कैसे खींच लाए? और उसके बदन पर हाथ कैसे लगा दिए?"

हेमेन कुछ कहने को कसमसा रहा था, लेकिन चपला ने आँखों से इशारा कर उसे रोक दिया।

लीला आगे बोली– ''और अगर कोई रिश्ता होता भी, तो भी न वह तुम्हारी पत्नी है, न बहन– फिर भी तुमने उसके बदन को हाथ कैसे लगाया? मेरी आँखों के सामने ही सब कुछ! चौबीसों घंटे हाईकोर्ट का नाम लेकर तुम क्या–क्या करते हो, जानती नहीं हूँ क्या?

हेमेन बोला, "कैसे?"

लीला बोली, "इसके ऊपर अब बिजनेस भी शुरू कर दिया है।"

हेमेन बोला, "बिजनेस कर के ही तो.. !"

चपला ने पूछा– "कौन सा बिजनेस? द्विजेन बाबू वाला?"

– "क्यों? जे. बी. एंड कंपनी का। तुम्हें नहीं पता?"

बातचीत जब अचानक बिजनेस की ओर मुड़ गई, तब हेमेन को बहुत राहत महसूस हुई। उसने अपनी चुरुट बहुत देर बाद निकाली, सुलगाई, और एक गहरा कश लेकर बड़े आराम से बोला, "जे. बी. एंड कंपनी .." उसकी बात पूरी होने के पहले ही लीला के चेहरे की ओर देखते हुए चपला बोल पड़ी, "रहने दो..."

हेमेन बोला, "बंगाली फर्म है; इसमें एक भी अंग्रेज़ नहीं है, न यूरोपियन, न अमरीकन, यहाँ तक कि कोई मारवाड़ी भी नहीं।"

हेमेन को लगा कि उसने कंपनी का रहस्य खोलकर सबको चौंका दिया, लेकिन उसकी बात पर कोई नहीं चौंका; असल में कोई उसकी बात सुन ही नहीं रहा था।

फिर भी हेमेन बोलता रहा, "न कोई मारवाड़ी, न भाटिया, न कोई पश्चिमी मुसलमान–सिर्फ बंगाली हिंदू–बस!"

हेमेन बोला– "यह कंपनी युद्ध के समय शुरू हुई थी; पहले रंगून में। तब बहुत से फर्जीवाड़े हुए थे। लेकिन यह कंपनी वैसी नहीं थी। बाकायदा नियमों के अनुसार बनी थी। उस समय द्विजेन के साथ इस कंपनी का कोई संपर्क नहीं था।"

दो मिनट तक अत्यंत तृप्ति के साथ चुरुट के कश लेकर हेमेन बोला, "द्विजेन ने इसकी गुडविल तीन साल पहले खरीदी थी।"

यह कहकर उसने लीला की तरफ बड़े ही प्रसन्न मन से देखा और बोला, "अब वह शीघ्र ही वकालत छोड़ देगा।"

चपला ने पूछा– "क्यों?"

हेमेन जलती हुई चुरुट की ओर स्नेहपूर्वक देखकर बोला, "इस बिजनेस के आगे वकालत क्या चीज है?"

इस पर लीला बोली– "बिजनेस कर पैसे इकठ्ठा करके क्या होगा?"

हेमेन ने हैरानी से लीला की ओर देखा। लीला बोली, "अभी ही तो आँखों के सामने से देखा कि उसने चपला के साथ कैसा बर्ताव किया। चपला उसकी कोई नहीं लगती, फिर भी उसके सिर पर हाथ रखा, पीठ पर हाथ फेरा, और उसके कान से मुँह सटाकर कुछ फुसफुसाया– ये सब क्या गंदी हरकतें नहीं हैं, बोलो तो, देवर जी? मेरी आँखों के सामने ही जब ऐसा किया तो पता नहीं बाहर क्या करता होगा, कौन जाने? मैंने अपने सामने घड़ी रखकर हिसाब किया है। वह रोज ग्यारह–बारह घंटे बाहर रहता है!"

हेमेन मन ही मन कुढ़ रहा था। लीला की बात पूरी होते ही द्विजेन जोर से हँस पड़ा।

अब चपला के बोलने की बारी थी। उसने कहा, "वो तो पूरे अठारह घंटे बाहर रहते हैं!"

लीला बोली– "हाँ, तेरे वो! तेरे उनके गंजे सिर और थुलथुले शरीर को देखकर कौन लड़की उससे सटने आएगी?

यह कह हेमेन की ओर देखकर लीला हँस पड़ी और बोली– "देवर जी, तुम्हारी नाक तो अँगूठे की तरह ऊपर उठी हुई है– बाप रे बाप!"

लीला हँसते–हँसते लोटपोट हो गई। कहने लगी, "चपटे और बेढंगे चेहरे, फूली हुई नाक और मिट–मिटाती आँखों को देखकर कोई लड़की उसके पास भी नहीं फटकेगी।" यह सुनते ही हेमेन उछलकर खड़ा हो गया और बोला, "अच्छा! बड़ी हँसी आ रही है, है न? आज भी अगर मैं आँख मार दूँ, तो बीस–पच्चीस लड़कियाँ धड़धड़ाती हुई आकर यों ही मेरे कदमों में लोटने लगेंगी।"

लीला हँसते–हँसते दुहरी होते हुए बोली, "तुम और आँख मारना! देवर जी आँख भी मारोगे तुम, अब बस यही बाकी रह गया था!"

चपला बोली– "छिः! यह आँख मारना क्या होता है! तुम जो कभी करते ही नहीं हो, उसके बारे में डींगे क्यों हाँक रहे हो?"

फिर चपला लीला से बोली– "नहीं दीदी, कभी नहीं, समझीं! पिछले बीस–पच्चीस सालों से इनके साथ हूँ– एक दिन के लिए भी इन्होंने किसी दूसरी औरत की तरफ आँख उठाकर देखा तक नहीं। इनके साथ कारोबार करनेवाले सभी लोग जानते हैं कि इनका चरित्र कितना निष्कलंक है। कलकत्ता शहर के सारे लोग यह जानते हैं।

हेमेन अत्यंत अपमानित महसूस कर रहा था। चपला की कही कोई बात उसके कान में नहीं जा रही थी। लीला ने उसकी मर्दानगी को जिस तरह ठेस पहुँचाई थी, उससे उसका पूरा शरीर जैसे जल रहा था। वह क्रोध से काँपते हुए खड़ा हुआ और क्रोध में अंधा होकर मेज पर ताबड़तोड़ घूँसे मारते हुए बोला, "भाड़ में जाए ऐसा चरित्र! औरतें तो मेरे आगे–पीछे घूमती ही हैं। अब मैं अपनी सारी पोल–पट्टी खुद ही खोल देता हूँ!"

चपला बोली. "तुम पागल हो गए हो क्या?"

हेमेन गरजकर बोला– "कलकत्ता के सारे बड़े घरों की लड़कियों को मैं सड़क पर लाकर खड़ा कर सकता हूँ, जानती हो लीला?"

चपला बोली, "द्विजेन बाबू...."

द्विजेन बोला, "चलो, मैं तुम लोगों को अपनी गाड़ी से छोड़ देता हूँ।"

हेमेन एक झटके में द्विजेन को धक्का देते हुए बोला, ''क्या समझते हो– कि मैं चरित्र को पकड़कर बैठा हुआ हूँ– कि हेमेन बहुत चरित्रवान पुरुष है– कि औरतें उसे बेवकूफ समझती हैं। सुन लो, अगर चाहूँ तो कलकत्ता को तीन दिन में संथाल परगना बना सकता हूँ।"

हेमेन क्रोध से काँपते हुए बोला, "कलकत्ता तो कलकत्ता है.... लीला और चपला जैसी सारी उल्लू और उजबक...हैं यहाँ। उस बार जब जयपुर गया था पत्थरों के महल देखने, तो लौटते समय ऐसा हुआ कि..."

लेकिन राजपूतनी बाघिन देवला देवी और चंचल कुमारियों के साथ अपने रोमांस की बात हेमेन ने खत्म नहीं की, बस शुरू करके ही छोड़ दी, क्योंकि कोई उसकी बात पर ध्यान ही नहीं दे रहा था। लीला की यथेष्ट थुराई हुई है, यह सोचकर ही उसके मन को शांति मिल रही थी।

एक नया सिगार निकालकर हेमेन को शांति मिल रही है; सिगार जलाकर, उसका कश खींचकर उसका मन शीतल हो गया है। चपला के प्रति, द्विजेन के प्रति, यहाँ तक कि लीला के प्रति भी उसका मन करुणा और ममता से भर गया है।

वह बोला– "चलो लिली, बायस्कोप देखने चलते हैं।"

लेकिन घड़ी में तब चार बज चुके थे; पहले शो में जाकर अब कोई फायदा नहीं था। छह बजे के शो के लिए उसने सबको तैयार होने को कहा। फिर खुद स्टोव जलाया।

लीला ने पूछा, "स्टोव क्यों जलाया?"

– "पानी गर्म करूँगा।"

– "किसलिए?"

– "वाह! देखती नहीं? तुम औरतें तो करोगी नहीं, अब मर्दों को ही मसाला पीसना पड़ेगा, चाय बनानी पड़ेगी, देखो, कैसी बढ़िया चाय बनाता हूँ मैं।"

लेकिन लीला से हेमेन को कोई सहानुभूति या आश्वासन नहीं मिला।

चपला बोली– "अब फिर से चाय पिएगा कौन? किसी को जरूरत नहीं है–"

हेमेन बोला– "जरूर पिएँगे।"

चपला बोली, "कोई नहीं पिएगा। तुम स्टोव बुझा दो।"

हेमेन ने आँख मारकर हल्की सी मुस्कान के साथ कहा– "नानियाँ पिएँगी।"

चपला ने पूछा, "किनकी बात कर रहे हो?"

उसने पति की ओर देखा। वास्तव में हेमेन देखने में अब सुंदर नहीं लग रहा था– फूली हुई नाक, थकी हुई शक्ल, और मिचमिचाती आँखें।

हेमेन बोला, "तुम और लीला।"

लीला बोली– "हम नानी हैं?"

हेमेन बोला, "जानते हो द्विजेन, ये लोग फिर हमारी शक्ल–सूरत का मजाक उड़ाती हैं, कौन कहेगा ये अधेड़ उम्र की औरतें हैं? जरा–सा झटका लगे तो लगता है, अरे बाप रे बाप, दादी–नानी आ गईं फिर से, लगता है न द्विजेन?"

लेकिन द्विजेन कुछ कहता, उससे पहले ही लीला ने एक झटके में स्टोव समेत पैन को उलट दिया। गर्म पानी छलककर चारों ओर फैल गया। हेमेन जलते–जलते

बचा। पानी पड़ने पर स्टोव लहक उठा था। द्विजेन और पैंट्री से आकर ननकू ने स्टोव बुझा दिया।

उस दिन अब सिनेमा जाना नहीं हो पाया। उसके बाद तीन दिन बीत गए।

टी.बी. आर्मस्ट्रॉन्ग कंपनी के पास से हेमेन की मोटर धीरे–धीरे गुजर रही थी; वह सोच रहा था कि एक बार अंदर जाकर श्रीमान द्विजेन को देख आए क्या? मुख्य सड़क के पास एक गली में मोटर रोककर हेमेन आर्मस्ट्रॉन्ग कंपनी की ओर देखने लगा। किसी भी कारोबारी प्रतिष्ठान की ओर देखते ही उसका मन खिल उठता है, उसके जीवन की सारी कल्पनाएँ और मोह जैसे केवल इस कारोबारी दुनिया की भव्यता में ही रम जाते हैं।

हेमेन को लगा, आर्मस्ट्रॉन्ग का फ्लैट कोई बहुत बड़ा नहीं है। वह बस स्टीफन हाउस या 100 नंबर क्लाइव स्ट्रीट की कोई छोटी कोठरी लगता है। हेमेन ने एक गहरी साँस लेकर सोचा कि उसका अपना ऑफिस ही कितना बड़ा है? लेकिन उसने पुताई करवा ली है। एक बंगाली कंपनी आकर सारा काम कर गई है, जबकि आर्मस्ट्रॉन्ग का ऑफिस आज भी वैसा ही फीका और पुराना है, जगह–जगह की दीवारों से चूना झड़ रहा है। हेमेन मोटर गाड़ी से उतर पड़ा।

चलते–चलते उसे लगा कि आजकल सारा व्यापार जैसे ठप पड़ गया है। पिछले डेढ़ साल से लगातार घाटा ही हो रहा है। अगर कुछ दिन और ऐसा ही चला तो वह व्यापार ही बंद कर देगा। बैंक में जो कुछ पैसा अभी है, उसके ब्याज से पति–पत्नी, दोनों की जिंदगी भी ठीक–ठाक चल जाएगी। उनकी कोई संतान भी नहीं है। एक गहरे सुकून के साथ उसने सिगार सुलगाया।

द्विजेन वहाँ से चलने ही वाला था कि पास से ही हेमेन की आवाज सुनाई पड़ी. "हैलो खास्तगीर।"

अत्यंत आग्रह के साथ उसने हेमेन की ओर देखा। उन दोनों के बीच उस दिन वहाँ सिर्फ व्यापार की ही बातें हुईं। तीन दिन पहले के मनमुटाव, तनाव और निराशा का किसी ने कोई जिक्र तक नहीं किया।

कारोबार में आई गिरावट ने ही दोनों को सबसे ज्यादा उदास कर दिया था और उनकी उम्मीदों को तोड़कर रख दिया था।

चार–पाँच दिन बाद हेमेन को उसके ऑफिस से द्विजेन लेने आया। दोनों मोटर गाड़ी घुमाकर साहेबपाड़ा के एक ग्रिल–फिल रेस्त्रां की ओर चल पड़े।

"चलो, सीधे अंदर ही चलते हैं," द्विजेन बोला।

दोनों जाकर बैठ गए। ऑर्डर देने के बाद मेज पर एक के बाद एक खाने की चीजें आती गईं– सूअर, भेड़ और मुर्गे के मांस के तरह–तरह के व्यंजन तथा कॉफ़ी, पुडिंग, फल और आइसक्रीम। हेमेन बोला, "जानते हो द्विजेन, बैंक में अभी भी डेढ़ लाख रुपये पड़े हैं।"

द्विजेन चौंककर बोला, "डेढ़ लाख!"

हेमेन बोला, "अभी भी मेरे ट्रक अच्छे–खासे ऑर्डर लेकर कोलकाता शहर में दौड़ रहे हैं।"

फिर बोला, "इस डेढ़ लाख के ब्याज से मैं और चपला– हम दो लोग आराम और शान–शौकत से जिंदगी काट सकते हैं। फिर बालीगंज वाला घर भी तो है।"

थोड़ी देर रुककर बोला, "और यही करने की सोच रहा हूँ। बिजनेस करके अब और करूँगा भी क्या?"

– "कुछ अच्छा नहीं लगता अब– सच में।"

द्विजेन ने यह पूछने की जरूरत नहीं समझी कि उसे क्यों अच्छा नहीं लगता। बैंक में उसके भी तकरीबन लाख रुपये हैं। बालीगंज में न सही, लेकिन श्यामबाजार में उसका भी अच्छा–खासा मकान है। फिर भी, न जाने क्यों उसके मन में एक गहरी उदासी, एक बेवजह की ऊब ने घर कर लिया है– बहुत दिनों से। हेमेन की यह अभी–अभी उपजी ऊब की तुलना में उसकी ऊब अलग किस्म की है।

हेमेन बोला, "सचमुच में, क्यों कुछ अच्छा नहीं लगता, बता तो द्विजू?"

"क्यों अच्छा नहीं लगता, तू बता सकता है हेमेन?"

"कुछ अजीब–सा लगता है, मन जैसे भटक गया है।"

– "क्यों?"

– "सच में, क्या पैसा ही सब कुछ है, द्विजू?"

द्विजेन के जवाब का इंतजार किए बिना ही हेमेन फिर बोला,"सच कहूँ, लीला ने जो कहा था, उससे मेरे मन में भी खटका लग गया है।"

द्विजेन सिर झुकाए चुपचाप खा रहा था।

हेमेन बोला, "यह तोंद, यह गंजा सिर, यह बेडौल चेहरा, फूली हुई नाक और मिचमिचाती हुई आँखें– सच बताओ तो, मैं क्या हो गया हूँ?"

द्विजेन बोला, "इसे हल्के से लो न यार..."

– "हल्के से लेकर क्या होगा? शक्ल ही ऐसी भद्दी हो गई है, कि कोई देख कर ही भड़क जाए। उस दिन एक लड़की के पीछे पड़ा था...."

– "क्या कह रहे हो!"

"लड़कियों के प्रति मेरा आकर्षण नहीं, ऐसा भी नहीं है। लेकिन चपला को इस बात की भनक तक नहीं है। इतने दिन तक एंग्लो–इंडियन लड़कियों को साथ लेकर सिनेमा दिखाकर यह सोचता था कि मन की सारी साध पूरी हो गई। लेकिन नहीं, सिर्फ उतने से काम नहीं चलने वाला...लगता है कुछ और चाहिए?"

द्विजेन बोला, "क्यों, चपला तो है ही न?"

हेमेन ने रोस्ट खाते हुए चाकू पर एक नजर डाली, फिर बोला,"चपला तो है ही। कितनी अच्छी पत्नी है, उसके बिना मेरा काम चलता? उसकी तरह की औरतों के

खिलाफ कोई शिकायत हो ही नहीं सकती।" फिर थोड़ा रुककर बोला, "लेकिन जानते हो, मैं क्या चाहता हूँ?"

उसकी बात सुनते हुए द्विजेन ने अपना सिर उठाया और एक बढ़िया चाकू उठा लिया।

उसी समय हेमेन बोला, "मेरी चाहत है कि औरतें मुझे देखकर अपना अस्तित्व भूल जाएँ, खुद को मेरे आगे समर्पित कर दें। बताओ द्विजेन, कौन मर्द यह नहीं चाहता?"

इसके बाद दो–तीन मिनट तक हेमेन चुप रहा और ताबड़तोड़ काँटा–चाकू चलाकर खाने लगा। थोड़ा खा लेने के बाद फिर बोल पड़ा, "लेकिन लीला ने जो कहा, वह ठीक ही है। मैं वैसा मर्द नहीं हूँ, जिसके पीछे लड़कियाँ पागल होकर घूमें। भला क्यों घूमेंगी मेरे पीछे? आखिर मैं हूँ ही क्या?

उसकी बात सुनकर द्विजेन बोला, "तो मैं भी क्या हूँ?"

"अरे भाई तुम्हारा चेहरा सुंदर है। अगर मुझे तुम्हारी सूरत मिल जाए तो मैं तुम्हें अपनी सारी गुडविल देने को तैयार हूँ।"

"तुम तो हमेशा से ही लड़कियाँ पटाते आए हो, मैं नहीं जानता क्या? इंग्लैंड में, इंडिया में– अमीर बाप के बेटे रहे हो, खुद कमाया है, और उसके बाद ऐसी सुंदर शक्ल–सूरत– मुझे पता है। तुमने ढेरों लड़कियाँ पटाई हैं।

हेमेन अपने मन की इस वेदना को किसी भी तरह बाहर नहीं निकल पा रहा था। असमर्थता की यह टीस उसे कष्ट पहुँचा रही थी।

द्विजेन बोला, "पर क्या सिर्फ लड़कियाँ पटाना ही सब कुछ होता है?"

हेमेन ने कहा, "लेकिन तुमने तो पटाई हैं... बहुत सारी!"

"तो उससे क्या होता है हेमेन?"

"बहुत कुछ होता है! जिंदगी में बहुत मजा लूटा है तुमने। अब तो आँखें बंद करके आराम से मर सकते हो; है कि नहीं?

द्विजेन के किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना हेमेन बोला, "सकना तो चाहिए! अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो पूरी शांति से मर जाता।

गहरे क्षोभ में भर कर हेमेन ने कॉफी का प्याला उठा लिया, फिर बोला, "देखो, अब जब तुम अधेड़ हो गए हो, फिर भी चार–पाँच बैरिस्टर की बीवियों से तुम्हारा हँसी–मजाक होता रहता है, मैंने खुद अपनी आँखों से देखा है!"

द्विजेन बोला: "केवल हँसी–ठिठोली हेमेन, और कुछ नहीं।"

हेमेन बोला, "लेकिन वह हँसी–ठिठोली ही तो बहुत मधुर होती है... मैंने तो खुद ही निहार–निहारकर कितनी बार देखा है।

हमारे साथ भला हँसी–ठिठोली कौन करने आती हैं?"

– "क्यों? चपला?"

– "मजाक मत करो द्विजेन..."

उसकी बात पर द्विजेन बोला, "लेकिन अपनी पत्नी के साथ हँसी–मजाक करना ही तो सबसे अच्छा लगता है।"

एक सिगार जलाकर हेमेन बोला, "अवश्य, यहीं तो तुम धोखा खा गए।"

द्विजेन किसी एक जगह थोड़ा धोखा खा चुका है यह सोचकर हेमेन ने संतोष से सिगार का एक कश लिया।

लेकिन तभी द्विजेन के सुंदर चेहरे, उसकी बढ़िया टाई, और बैरिस्टर पत्नियों के साथ आवारा हरकतों की याद आते ही उसके दिल में एक गहरी टीस उठी। सिगार का कश लेते हुए बोला, "तुम्हारा कारोबार चौपट हो जाए.. तो भी क्या?

जीवन की असली चीज तो तुमने पा ली है– औरतें तुम्हें चाहती हैं। तुम अपने रसिकता दूसरी जगह जाकर मिटा सकते हो..."

उसी दरम्यान द्विजेन ने सिगरेट केस निकाला।

हेमेन बोला," तुम्हारा तो मजा ही मजा है। लीला ने तुम्हारे मन को तोड़कर रख दिया है, और यही तुम्हारे लिए अच्छा है।

अगर लीला एक आदर्श पत्नी होती तो शायद तुम लड़कियों से इश्कबाजी करने की जरूरत भी महसूस नहीं करते। हो सकता है वह सब तुम्हें अच्छा भी न लगता, है न?

थोड़ी देर रुककर हेमेन ने बोलना जारी रखा, "हालाँकि, इशकबाजी हमेशा अच्छी ही लगती है, खासकर तब जब तुम्हारे जैसे आदमी जो औरतों को हर तरफ से अपनी ओर आकर्षित कर लेता हो। लेकिन लीला से मन उचट जाने के बाद जिस तरह तुम अकेले अपनी गाड़ी लेकर एक विरही आशिक की तरह घूमते रहते हो, क्या ये सब तुम कर पाते, अगर लीला अलग स्वभाव की होती?"

क्षोभ, आकांक्षा और जलन से हेमेन का मन भर उठा। सोचने लगा, काश उसे भी द्विजेन के जीवन का एक दिन मिल जाता!

द्विजेन ने भले ही मुँहफट पत्नी पाई है, लेकिन दूसरों की पत्नियों को वह जिस तरह संभालता है, दूसरा कोई वैसा नहीं कर सकता।

हेमेन बोला, "क्या यह बस रसिकता है? तुम उनके साथ क्या करते हो, क्या नहीं करते, अपनी इस जिंदगी में कितने घर उजाड़े होंगे, उसका हिसाब किसके पास है?"

थोड़ी देर रुककर हेमेन फिर बोल, "और मैं? अगर पूरी जिंदगी न्योछावर कर दूँ, तो भी किसी औरत का सच्चा प्यार नहीं मिलेगा मुझे। और तुम्हें? न जाने कितनी औरतें खुद–ब–खुद तुम्हारे पास चली आती हैं।"

"ऐसा क्यों होता है, द्विजु?"

फिर हेमेन खुद ही बोल उठा, "हाँ, शायद मेरी शक्ल–सूरत की वजह से? यह शक्ल लेकर तो लड़कियों को पटाना मुश्किल ही है, द्विजेन।"

निराशा के गहरे अंधे कुएँ में डूबकर हेमेन चुपचाप सिगार पीता रहा। जिंदगी में उसे न तो सच्चा प्रेम मिला, न प्रणय हुआ, और न ही ढंग की इश्कबाजी हो पाई। अगर किसी की बीवी के चक्कर में मुकदमेबाज़ी में भी फँसता, तो भी शायद दिल को कुछ तसल्ली हो जाती। अब तो ऐसा लगता है जैसे उसका खून, मांस, सोच, विवेक– सब कुछ उसे काट रहा है, धीरे–धीरे कुतर रहा है। क्यों हुआ ऐसा? पूरी जिंदगी में से असल जिंदगी कहे जाने वाले समय को उसने गँवारों की तरह क्यों गँवा दिया? औरतें पटाने की भी एक उम्र होती है, तीस के बाद वह बात कहाँ?

हेमेन का पूरा चेहरा और गंजा सिर पसीने से भीग उठा। वह गलती से सिगार का जलता सिरा ही मुँह में डाल बैठा, जिससे उसे काफी तकलीफ हुई। इस बिंदु पर आकर जैसे उसकी सारी पीड़ा का अंत हो गया।

द्विजेन बोला, "यह कहना ठीक होगा कि अब हम बूढ़े हो गए हैं, अब इन सब बातों से हमें क्या लेना–देना?

यह सुनते ही हेमेन तपाक से बोला, "कौन बूढ़ा हुआ है? तुम भी नहीं और मैं भी नहीं।"

इस पर द्विजेन बोला, "पच्चीस के बाद हर कोई बूढ़ा हो जाता है। औरतों से खेलने की वाजिब उम्र सत्रह, अठारह, बीस–बाईस की होती है।"

उसकी बात सुनकर हेमेन का मुँह आश्चर्य से खुला का खुला रह गया। उसने उसी भंगिमा में द्विजेन की ओर देखा।

द्विजेन बोला, मैंने भी उसी उम्र में ही..."

हेमेन बोला, "क्यों? अभी भी तो..."

द्विजेन ने हेमेन की बात का प्रतिकार करते हुए कहा, "नहीं, नहीं... ऐसा कुछ भी नहीं है। मैं तुम्हारे हाथ छूकर कहता हूँ, अब मैं बस थोड़ी–सी शांति चाहता हूँ। औरतों के पीछे–पीछे घूमकर नहीं हेमेन, बल्कि अपने ही घर में, अपनी ही पत्नी के साथ।

तुम नहीं जानते, मुझे कोई भी प्यार नहीं करता, कोई नहीं।" हेमेन ने पूछा, "कोई नहीं?"

द्विजेन ने उत्तर दिया, "नहीं।"

हेमेन मुँह बाये उसकी ओर देखता रहा।

द्विजेन बोला,"बीस साल की लड़कियाँ भला मुझे क्यों प्यार करेंगी? मेरी उम्र अब पचास के करीब पहुँच रही है। चाहे वे शरीफ़ घरों की लड़कियाँ हों या एंग्लो–इंडियन लड़कियाँ हों, अठारह, बीस, बाईस साल की लड़कियों के दिल पर अपना हक हमने बहुत पहले गँवा दिया है। अब तो हमें वो लोग ताऊ समझती होंगी, या शायद दादा जी भी।

द्विजेन की इस बात पर हेमेन को बहुत मजा आया और वह 'ही ही' करके हँस पड़ा। द्विजेन की इस साफगोई ने हेमेन के दिल का बोझ कुछ हल्का कर दिया। सच में, द्विजेन जो कह रहा है, असल बात तो वही है। बैरिस्टर है न, मीठी बात से सत्य का सार निकाल लाता है।

थोड़ी देर बाद, हेमेन बहुत गंभीरता से बोला, "बीस नहीं सही, पच्चीस भी नहीं सही, अंततः तीस साल की औरतें?"

द्विजेन बोला, "वे भी नहीं। उनके लिए तो छत्तीस–सैंतीस साल के जवान लड़के हैं ही। दुनिया में सुंदरता की कोई कमी नहीं है। मैंने बहुत देखा है, देखा है कि वे उम्रदराज औरतें तो बीस–पच्चीस साल के लड़कों के साथ भी जमकर प्रेम करती हैं, पूरी दीवानगी के साथ। मैंने बहुत देखा है यह सब।"

द्विजेन बोलता रहा, "हाँ, चालीस–पैंतालीस–पचास साल की कोई गृहिणी तुम्हारे प्रति एक पल के लिए नरम हो सकती है, हो सकता है कि उसे देखकर तुम भी गदगद हो जाओ, लेकिन वह प्रेम नहीं है, हेमेन! कुछ भी नहीं है। पूरी तरह से बकवास है।

अपना सिर उठाकर द्विजेन फिर बोला, "कल्पना करो, हम मोटर गाड़ी से कहीं जा रहे हैं। हमारे साथ एक बीस साल का और एक तीस साल का युवक है। पास की एक और मोटर गाड़ी में हम तीन औरतें देखते हैं– एक अठारह की है, एक चालीस की और एक पचास साल की। मान लो, तीनों ही देखने में बहुत सुंदर हैं। फिर भी, मेरा मन शायद उस अठारह साल की लड़की की तरफ ही जाएगा।

हेमेन बोला, "हाँ, जाएगा।"

द्विजेन बोला, "लेकिन सारी दुनिया की संपत्ति उस अठारह साल की लड़की के सामने रखने पर भी क्या उसका मन इस पचास साल के बूढ़े की तरफ आकर्षित होगा?"

हेमेन मुँह बाये द्विजेन को देखता रहा, फिर–ही ही ही कर हँसने लगा।

द्विजेन बोला, "वह तो मेरे भतीजे को प्यार करना चाहेगी या फिर मेरे बेटे को, मुझे तो किसी भी हाल में नहीं!"

"अब प्यार, रोमांस, यहाँ तक कि कामना की भी बात मत छेड़ो हेमेन! उन सबके बारे में सोचते ही सिर में दर्द हो जाता है।

जेब से दियासलाई निकालते हुए द्विजेन बोला, "हमारी इस ढलती उम्र में सौंदर्य और प्रेम के बारे में सोचने पर यह जिंदगी बेकार–सी लगती है। "सिगरेट बुझ चुकी थी; उसे फिर से जलाकर द्विजेन बोला, "अब हमारी जेब में ऐसा कुछ नहीं आएगा, सिवाय अपने घर की पत्नी के। हमारे लिए अब और कुछ भी नहीं बचा है।

द्विजेन के घर उसकी पत्नी लीला है और उसके घर उसकी पत्नी चपला है, यह सोचकर हेमेन को परम तृप्ति का अनुभव हुआ।

रेस्त्रां का बिल हेमेन ने खुद ही चुका दिया।

द्विजेन बोला, "तुम अभी भी बच्चे हो। अहा रे, तुम्हारी तो माँ भी नहीं है, बहन भी नहीं है, तुम्हारे बारे मे सोचकर बड़ा कष्ट होता है।

साँझ हो गई थी। हेमेन बोला, "द्विजु, चलो न टालीगंज, अलीपुर, चेतला, बेहाला घूम आएँ।"

उसका प्रस्ताव सुनकर द्विजेन बोला,"सच में? इतनी सारी जगह घूमने जाओगे?"

"बिलकुल। "हेमेन ने जोर से सिर हिलाते हुए कहा।

"क्यों?"

"बस यों ही।"

"किसी कारोबार वगैरह के सिलसिले में?"

"नहीं।"

"यों ही? मन के भीतर बहुत–सी बुरी आदतें जमा हो गई थीं..."

"लेकिन लौटते–लौटते तो बहुत रात हो जाएगी।"

"तो हो जाए न।"

द्विजेन बोला– "तुम जाओ; आज मुझे कुछ काम है।"

बिजनेस! इसके लिए तो द्विजेन को छोड़ ही सकता है वह। हेमेन का मन प्रेम, वासना और स्त्रियों में हटकर अब पूरी श्रद्धा और आत्मसंतोष के साथ फिर से व्यापार की गद्दी पर जाकर बैठ गया। अब उसे अपना जीवन असफल नहीं लग रहा था। उसके प्राणों में अब कोई चुभन नहीं थी। पूरी दुनिया उसे अब अकूत संभावनाओं से भरी लगने लगी थी।

हेमेन ने आकाश की तरफ देखा। समस्त कलकत्ता का आकाश शरीफे के बीज की तरह के काले अँधेरे से भर गया था। बादलों का अँधेरा छाया हुआ था। टिप–टिप कर बूँदा–बूँदी हो रही थी। ऐसे वातावरण में उसका मन खुश हो गया। उसे चपला की याद आई। अपनी पत्नी के स्नेह और प्रेम को याद कर उसका मन प्रफुल्लित हो उठा। हेमेन को लगा कि पूरे कलकत्ते की सड़कों पर आज उससे ज्यादा संतुष्ट व्यक्ति कोई नहीं है। आज पूरी रात वह चपला को प्यार करेगा और इस बरसात वाली रात में उसे एक असीम शांति मिलेगी।

...लेकिन फिर भी वह अभी चपला के पास नहीं जाएगा।

बिजनेस इज बिजनेस। वह एक व्यापारी है।

उसने द्विजेन से वादा किया था कि वे टालीगंज, अलीपुर, चेतला, बेहाला घूमकर आएँगे।

उनका वह घूमना किसी व्यापारिक प्रयोजन से नहीं था फिर भी, अब जब कह दिया है, तो वह अपनी जुबान से पीछे नहीं हटेगा। पीछे हटना कमजोरी हुआ करती है और किसी व्यापारी के लिए ऐसी ढिलाई...उसके व्यापार के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट बन जाती है।

स्टीयरिंग व्हील घुमाकर हेमेन रवाना हो गया।

एक टैक्सी लेकर द्विजेन भी उसके पीछे–पीछे चला।

जब द्विजेन बालीगंज एवेन्यू की ओर मुड़ा, उसके बहुत पहले ही हेमेन की मोटर गाड़ी टालीगंज की ओर दौड़ चुकी थी। द्विजेन इस जिद्दी को बहुत अच्छी तरह जानता था। वह जानता था कि वह रात बारह बजे से पहले अपने घर नहीं लौटेगा।

तीसरी मंजिल पर जाने के बाद द्विजेन ने देखा कि चपला लेटी हुई है। उसकी भारी मांसल देह को देखकर पहले तो उसका मन थोड़ा असहज हो गया, लेकिन फिर उसे यह याद आया कि इस मांसल देह के भीतर का हृदय कितना सुंदर और कोमल है। द्विजेन ने उस औरत के साथ आधा–एक–दो घंटे बिताए। लेकिन उसके बाद–रात के साढ़े दस बज गए। द्विजेन के दिल की धड़कन तेज़ होने लगी। किसी अक्खड़ टट्टू की तरह खट–खट–खट–खट करते हुए हेमेन भी किसी वक्त आ सकता था।

वह झुँझला उठा।

लेकिन उसे तो निकलना ही पड़ता वहाँ से। भले ही वह एक ड्रॉइंग रूम से दूसरे ड्रॉइंग रूम में घूमता फिरता हो, लेकिन अंत में उसे निकलना ही पड़ता है।

घर की औरतें भी चाहती हैं कि उनके पति वापस आएँ और अतिथि निकल जाएँ... निकल जाएँ।

...और वह निकल ही गया।

❑❑❑

संपर्कः

विजय कुमार यादव– फ्लैट नं. 3डी, तृतीय तल, सुरभि अपार्टमेंट, 4/2 बनर्जीपाड़ा रोड, तालपुकुर, बैरकपुर, कोलकाता 700123, ईमेलः vijayuco@yahoo.com, मो. 9619888793

लोक–लाज की गांठरी पहिले देइ डुबाय।
प्रेम–सरोवर पंथ में पाछें राखै पाय।।

– **भारतेंदु हरिश्चंद्र**

कमाने* रत्नमान

वीरभद्र कार्कीढोली**

सायरन की ज़ोरदार आवाज फिर एक बार बजने के बाद रत्नमान शीघ्रता करने लगा। अब तक वह एक बोझा घास ला चुका है। साथ ही वह घर के कई सारे काम भी कर चुका है। गाय का गोबर साफ करना, घास देना, बकरियों के रखने की जगह साफ करना, दाना और घास देना। घर के चारों ओर झाड़ू–बुहार करना, साग–बारी में पानी देना आदि काम रत्नमान ने सामरन बजने से पहले ही कर लिए हैं। ये काम उसकी सुबह के रूटीन के काम हैं।

रत्नमान ने रूपा की दी हुई चाय पीकर दो हँसुए धार किए। एक रूपा की टोकरी में रख दिया और दूसरा अपने कुदाल के साथ रख लिया।

रत्नमान अंदर घुसा और बच्चों पर बिगड़ने लगा, ''क्या कर रहे हो तुम लोग? आजकल देख रहा हूँ, काफी देर से उठ रहे हो! कितना कहता हूँ, सुबह जल्दी उठकर पढ़ा करो, खाता–किताबें अच्छी तरह रखा करो, किताबों के कोने मुड़ने नहीं चाहिए। मैला मत करो और माँ के काम में हाथ बंटाया करो। कभी–कभी गाय–बकरियों की जगह साफ कर दो तो मेरा काम कुछ हल्का हो जाता। वह भी नहीं! कब बुद्धि आएगी तुम लोगों को? काम करना बिलकुल नहीं चाहते! ऐसा कब तक चलेगा? हमारे जमाने में तो इतनी सुख–सुविधाएँ नहीं थीं। कितना दुख, कष्ट उठाकर थोड़ी–बहुत पढ़ाई की! एक ही कपड़े में पूरा साल गुजारना पड़ता था। हमें पढ़ाने का विचार ही नहीं था माँ–बाप का! बैल की तरह जुतना पड़ता था काम में। सुबह मुर्गे की बांग के साथ नहीं उठ पाते तो बिस्तर पर ही धुनाई शुरू हो जाती थी। हमने तो कभी बड़ों का कहना अस्वीकार नहीं किया। बड़ों से वैसे ही डर से काँपते थे। स्कूल में गुरुओं की तो बात ही क्या, वैसे ही डरे रहते थे। सभी को नमस्कार और सत्कार करते थे। लेकिन, आज के बच्चे! पैदा होते ही किसी को कुछ नहीं मानते! कैसे काटोगे जिंदगी...?

अच्छी तरह पढ़ने को कहा है! इस बार क्लास में फर्स्ट नहीं आए तो देख लेना, तुम लोगों का क्या हाल करूँगा! मैं आधी रात को ही उठकर इतना कष्ट कर रहा

---

* 'कमाने' का अर्थ– चाय बागान

** सुप्रसिद्ध कवि व लेखक। प्रक्रिया पत्रिका का संपादन।

हूँ। यह सब किसके लिए कर रहा हूँ मैं, अपने लिए? जमाना कहाँ से कहाँ पहुँच चुका है। जैसे–तैसे सिर्फ पास होने से काम नहीं चलने वाला। पढ़ाई के साथ–साथ क्षमताएँ भी होनी चाहिए। बचपन से ही अच्छी आदत डालोगे, तो बड़े होकर वही आदत रहेगी। छोटी उम्र में ही आदत बिगड़ गई, तो बड़े होकर सुधरने वाली नहीं। उस समय पछताने से कुछ नहीं होने वाला। ये देखो, हमें हमारे माँ–बाप मुर्गे की बांग के साथ उठाते थे और अभी तक वह आदत गई नहीं है। मुर्गे की बांग के साथ ही आँख खुल जाती है। मेरी बातें समझने की कोशिश करो। अभी मेरी बातें बुरी लग रही होंगी, बाद में यही बातें याद करोगे'', रत्नमान ने एक लंबा भाषण ही दे डाला।

रत्नमान का लंबा भाषण सुनकर रूपा को गुस्सा आ गया, "इस आदमी को कभी–कभार क्या हो जाता है? पढ़ तो रहे हैं बच्चे, क्यों बेकार में चिल्ला रहे हैं? ठीक ही तो हैं बच्चे पढ़ाई में ही जुटे हुए हैं। पहले का जमाना और आज का जमाना कहाँ एक है! छोड़िए वह सब, आइए, सब लोग खाना खा लेते हैं। आठ बजे काम पर नहीं पहुँचे, तो लौटना पड़ेगा। मालूम ही होगा, नया साहब आया है! गाछ (चाय के पौधे) पर पत्तियाँ नहीं हैं। ठिका पूरा करना ही होगा। एक दिन नागा रहने भी नहीं देता यह चौकीदार! अपने को साहेब से भी बड़ा मानता है। न ही पढ़ा–लिखा है। मेरे पैर की उँगलियों के बीच छाले पड़ गए हैं, चलने में भी परेशानी हो रही है। छुट्टी माँगने पर भी नहीं देता चपरासी। आजकल गाछ में पता नहीं कौन–कौन सी दवा छिड़कते हैं कि कई प्रकार के कीड़े हो रहे हैं। उनके कारण ही शरीर पर फोड़े से हो रहे हैं। खुजली के मारे रहना मुश्किल हो गया है। अस्पताल में जाऊँ तो वह एक ही मलहम देता है सबको। सोचकर भी बुरा लगता है। बेकार आ गई चाय बागान के इस इलाके में।"

जब रूपा नाराज होती है तो रत्नमान चुप कर जाता है, कुछ नहीं बोलता। वह रूपा को कुछ नहीं कहता। ज्यादा ही हुआ, तो वह कुछ देर के लिए बाहर निकल जाया करता है। लेकिन रूपा को कुछ भी जवाब नहीं देता। कभी–कभी इतना ही कहता है, "हो तो गया, अब अधिक मत चिल्लाओ न! ऐसा ही तो होता है बागानों में! इससे अधिक सुख कहाँ मिलता है! तुम्हारी सखियों को भी कहाँ अधिक सुख मिला है! कईयों के पति शराब पीकर धुत्त रहते हैं और घर में आकर झगड़ा करते हैं। उस प्रकार की अशांति तो तुम्हें नहीं है न?"

बच्चों के साथ बैठकर रत्नमान ने भोजन किया। रूपा ने भी भोजन किया और फिर दोपहर के लिए रोटी और तरकारी की पोटली बनाकर टोकरी में रखी। एक बोतल चाय भी रखी। रत्नमान के लिए भी रोटी तरकारी और चाय की बोतल उसके झोले में डाल दी। फिर हँसुआ और कुदाल को बगल में रख दिया। बच्चों के लिए भी दोपहर का खाना ढककर रख दिया। शीघ्रता के साथ बर्तन माँजकर, रूपा टोकरी लेकर अपने कर्मस्थल की ओर चल दी।

इधर रत्नमान ने भी झोला उठाया, हाथ में कुदाल और हँसिया पकड़कर बागान की ओर चलने लगा। रत्नमान थोड़ा–बहुत पढ़ा है। फिर भी वह बागान में अन्य मर्दों (चाय बागान में काम करने वाले पुरुषकर्मी) के साथ ही कुदाल चलाता है।

दोपहर के बारह बजते ही फिर एक बार सामरन बजा। खाने का सामरन। सभी कुली बागान से खाने के लिए निकल गए। सड़क पर ही कतार में बैठकर सभी ने अपने–अपने खाने की पोटलियाँ खोलीं। रत्नमान ने भी साग के साथ रोटियाँ खाईं और बोतल से ठंडी चाय पी। खाने–पीने के बाद उसने खाली बोतल झोले में डालकर पेड़ की टहनी में झुला दिया। कुछ ऊपर की ओर एक ऊँचे पत्थर पर वह बैठ गया। वहाँ से नदी दिखाई देती है। नदी के उस पार का बाजार दिखाई देता है, थाना दिखता है, कृषि विभाग का ऑफिस दिखता है, पूरी बस्ती ही दिखाई पड़ती है। चारों ओर उसने एक नजर देखा। गाँव के खेतों में किसान दौना कर रहे हैं। इसी प्रकार के एक गाँव से तो वह रूपा को भगा लाया था। वह रूपा को खुद ही पसंद कर लाया था और आज भी उतना ही प्यार करता है उसे।

रूपा को भगाते समय रत्नमान ने देवराली पत्थर (जिसे ईश्वर के रूप में पूजा–अर्चना की जाती है) पर हाथ रखकर उसे हर प्रकार से सुख देने और साथ जीने–मरने की कसम खाई थी। आज वह जानता है कि रूपा को बागान के इस इलाके में असीम कष्टों का सामना करना पड़ रहा है। अलहे सुबह उठना होता है, पकाना पड़ता है, मन हो न हो, सुबह ही खाना पड़ता है। सारा दिन धूप में जलकर और वर्षा के मौसम में पानी में भीगकर चार बजाना ही होता है। शाम को घर पहुँचकर भी सारा काम स्वयं करना पड़ता है– खाना बनाना, खाना, बर्तन मांजना। सोलह–सत्रह घंटे की हाड़तोड़ मेहनत के बाद बिस्तर पर लेटते ही कब नींद आ जाती है, पता नहीं चलता। कुछ नया सोचने या करने की फुर्सत ही नहीं। कभी कहीं जाने या किसी नई जगह पर घूमने का मौका कभी नहीं मिलता। शनिवार की प्रतीक्षा में ही जीवन का अधिकतर समय गुजर जाता है। हफ्ते में ढाई सौ रुपए लेकर बाजार भरना, मांस का पैसा, बिजली का बिल, विवाह–संस्कार आदि के खर्च, बच्चों के स्कूल का शुल्क, खाता–किताबें सभी निबटाने के बाद हाथ में दस रुपए भी नहीं बच पाते। फिर वही दिनचर्या, क्या और किस प्रकार इससे बाहर सोचा जाए! रत्नमान का दिमाग भारी हो जाता है। वह उदास हो जाता है। फिर उसने दूर सड़क पर दौड़ रही सफेद रंग की बॉलेरो गाड़ी को देखा। उसकी आँखें कुछ धुँधली सी हो गईं। अचानक ऊपर आकाश में एक हवाई जहाज उड़कर गया और बादलों में कहाँ खो गया। सभी ने हवाई जहाज की ओर देखा। रत्नमान ने भी उसे देखा। ठीक इसी समय सामरन बज गया। सभी कर्मी कुदाल और हँसिया लेकर चाय बागान में घुस गए और बेतरतीब उग आई झाड़ियों को उखाड़कर फेंकने लगे। वह भी अपने काम पर लग गया।

शाम के चार बजे सामरन की आवाज के साथ सभी घर की ओर चले गए। लेकिन रत्नमान फिर घास काटने लगा।

घास का बोझा घर के पास ही, कुछ नीचे, एक चबूतरे पर रखकर उसने चेहरे का पसीना पोंछा, मस्तक पर दाम्लो (पीठ पर लदे बोझे के सहारे के लिए बँधी डोरी का मस्तक का चपटा भाग) के निशान को सहलाया। दुख रहे गर्दन की नसों को हाथों से मालिश की और वहीं पर बैठ गया। फिर वह अभी–अभी उग आए चाँद को निहारने लगा। वह मन ही मन अपनी स्थिति को धिक्कारने लगा है। यह भी क्या जिंदगी मिली मुझे! न तो घर को सुखी रख पाया, न बच्चों को अच्छे स्कूल में पढ़ा पाया, न रूपा को अच्छा खाना–पहनावा नसीब हुआ, न ही अच्छा रहन–सहन का बंदोबस्त हो पाया। बेचारी ने कब से कान में सोने के दो टॉप पहनने की इच्छा व्यक्त की थी, आज तक पूरा नहीं कर पाया। हफ्तेभर गुलामी करने के बाद दोनों के मिलाकर पाँच सौ रुपए होते हैं, कितना और क्या–क्या किया जाए! खर्चे निबटाने के बाद हाथों में सौ रुपए नहीं बच पाते! वर्ष में एक बार बोनस मिलता है, दशहरे और दिवाली के खर्चे के लिए ही पूरा नहीं हो पाता। क्या करूँ, जो स्थिति में कुछ सुधार हो। क्या सारी जिंदगी इसी तरह कट जाएगी? रत्नमान ने फिर से दुखते मस्तक पर हाथ फेरा। उसने रूपा के बारे में सोचा, कितनी सुंदर और मोटी–घाटी थी जब मैं ले आया था उसे। बागान में लगने के बाद उसका शरीर घटकर आधा रह गया है, चेहरे की सारी रौनक भी जाती रही। शुक्र है, औरों की तरह नहीं, समझदार है। मेरा परिश्रम, मेरी मजबूरियों और सुख–दुख सभी कुछ समझती है। रूपा को जब भगा लाया था, सीधे किसी शहर में चला जाता तो शायद आज हमारा यह हाल नहीं होता! कुछ न कुछ कर गुजारा कर लेते हम लोग। रूपा और बच्चों को इस प्रकार के नरक में किसी तरह गुजारा नहीं करना पड़ता। क्या करें बागान में सिर्फ मरने के समय तक किसी प्रकार जिंदा रहना है। उसने लंबा प्रश्वांस छोड़ा।

इस प्रकार सोचते हुए रत्नमान को अपने पिता व दादा–परदादाओं की याद आने लगी। मन ही मन उन्हें धिक्कारा छिः! बुद्धिहीन स्साले! कुछ भी सोच पाने में असमर्थ! पता नहीं क्या देखकर ठहरे थे इस बागान में! बच्चों, पोते–पोतियों के भविष्य के बारे में सोच नहीं पाए! आने वाला समय कैसा होगा, उनकी समझ में क्यों नहीं आई? दूसरों की गुलामी कर खुश होने वाले, स्साले मूर्ख! ऐसे लोग! क्यों हमें इस प्रकार की जगह पर जन्म दिया? न अपना घर है, न जमीन–जायदाद, न वर्तमान है और न ही भविष्य, न तो कुछ करने का अवसर ही मिलता है, न सरकारी सहयोग सहूलियत है, न अच्छा समाज है और न ही अच्छे विचार हैं! केवल ईर्ष्या, जलन, झगड़े, गंदी सोच, हीन भावना आदि का बोलबाला है। सकारात्मक कुछ भी नहीं! सुबह से शाम तक मशीन की तरह काम करना पड़ता है। मशीन के आराम और जतन का ख़्याल किया जाता है। हम तो मशीन से भी गए गुजरे हैं। हफ्ते में खर्च लिया, खर्च

किया और फिर वही सफर। ढाई सौ से आगे कुछ भी सोचना संभव नहीं! बड़े लोग जितने रुपये एक समय खाने में खर्च कर देते हैं, उतने रुपयों से हमें पूरे हफ्ते का गुजारा करना पड़ता है। हमसे अभागे तो शायद कोई नहीं है इस संसार में! जिस पर हर साल मालिक नुकसान मात्र होने की बात कहता है। कभी फायदा होने की बात सुनने को नहीं मिलती! पिछले साल भी सर्दी के मौसम भर बागान बंद रहा। खर्च भी नहीं दिया। मालिक को हमसे तनिक भी हमदर्दी या दया नहीं है। हममें और उसकी गाड़ी में कोई भेद नहीं। वह गाड़ी में सवार होकर कहाँ से कहाँ पहुँचता है और जब इच्छा हो, उसे निर्दयता के साथ बेच देता है। बागान बंद करना उसके लिए कुछ भी नहीं! मजदूरों के ग्रास और निवास के बारे में उसे चिंता ही नहीं! सर्दियों में कमान बंद कर देता है और जब पत्ते निकलने लगते हैं, तब आकर फिर खोल लेता है। ऊपर से किसी का भय ही नहीं! वह हम पर अत्याचार करता है और हमें ही जोतकर मुनाफा कमाता है। इसका विरोध करने वाला कोई नहीं! इस बार भी सुन रहा हूँ, हानि उठाने में अपने को असमर्थ बता रहा है! जलावन के पैसे, हक की छुट्टी के पैसे, बीमारी खर्च कुछ भी तो नहीं दिया इसने ...!

इस प्रकार सोचते हुए अचानक उसकी कानों में झिंगुर की आवाज पड़ी। उसने चारों ओर देखा, अंधेरा घिर आया था। वह शीघ्रता से उठा, बोझा उठाया और चलने लगा। घर में पहुँचकर घास रखा ही था कि रूपा ने वहीं पर चाय का कटोरा रखते हुए कहा, "क्यों इतनी देर लगा दी? अंधेरा घिर आने का भी पता नहीं चला? कहाँ गए थे जो इतनी देर हो गई? मेरा दिल कितना धड़क रहा था, पता है? हाँ, पहले चाय पी लीजिए, फिर घास डालना। पानी और साबुन वहीं पर है, हाथ–पैर धो लीजिए। खाना भी तैयार है। मैं तो बच्चों को लेकर ढूँढ़ने को निकलने ही वाली थी। बोझा भी कुछ छोटा ले आना चाहिए! अपने शरीर का भी ध्यान रखा कीजिए।"

रत्नमान कुछ नहीं बोला, चुपचाप चाय पी। उसने गाय को घास डाल दिया और हाथ पैर धोकर अंदर घुसा। पसीने के कपड़े उतारकर दूसरी कमीज पहन ली। आजकल उसे पसीने की खट्टी गंध से भी घृणा नहीं होती।

चूल्हे के पास ही पीढ़ा देकर रूपा ने कहा, "बच्चों को कब का खाना दे दिया। परसों से एक्ज़ाम है। बच्चें पढ़ रहे हैं। आप और मैं खा लें!"

खाना खाने के बाद रत्नमान को प्यार भरे मलीन स्वर में रूपा ने कहा, "ओ! सुन रहे हो? लोग कह रहे थे कि साहेब लोग दोपहर को ही गाड़ी लेकर भाग गए हैं। सुना है, गोदाम और ऑफिस की चाबियाँ भी ले गए हैं। बंगले के बेहरे भी शाम को नहीं गए। पिछले साल की तरह तो नहीं कर रहे ये मालिक लोग! हल्ला है कि इस बार का खर्च भी नहीं भेजा है। तुम मरद होकर भी इतनी बड़ी बात नहीं सुन पाए, आश्चर्य है!"

रत्नमान ने कुछ गुस्से के साथ रूपा को देखा और कहा, "धत्! तुम्हें ही पता

चलती है काम–बेकाम की बातें। कैसे और कहाँ से सुना? किसने कहा? मैंने तो नहीं सुना! बागान में किसी ने बातें नहीं कहीं!"

कैसे आदमी हैं आप! आज बागान में साहेबों को घूमते हुए देखा? बागान में चारों ओर हल्ला है। आपने ही नहीं सुना! रूपा को भी गुस्सा आ गया।

सुनकर रत्नमान को अचरज हुआ। वह थोड़ी देर तक कुछ भी नहीं कह सका। रूपा का बेजान चेहरा देखा। फिर उसने पड़ोसी से पूछा। पड़ोसी ने रूपा की बात का समर्थन किया। रत्नमान के होश उड़ गए। उसे गुस्सा आया। उसे अपने सीने पर दर्द का अनुभव हुआ। वह सीधे अंदर घुसा और दीवार पर टंगी पिता और दादा की तस्वीरें उतार लीं और उन्हें ज़मीन पर पटक दिया। फिर उसने रूपा से कहा, इन स्सालों की तस्वीरें ले जाकर नीचे फेंक दो। मैं दो–दो बार फौज में जाने के लिए निकला, इन लोगों ने ही जाने नहीं दिया। पढ़ना चाहता था, इन लोगों ने नौवीं से आगे पढ़ने ही नहीं दिया। थोड़ा और पढ़ने देते तो कोई अच्छी सी नौकरी कर लेता। इससे अच्छा गुजारा हो पाता। फिर मैंने यहाँ नहीं रहने, बाहर किसी शहर में जाकर काम करने की बात कही, इन लोगों ने जाने ही नहीं दिया। इन लोगों ने ही जबरदस्ती बागान के काम में जुताया। उनकी बात कैसे नहीं मानता..!

तुम्हें भी कितनी ही बार कहा, चलो कहीं बाहर जाते हैं। कुछ दिन कष्ट होगा, फिर अच्छा ही होगा, मैं जी–तोड़ मेहनत करूँगा। नहीं कहा था क्या? तुम ही तो पिता–पुरखों की जगह छोड़कर जाना नहीं चाहती थी। यह पिता पुरखों की जगह है या चाय कंपनी की? हमारा कुछ भी हक है इसमें? तुमने इस गोदाम की एक नंबर की चाय पी है कभी? सबसे बुरा बुरादा देते हैं एक पाव! थोड़ी सी अच्छी चाय की पत्ती लाने में भी हाथ–पैर काँपते हैं। नौकरी जाने का खतरा बना रहता है। कौन कहेगा इस बारे में? भगवान भी अनजान बना रहता है हमारे दुख–दर्द से इसलिए तो मैं पूजा–पाठ नहीं करता! केवल कर्म करता हूँ। अभी पता चला तुम्हें? मैंने यह स्थिति कमोबेश पहले ही देख ली थी। इसलिए तो मैं फौज में जाना चाहता था। यहाँ से बाहर निकलना चाहता था। स्सालों ने जाने नहीं दिया, हमारी किस्मत बिगाड़ने वाले! हमें दुख की गर्त में डालने वाले! ये हमारे बाप–दादा नहीं हो सकते। ले जाओ ये फोटो, ले जाकर नीचे किसी चाय के गाछ पर फेंक दो। नहीं चाहिए, मैं नहीं देखूँगा इनका चेहरा भी।

रत्नमान पलंग पर बैठ गया। रूपा ने टूटे हुए शीशे के टुकड़े इकट्ठा किए, उठाए और फेंक दिए। फिर फोटो छिपाकर बच्चों की किताबों–कॉपियों के साथ मिलाकर झोले में रख दी। उसने दोनों बच्चों को सोने को कहा।

रूपा ने रत्नमान को समझाने की कोशिश की, "आज जो हुआ, हो गया। गुस्सा करने से कोई फायदा है ? बागान में हल्ला हो रहा था, ऐसा नहीं भी हो सकता। क्या है, सुबह ही पता चल पाएगा। सामरन बजा तो बागान खुलेगा और नहीं बजा तो नहीं

खुलेगा। बागान में से दुखी किस्मत और किसकी होगी! बाजारों में बोझा ढोने वाले कुलियों को भी हमारे जितना कष्ट तो नहीं होगा। हमसे अधिक कमाते हैं। उनके बच्चे हमारे से अच्छे स्कूलों में पढ़ते हैं। मालिक और साहेब का भय नहीं होता। इस प्रकार गले में ग्रास लेकर सामरन की आवाज से डरने की आवश्यकता नहीं! अपनी स्वतंत्र दुनिया है उनकी। उनका न तो मालिक है, न साहेब है और न ही सामरन की आवाज! सुखी हैं और खुश हैं वे लोग....."

रूपा बिस्तर पर चढ़ गई। रजाई तैयार कर रत्नमान को भी बुलाया। रत्नमान लेट गया। रूपा ने उसे रजाई ओढ़ा दी। रत्नमान एक शब्द भी नहीं बोला। बिलकुल भी नहीं बोला। रूपा के मन में कई बातें आ–जा रही थीं। उसे अपनी एक सहेली का फौजी पति याद आया। बीच–बीच में उनके घूमने जाने की घटनाएँ याद आईं। रत्नमान को शहर याद आया। उसके मित्रों का वेतन और पेंशन याद किया। फिर उसे अपना हफ्ता खर्च, पी. एफ. और ग्रैच्युटी याद आया। फिर वह छटपटाने लगा। उसने कई बार लंबी साँसें ली। रात काफी बीत चुकी थी। रूपा ने बत्ती बंद कर दी और अपना हाथ रत्नमान के सीने पर रख दिया।

मुर्गे ने बांग दी, सुबह हो चुकी थी। रत्नमान ने हमेशा की तरह अपने काम किए। लेकिन हँसिया धार करूँ या नहीं! वह असमंजस में पड़ा रहा। रूपा ने भी चूल्हे का काम खत्म किया और सोचने लगी कि खाजा की पोटली बनाऊँ या नहीं, चाय बोतल में डालूँ या नहीं! गाँव में चारों ओर हल्ला मचा हुआ था, कई प्रकार की बातें हो रही थीं। सभी सामरन की आवाज की प्रतीक्षा में थे। लेकिन नियत समय गुज़रने के बाद भी गोदाम के ऊपर लगा सामरन नहीं बजा। सामरन बिलकुल भी नहीं बजा। सभी को विश्वास हो गया कि साहेब लोग सचमुच में कल भाग गए हैं। सामरन के न बजने पर सबको अच्छी तरह तसल्ली हो गई कि आज से बागान बंद हो गया है। रत्नमान कोयले की तरह सुलगता रहा, सुलगते हुए जलता रहा।

❑❑❑

संपर्क:

वीरभद्र कार्कीढोली: संपादक, 'प्रक्रिया', पोस्ट बॉक्स नं.–6, गंगटोक, सिक्किम–737101, ईमेल: birbhadra777@gmail.com, मो. 9933129220

मंगलसूत्र की चमक

भगवान अटलानी*

तब की बात अलग थी, जब सावित्री जी नौकरी करती थीं। कार्यालय तो जाना ही पड़ता था, कहीं भी अकेले जाने में न हिचकिचाहट महसूस होती थी और न संकोच का अनुभव होता था। जहाँ जाना होता था, सहजता से चली जाती थीं। कुछ उम्र, कुछ शारीरिक स्थितियाँ और कुछ जरूरतें अब घर से बाहर निकलने से पहले दस बार जाऊँ, न जाऊँ के अनिर्णय में से गुजरने के लिये मजबूर करती हैं। वश चलते टालने की कोशिश करती हैं। शैलेश जी कभी–कभी मजाक में कहते भी हैं उनसे, ''भगवान के घर जाते समय अकेली मत जाइएगा। मुझे साथ ले जाइएगा।'' घर में बेटा–बहू साथ रहते हैं। घर में महरी है। काम–धाम इतना होता नहीं है कि सावित्री जी को करना पड़े। दिन अख़बार, किताबों, टी वी और फोन पर बात करके गुजरता है। शैलेश जी जरूर सुबह पार्क में जाते हैं और रात को मकान के टैरेस पर टहलने जाते हैं। पार्क के पुराने कुछ दोस्त–यार शैलेश जी की दिनचर्या के अभिन्न अंग हैं। साथ चाय पीते हैं, नाश्ता और भोजन साथ करते हैं। दुख–सुख ज्यादा होते नहीं हैं कि एक–दूसरे से बाँटे। सावित्री जी की नब्ज की चाल को हाथ रखे बिना ही शैलेश जी समझ जाते हैं। आगे–पीछे, ऊपर–नीचे, दाएँ–बाएँ होने का संकेत मिलते ही शैलेश जी उसका इलाज करने की कोशिश में लग जाते हैं। स्वभाव और प्रकृतिगत भिन्नता के बावजूद दोनों के बीच का तालमेल लगभग संपूर्ण होता है।

दीक्षा जरूर ले रखी है, आश्रम में प्रति सप्ताह सत्संग भी होता है मगर सावित्री जी विशेष अवसरों पर ही वहाँ जाती हैं। आश्रम से लंबे समय से जुड़ी हैं। इसलिए अनेक महिलाओं से परिचय और कुछ महिलाओं से निकटता है। उनमें से कुछ से, मिलकर कम, फोन पर ज्यादा संपर्क बना हुआ है। सावित्री जी उनमें से एक–दो गुरुबहनों से फोन पर ही सही, कभी–कभी मन की बात बाँटती हैं। मन पर कोई बोझ, परेशानी का साया या उलझन का धुँधलापन नहीं लग रहा था। फिर भी नंबर मिला लिया। फोन पर बहुत देर तक अपनी गुरुबहन से बतियाने के बाद विष्णु सहस्त्रनाम

* हिंदी व सिंधी भाषा में लेखन और विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

का पाठ करके सावित्री जी उठी हैं। मोबाइल देखा। रात के दस बज चुके हैं। आज पाठ करने में ज्यादा मन रमा, सोचकर वे मंद–मंद मुस्कुराई हैं।

प्यास महसूस हुई है। पलंग के पास छोटी मेज पर रखा जग और गिलास दोनों खाली हैं। पति शैलेश जी रोज़ की तरह आज भी शायद टैरेस पर टहलने गए हैं। उनके पलंग के पास रखी छोटी मेज पर रखे गिलास और जग को टटोलती हैं। पानी वहाँ भी नदारद है। सावित्री जी उठीं। दोनों जग और गिलास हाथों में लिए कमरे से बाहर निकलकर सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आई हैं। रसोईघर में जाकर दोनों जग खंगालकर पानी से भरे हैं। लौटने के लिए सीढ़ियों की ओर कदम बढाए ही हैं कि नजर बेटे–बहू के कमरे की तरफ चली गई है। बेटा बाहर गया है मगर बहू को तो कमरे में ही होना चाहिए। रोशनी क्यों नहीं है? उन्होंने सोचा।

गिलास और जग पहली सीढ़ी पर रखकर सावित्री जी बेटे–बहू के कमरे की तरफ चली गई। बिजली जलाई। कमरा खाली है। बिजली का बटन बंद करके पहले ड्रांइंग रूम में गई। फिर दरवाजा खोलकर छोटे से लॉन में झाँककर देखा। मध्य सितंबर का कभी गर्मी, कभी बरसात का मौसम था। चारों ओर सन्नाटा पसरा हुआ था। गिलास और जग उठाकर सीढियाँ चढ़कर कमरे में आई हैं। शैलेश जी आ चुके हैं। एक बार सावित्री जी के मन में आया, शैलेश जी को आड़े हाथों लें, ''टैरेस पर चहलकदमी कर रहे हो। होश भी है कि बहू घर से गायब है।'' मगर खामोश रहीं।

''पानी लेने गईं थीं ?'' उन्होंने सावित्री जी से पूछा।

''हाँ, नीचे गई तो पानी लेने थी मगर देखा कि बहू कमरे में नहीं है।''

''होगी इधर–उधर कहीं।'' शैलेश जी ने लापरवाही से कहा।

''मैंने हर तरफ देख लिया है। कहीं नहीं है।''

''हर तरफ़ यानी?''

''उसका कमरा, ड्राइंग रूम, लॉन, और कुछ है देखने के लिए घर में ?'' सावित्री जी के स्वर में झुँझलाहट है।

''चलिए, आपने हर तरफ देखा, बहू नहीं है। क्या वाशरूम में भी देखा?'' अब उनके स्वर में हल्का चिंता भाव है।

''वाशरूम में देखा तो नहीं किंतु कमरे के साथ वाशरूम की बिजली भी बंद है। बंद बिजली में वाशरूम गई होगी क्या ?'' सावित्री जी की झुँझलाहट बढ़ गई।

''हो सकता है।'' सावित्री जी की स्वर दिशा को समझते हुए भी शैलेश जी संतुलित हैं।

''नहीं हो सकता। फिर मैं हर तरफ देखकर आई हूँ। इस बीच जितना समय लगा, उतनी देर में भी क्या वाशरूम से नहीं लौटेगी?'' सावित्री जी ने एक तरह से पूर्ण विराम लगाया।

शैलेश जी के चेहरे पर चिंता उतर आई है। उन्होंने फोन उठाकर नंबर मिलाया

है। घंटी जा रही है। ''क्या हुआ? किसको फोन कर रहे हैं?'' सावित्री जी अधीरता से पूछती हैं।

''बहू को फोन मिलाया था, नहीं उठाया।''

''फोन नहीं उठाया? मैं मिलाकर देखती हूँ।'' सावित्री जी ने अपने मोबाइल को हाथ में लिया है।

नंबर मिलाया तो बहू ने उठा लिया है, ''जी मम्मी जी?''

''कहाँ हो बहू?''

''गुड़िया और दामाद जी आ गए थे। आग्रह किया तो उनके साथ आइसक्रीम खाने आ गई।''

''एक तो बताकर नहीं गई, ऊपर से अपने ससुर जी का फोन नहीं उठाया। हमें तो तुमने चिंता में डाल दिया!''

''मोबाइल पर्स में था। जब तक निकालती बंद हो गया। तभी आपका फोन आ गया।''

''हमें सूचना देतीं तो तुम्हें घंटों नहीं लगते!''

''सॉरी मम्मी जी। मैंने सोचा, अभी लौटते हैं। इसलिए आपको बताए बिना उनके साथ घर से निकल आई।''

''कब तक लौटोगी?'' सावित्री जी के लहजे में नाराजगी थी।

''थोड़ी देर में आते हैं मम्मी जी।''

सावित्री जी को न जरूरी लगा है और न उन्होंने इसकी जरूरत समझी है कि बहू की प्रतीक्षा करें। अचानक एक विचार की लहर उनके मस्तिष्क से गुजर गई। बहू गुड़िया और दामाद जी के साथ हैं। देर–सवेर आ जाएगी। यों भी जब उसको सूचना तक देने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई तो सावित्री जी को क्यों परेशान होना चाहिए? लहर उतरी तो पुराना सोच फिर उभर आया।

बेटा–बहू कहीं जाते हैं तो प्रायः बताकर नहीं जाते। तैयार होने का सिलसिला अपने आप समझा देता था कि वे दोनों घर से बाहर जा रहे हैं। पूछने पर सहजता से बताते रहे हैं मगर अपनी ओर से सूचना देने की जरूरत दोनों में से किसी को भी महसूस नहीं हुई है। अब तो खैर बच्चों की जिम्मेदारियों से मुक्त पति–पत्नी हैं, जब तक गुड़िया की शादी नहीं हुई थी और वह माता–पिता की देखभाल में रहती थी तब भी पूछने पर या प्रसंगवश ही पता लगता था कि वे कहाँ जा रहे हैं।

चाहे बता देते होंगे पूछने पर कि कहाँ जा रहे हैं किंतु पूछने पर ही क्यों बताते हैं ? इसका मतलब बताना या बताकर कहीं जाना अच्छा नहीं लगता है उन्हें। लापरवाही, बताकर स्वयं को क्षुद्र साबित करने वाली ग्रंथि, बड़ा हो जाने का भाव, क्यों बताया जाए वाला प्रश्न या माता–पिता से छोटा न दिखने का छिपा हुआ अहंकार। कोई भी कारण हो सकता है इसका। भले ही तूल न देती हों लेकिन कभी कुंठा, कभी

विवशता, कभी आक्रोश, कभी असहायता और कभी निराशा सावित्री जी को तनाव की निरंतर साथ चलती परछाई से मुक्त होने नहीं देती है।

सावित्री जी अधिक संवेदनशील हैं। शुरू में उन्हें हर बार बहुत ज्यादा चुभता था। शैलेश जी धीरज से समझाते रहे हैं। अब पहले की तुलना में कम परेशान होती हैं। मगर उन्हें अशालीन टिप्पणी, व्यवहारगत सौजन्य की कमी और आत्मीय भाव में ऊँच–नीच चुभता है। आज भी चुभता है। हर बार इस चुभन को सावित्री जी महसूस करती हैं और हर बार उसे पहचान कर शैलेश जी शांत करने की कोशिश करते हैं। इस बार की चुभन को महसूस करते हुए भी वे कोई संज्ञा नहीं दे पा रही हैं उसे।

विचार की लहर फिर ऊपर उठी है। बताकर नहीं गई बहू तो क्या हुआ? अपनी बेटी–दामाद के साथ कुछ देर आइसक्रीम खाने ही तो गई है। चिंतातुर हुईं सावित्री जी को रात को दस बजे पता लगा कि बहू घर में नहीं है। बताए बिना चुपचाप घर से निकल जाना नई घटना नहीं है। जब बाहर जाने का कारण पता लग गया, प्रकरण समाप्त हो जाना चाहिए न तब तो ? इस बार नीचे उतरती लहर के नकारात्मक प्रभाव से बचने के लिये बिस्तर पर बैठकर सावित्री जी विष्णु सहस्त्रनाम का सहारा लेती हैं। दिमाग की हलचल विष्णु सहस्त्रनाम के पाठ में भी उन्हें शांत बैठने नहीं देती है। वे पाठ को अधूरा छोड़कर फिर बिस्तर पर लेट जाती हैं।

रात को विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ करने के बाद जब बिस्तर पर जाती हैं, तुरंत नींद आ जाती है। सावित्री जी को आज कोशिश करने के बाद भी करवटें बदलनी पड़ रही हैं। शैलेश जी को देर से नींद आती है। आज भी हमेशा की तरह जाग रहे हैं। सावित्री जी की उड़ी नींद देखकर हँसते हुए उन्होंने पूछा है, ''क्या हुआ ? श्रीमती जी को नींद क्यों नहीं आ रही है आज?''

''कुछ नहीं।''

''कुछ तो है। वरना आप बार–बार बिस्तर पर बैठें, लेटें और करवटें बदलें। हो ही नहीं सकता।''

''देख लीजिए, हो रहा है।'' हँसकर सावित्री जी ने वातावरण के हल्केपन को बरकरार रखने की कोशिश की है।

''टालिए मत। बताइए, क्या सोच रही हैं?''

''कुछ नहीं।''

''बहू का बिना बताए जाना अच्छा नहीं लगा न ?''

''आज अलग स्थितियाँ जरूर थीं मगर यह नई बात कहाँ है ?''

''फिर?''

''सोच रही हूँ, क्या हम बेटे–बहू के साथ केवल रोटी, कपड़े और छत के कारण रहते हैं ?''

''नहीं, साथ रहते हैं तो सामाजिक प्रतिष्ठा बनी रहती है कि बेटे–बहू साथ रहते हैं।''

''बस, बात पूरी हो गई ?''

''कहना क्या चाहती हैं आप ?''

''शरीर के साथ इंसान के मन–मस्तिष्क को क्या किसी चीज की जरूरत नहीं होती है ? बेटे–बहू ने क्या कभी इस जरूरत की तरफ़ ध्यान दिया है ?''

''हाँ, होती है जरूरत। उसके लिए बेटे–बहू को चिंता क्या करनी चाहिए ? हम दोनों एक दूसरे के साथ हैं न ?''

''फिर बेटा–बहू साथ क्यों हैं ?''

''आज अचानक आप ऊल–जलूल यह सब क्या सोच रही हैं ?''

''बहू क्या गुड़िया और दामाद जी से हमें भी साथ ले चलने के लिये नहीं कह सकती थी ?''

''बहू ने सोचा होगा, देर हो गई है। हमें तकलीफ नहीं देनी चाही होगी उसने।''

''शायद नहीं। शायद हमें साथ लेकर चलना उन्हें अपनी आजादी में खलल लगता है। शायद हम उनके सोच का हिस्सा नहीं हैं।''

''बेटे को आने दीजिए। आप चाहेंगी तो आमने–सामने बात कर लेंगे। अब आप सो जाइए।' शैलेश जी ने तसल्ली दी है।

''नहीं, उनसे बात करने की जरूरत नहीं है। उनकी आज़ादी, उनकी सोच मुबारक हो उन्हें।'' सावित्री जी ने आंखें बंद कर ली हैं।

बंद आँखों के बावजूद एक रोशनी उभरती है। बेटे–बहू को वैतरणी पार करने का एकमात्र साधन मानने का कोई कारण है क्या ? शैलेश जी जैसे साथी के होते क्यों देखती हैं वे इधर–उधर ? कैसी मूर्ख हैं कि अपने मंगलसूत्र की चमक तक को नहीं देख पा रही हैं।

''आपने थोड़ी देर पहले कहा था, हम दोनों हैं न एक दूसरे के साथ। तो हैं हम दोनों साथ भी, एक दूसरे के लिए भी।'' एकाएक करवट लेकर सावित्री जी उमंग से शैलेश जी से लिपट गई हैं।

❑❑❑

संपर्क:

भगवान अटलानी– डी–183, मालवीय नगर, जयपुर, राजस्थान–302017, ईमेलः bhagwanatlani@rediffmail.com, मो. 9828400325

बख़्शीश नहीं आशीर्वाद

रमेश खत्री*

पिछले चार दिन से मकान में रंगरोगन का काम चल रहा है। आज जब काम की प्रगति देखने पहुँचा तक एक मध्यम कद का सांवला सा व्यक्ति जो एक पैर से विकलांग है, जिसे चलने में भी परेशानी होती है, वो इस काम को दो–तीन लोगों के साथ मिलकर कर रहा है।

जब मकान पर पहुँचा तब शायद किसी का ध्यान मेरी तरफ गया नहीं था। मैं भी सामान्य रूप से देखते हुए ही काम की प्रगति का जायजा ले रहा था। उस समय वह घोड़ी पर चढ़ा हुआ छत की पुताई कर रहा था। उस समय उसके विकलांग होने के बारे में पता नहीं चल पाया किंतु जब मैं कमरे से बाहर निकलने लगा तब शायद वह किसी काम से उतरा तब मुझे इसका अहसास हुआ।

उसकी गहरी आँखें, लंबे काले बाल, लंबोतरा चेहरा, हल्की–हल्की मूँछे, थोड़े बाहर को निकले हुए दाँत। वह मुस्कुराते हुए, हाथ जोड़कर बोला, "नमस्कार बाऊजी।"

उसे नमस्कार करते हुए मैं उसे गौर से देखने लगा।

वह वैसे ही त्रिभंगी सा खड़ा हुआ देखता रहा, फिर जेब से बीड़ी का बंडल निकाला और उसमें से एक बीड़ी निकाल कर फूँक मारने लगा।

मैने पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा?"

"राजू...राजू पेंटर।" वह वैसे ही मुस्कुराते हुए बोला।

"अरे यार! तुम ये काम कर लेते हो?"

वह मुझे अजीब नजरों से देखने लगा जैसे अनचित्ता सवाल कर दिया हो। फिर बोला, "मैं तो यही काम करता हूँ बाबूजी! मुझे क्या...?

मैं उसके पैरों की तरफ देखने लगा। बोला कुछ भी नहीं।

"यह तो मुझे बचपन से ही है, माँ बताती थी कि बहुत छोटा था, तब तेज बुखार आया और फिर ये हो गया।"

---

* संपादक, नेट मैगजीन साहित्यदर्शन डॉट इन

"तुम कोई और काम पकड़ लेते भाई?" झेंपते हुए बोला।

"क्यों इस काम में क्या परेशानी है?"

मैं निरुत्तर सा उसे देखने लगा, वह मुझे देखते हुए बीड़ी पीता रहा बस तभी उसने घोड़ी पर चढ़े लड़के को हिदायत देते हुए कहा, "अरे यार इसे ऐसे नहीं कर। ये फ्रंट की दीवार है, ये बिगड़ गई तो घर की शोभा ही खराब हो जाएगी। तू रुक मैं बताता हूँ, इसे कैसे करना है।" बोलते हुए बीड़ी फैंकी और तुरंत घोड़ी पर चढ़ गया।

बाहर निकलने को था तभी बेटा आ गया, "अरे पापा! आप कब आ गए?"

"बस अभी कुछ देर पहले ही।"

"अरे! आप सफर से आए हो, घर पर ही आराम करते न?"

मैं कुछ नहीं बोला, उसे वैसे ही देखता रहा। स्कूटर पे पी.ओ.पी. के कट्टे पड़े थे। उसे स्टैंड पर लगाते हुए बोला, "राजू भाई! इन्हें उतरवा लो।"

"हो भय्या जी।" वह घोड़ी पर चढ़े हुए ही बोला। तभी किसी को आवाज लगाई, "अरे बेटा! किसना पेला गाड़ी से पी.ओ.पी. का कट्टा तो उतारी ले।"

"हो अभी उतारता हूँ।"

"नी यार! तू सबसे पेले इनके उतारी ले, देख गाड़ी साइड स्टैंड पे खड़ी है। गिर–गिरा गई तो नुकसान होएगा। नुकसान नी होनी चाईए।"

वो कुनमुनाते हुए घोड़ी से उतरा, कट्टे उतारे हुए फिर बोला, "अरे यार उस्ताद! तुम तो पीछे ही पड़ जाते हो।"

राजू कुछ नहीं बोला मुस्कुरा भर दिया। फिर अपने काम करने में तल्लीन हो गया।

बेटे को अलग ले जाते हुए कहा, "अरे यार! इसको क्यों रख लिया? यह कैसे कर पाएगा? यह तो खुद ही...?"

"नी पापा! आदमी खूब मेहनती है। अपने यहाँ सात–आठ दिनों से काम कर ही रहा है, देख रहा हूँ मैं।" वह बोला "पर क्या ये पूरा काम निपटा देगा?" आशंका व्यक्त करते हुए बोला, "बाहर तो तीस फूट की सीढ़ी पर चढ़कर काम करना पड़ेगा। तो ये कैसे करेगा?"

वह देखता रहा, बोला कुछ भी नहीं। मैंने फिर कहा, " ये अंदर–अंदर तो निपटा देगा पर बाहर? क्योंकि इसकी ऐसी हालत में तो ये मुश्किल से ही कर पाएँ?" उसे देखते हुए फिर बोला, "वैसे ये तुझे मिल कहाँ गया?"

"पापा! अपने यहाँ काम कर रहे हैं कारपेंटर चंद्रकांतजी वो ही इनको लेकर आए थे। मुझे ठीक आदमी लगा तो काम दे दिया। वैसे भी आप चूने की पुताई करवाना चाहते थे। ये काम करने वाले अब आज के समय में मिलते कहाँ हैं ?"

"हाँ यार! ये तो है।", "कोई बात नहीं चलो देखते हैं ये काम कितना और कब तक करता है?" बोलते हुए हल्के से मुस्कुरा दिया।

"मुझे तो लगता है, पूरा काम ही निपटा देंगे।" वह विश्वास से भरा हुआ था।

"कर दे तो अच्छा है।" मैंने कहा, "अरे यार बेटा तू इनको चाय–पानी पिलवाता है कि नहीं?"

"दो बार चाय पिलवा देता हूँ न? देखते हुए बोला, "एक तो लंच से पहले और एक लंच के बाद।

"हाँ यार! देख लेना! इस बार सर्दी खूब हो रही है और वैसे भी अपना फ्लैट नार्थ फेसिंग होने के कारण यहाँ पर सर्दी में सूरज के दर्शन न के बराबर ही होते है। सर्दी में तो यह खूब ज्यादा ठंडाता है।"

"हाँ यह तो है। ये लोग भी थोड़ी–थोड़ी देर में छत पर चले जाते हैं धूप सेंकने ? क्या करें? वैसे भी इनका काम तो पानी का ही है न ?"

मैं चलने को हुआ, तब वो बोला, "वैसे काम तो ठीक कर रहे हैं न ये?"

"हाँ! इसमें तो कोई ज्यादा कलाकारी की जरूरत है नहीं अभी तक तो ठीक ही है।" थोड़ी देर रूककर फिर बोला, "पर बाहर को देखते हैं, वहाँ कैसा क्या करता है ?"

शाम को बेटे ने बताया, "वो राजू पेंटर, पाँच हजार रूपने मांग रहा था, पर मैंने अभी तीन ही दिए हैं।"

"अच्छा! पर बेटा ध्यान रखना। ये लोग धीरे–धीरे पैसे लेकर खिसक जाते हैं। इनका कोई भरोसा तो होता नहीं है।"

"हाँ? तभी तो मैंने पूरे नहीं दिए।"

"अरे यार! ये इतने होशियार होते हैं कि माँगते ही ज्यादा हैं। फिर जितने की आस होती है, उससे ज्यादा ही मिल जाते हैं इनको।"

"अब करो भी तो क्या? काम तो इनसे ही करवाना है, अपना तो करने से रहे।" बेटा बोला।

"हाँ... ये बात तो है।"

इन दिनों सर्दी भी कुछ ज्यादा ही हो रही है। माघ का महीना है, शीतलहर चल रही है। पूरे–पूरे दिन सूरज का कहीं पता नहीं रहता। गरम कपड़ों के अंदर भी ठंड हवा भेदते हुए हड्डियों तक पहुँच रही है। मुँह से भाप निकलती है। ऐसा लगता है। कि कुछ न कुछ गरम खाने–पीते रहो। पर दिन भर तो यह संभव नहीं है।

अगले दिन काम पर कोई भी नहीं आया। बेटा फ्लैट पर गया वहाँ ताला लगा था। पुताई के काम के चलते फ्लैट की एक चाबी राजू को दे दी थी। वह अपने हिसाब से आकर काम चालू करवा लेता। उसे कोई परेशानी न हो।

जब बेटे ने ग्यारह–साढ़े ग्यारह बजे फोन किया। तब राजू का फोन स्वीच ऑफ आ रहा था। उसने गुस्से में मुझे फोन किया, "पाया! कल ही उसने पैसे लिए हैं और आज अपना फोन स्वीच ऑफ कर लिया। ये धीरे–धीरे करके आधे से ज्यादा तो पैसे ले ही चुका है और अब...?

"अरे यार! तू इतना टेंशन क्यो ले रहा है। देखते हैं, जैसे भी होगा देखा जाएगा।" बोलते हुए थोड़ी देर रुका फिर बोला, "ये लोग तो होते ही ऐसे हैं... और ऊपर से ये तो विकलांग भी है।"

इस बीच फोन कट गया। कुछ देर के बाद फ्लैट पर पहुँचा तो देखा फ्लैट के अंदर की पुताई का काम तो पूरा हो गया था। अब बाहर की पुताई और दरवाजा खिड़की का रंग रौगन बाकी था। अनुमान लगाया, 'इस काम में भी कम से कम आठ से दस दिन तो लगेंगे ही।'

दो–तीन दिन ऐसे ही और भी बीत गए। राजू पेंटर का कहीं पता नहीं चला। मैं खुद भी इन दिनों किसी जल्दबाजी में नहीं था। सर्दी कुछ ज्यादा ही हो रही थी। थोड़ा सा मौसम सुधरे तो फिर कुछ और सोचा जाए।

तभी बेटा कारपेंटर को लेकर आ गया। उसे देखते ही बोला, "क्यो रे चंद्रकांत. .. कैसा आदमी लगवास है तूने काम पर, दो–चार दिनों से लापता है?"

वह नमस्कार करते हुए बोला, "ऐसी बात नहीं है बाबूजी मैं जो आदमी आपको दिए हूँ, वह बहुत ही ईमानदार और अच्छा आदमी है। जो काम उसने लिया है वो पूरा करके ही निकलेगा।"

"अच्छा! कब साल भर में ?" बेटा बोला।

"नहीं.... जल्दी ही कर देगा बाबूजी! वो क्या है कि अभी उसकी बीबी की तबीयत खराब हो रखी है न ?" बोलते हुए देखने लगा। फिर थोड़ी देर के बाद बोला, "वो क्या है कि ये तो आपको भी पता है, ठंडा कित्ता पड़ रहा है अभी, वो दोनों तो इस ठंडे में भी खुले में ही रहते हैं। तो उसकी घरवाली को ठंडा लग गया।"

"खुले में रहते हैं... क्या मतलब ?" बेटा बोला।

"दुर्गा नर्सरी है न, हल्लीघाटी रोड़ पे... ये उसी नर्सरी में खुले में ही रहते हैं। तो ठंडा तो लगना ही है न..." बोलते हुए देखने लगा। फिर बोला, "ये नर्सरी की रखवाली करते हैं। वो इनसे किराया नहीं लेता।"

"पर ऐसे मौसम में... खुले में तो बीमार होना पक्का है।" मैंने कहा।

"क्या करे बाबूजी! गरीब आदमी जो है। उसकी घरवाली भी तो विकलांग ही है न! तो वो तो कुछ भी नहीं कर पाती है। घर के भी सब काम इसको ही करना पड़ते हैं, इस मारे ही तो ये सुबै भी देर से आता है।"

"अच्छा! ऐसा है क्या ?" बेटा बोला।

"अब तुमको क्या बताऊँ भैया! आदमी तो ये खूब ईमानदार और मेहनती है। और फिर किसी का भी कुछ नहीं कह सकते हैं। पर ये तो जब आपका काम लिया है तो इसको पूरा तो जरूर करेगा। ये तो मेरी गारंटी है।"

हम दोनों उसकी तरफ देखते रहे, बोले कुछ भी नहीं।

फिर थोड़ी देर बाद वह बोला, "बस आपसे मेरा हाथ जोड़ के कहना है, अभी थोड़े दिन का टेम दे दो उसको, उसकी घरवाली की तबीयत ठीक होने तक का।"

"अरे यार! समय की तो कोई बात नहीं है पर...।" बोलते हुए बेटा उसे देखने लगा।

"देखो भय्या! अभी तक भी तो उसने काम तो ठीक ही किया है न.... कि आपको कोई शिकायत है काम में...?

"अंदर का काम तो ठीक ही किया है, पर अब परेशानी तो बाहर की है न?"

"वो भी कर देगा भय्या आप चिंता मत करो।" बोलते हुए मुस्कुराया, "मेरी गारंटी है ना... मैं ही तो लाया था उसे आपके पास? मैं कोई ऐसे–वैसे आदमी को लाता नहीं हूँ।" बोलते हुए उसने मोटरसाइकिल स्टार्ट की ओर चला गया।

वह फिर पाँच दिन के बाद आया। उस समय मैं फ्लैट पर ही था। मुझे देखते ही बोला, "बाबूजी नमस्ते।"

"नमस्ते भाई! कहाँ चले गए थे? कितने दिनों की छुट्टी करली?"

"छुट्टी तो नी करी बाबूजी! मैं भी क्या करता घरवाली की तबीयत ही खराब हो गई।"

"क्या हो गया था?"

"ठंडी खा गई बाबूजी!" देखते हुए बोला, "खूब तेज बुखार चढ़ा उसे।"

"अरे तो यार! तुम लोग रहते भी तो खुले में हो... ठंड तो लगेगी ही।" उसे देखते हुए बोला, "नर्सरी है तो पौधों की और भी ठंडक रहती है। डबल ठंडक हो गई न, ठंड तो लगेगी ही।"

"अब क्या करें बाबूजी! और कहीं व्यवस्था हो ही नहीं रहीं है तो फिर वही पे...।"

"तू ऐसा कर...छब्बसी सेक्टर में हमारा एक मकान खाली है। तुम दोनों वहीं रह लो। सर्दी से बचाव भी हो जाएगा।"

"बाबूजी! वो बहुत दूर पड़ जाएगा। क्या करूँ मुझे तो यहाँ से आने में ही... आप मेरी तो हालत देख ही रहे हो। और फिर यहाँ पर तो मेरी घरवाली भी लगी रहती है। कोई न कोई पौधे लेने को आ ही जाता है।"

"अच्छा! जैसी तुम्हारी मर्जी।" बोलते हुए सौ रुपए का नोट देते हुए बोला, "लो सबके लिए चाय ले आओ।" बोलने को तो बोल गया, पर फिर मुझे ही अफसोस होने लगा। ये कैसे लेकर आएँगा? यही सोचते हुए फिर कहा, "यार! किसी से मंगवा लो।"

मुझे देखते हुए मुस्कुराया। उसकी मुस्कुराहट में मुझे एक अजीब तरह की चुनैती नजर आई। वह खुद जाने लगा, तब मैंने उसके साथ करने आए दूसरे व्यक्ति को इशारे से अपने पास में बुलाते हुए कहा, "अरे यार! तुम राजू भाई से पैसे लेकर सबके लिए चाय ले आओ। अभी मैंने उनको दिए है। उनसे बोलना, "बाबूजी तुम्हें बुला रहे हैं कोई काम है।"

वह मुस्कुराते हुए चला गया। शायद मेरी मंशा भाँप गया था। मैं राजू का इंतजार करता रहा, लेकिन वो बीच रास्ते से वापस लौटकर नहीं आया। करीब आधे घंटे के बाद दोनों साथ में आए। राजू ने ही चाय की थैली पकड़ी हुई थी और एक हाथ पैर पर रखकर लंगड़ाते हुए चल रहा था।

"अरे यार! मैंने तुम्हें वापस बुलाया था, तुम लौटकर क्यों नहीं आए?"

"मैंने सोचा! पहले एक काम पूरा कर लूँ फिर बाबूजी से बात कर लूँगा।" बोलते हुए कप में चाय पलटने लगा।

"चाय तो ये पलट लेगा न... तुम तो कुर्सी खींच के बैठ जाओ।"

"कोई बात नहीं! मैं ढाल देता हूँ, देर ही कित्ती लगनी है।" बोलते हुए एक कप मेरी तरफ बढ़ा दिया।

चाय का कप पकड़ते हुए उसे देखने लगा, मुझे उसकी आँखों में आत्मविश्वास का समंदर लहराया हुआ दिखा। सोचने लगा, 'शारीरिक अक्षमता के बावजूद भी ये आदमी किस तरह से हिम्मत के दम पर जीवन की नैया को खे रहा है। यदि इसकी जगह कोई और होता तो? तभी उससे कहा, "सरसो का तेल मैंने लाकर रख दिया है, काम चालू करने से पहले हाथ–पैर पर अच्छे से लगा लेना, चूने से फटेगें नहीं।"

कुछ भी कर लो चूने से तो हाथ फटते ही फटते हैं।" बोलते हुए अपने हाथ दिखाने लगा, "ये देखो, सब उँगलियाँ फट गई हैं।"

"पर तेल लगाने से कुछ तो फायदा होगा न?"

"हाँ! तेल लगाने से इतने नहीं फटेंगे।"

"तुमने पहले क्यों नहीं मँगवाया?" उसे गौर से देखने लगा।

वह कुछ नहीं बोला वैसे ही खाली नजरों से देखता रहा।

"राजू भाई! अब तुम लोग इस मकान के चेहरे का रंग–रोगन करने वाले हो, भय्या ध्यान से...।"

"इसकी तो आप कुछ फिकर मत करो बाबूजी। क्या आपको अभी तक मेरे काम में कोई कमी नजर आई?"

कुछ नहीं बोला, कुछ देर तक उसे देखता रहा, थोड़ी देर के बाद कहा, "काम को देखने वाले भैय्या तो अभी आएँगे। वो ही फाइनल करेंगे।" उसे देखते हुए मुस्कुराया।

"बाबूजी! मैं काम ही ऐसा करता हूँ कि मेरे काम में कोई जरा भी कमी नहीं निकाल सकता और वैसे तो कमी तो सबके काम में ही निकाली जा सकती है।" वह बोला, "आपका यह फ्लैट बरसों से बंद पड़ा था। छत ही कई जगह से झड़ गई थी। जहाँ जो भी मटेरियल लगाना था, लगा–लगू के एकदम से चमका दिया न, ये तो आप भी देख ही रहे होंगे।" बीड़ी निकालते हुए बोला।

"आज क्या करोगे?" बात बदलते हुए पूछा।

"आज तो अंदर जो थोड़ा सा बचा है, उसको निपटाएँगे फिर कल से बाहर का काम पकड़ेंगे।"

"अच्छा।"

"कल हमें तीस फुट वाली निसरनी लगेगी। उसकी व्यवस्था अपने को आज ही करनी पड़ेगी।"

"कितने दिनों के लिए चाहिए?"

"पंद्रह–बीस दिन तो लगेंगे ही बाबूजी! ये तो मैं कम से कम बता रहा हूँ। ज्यादा टेम भी लग सकता है।"

"किराए पर लाए क्या?"

"किराए पर लाने से तो अपने को घाटा है। पचास रुपए रोज से कम में देगा ना वो, जितने की आएगी उससे ज्यादा तो किराया ही देना पड़ेगा।"

"तो फिर खरीद लें क्या?"

"और ना तो क्या? ये ही ठीक रहेगी।"

"तू ही खरीद लाना।" मेरे मुँह से निकल गया।

"मैं लाऊँगा तो ढाई सौ रुपए तो भाड़ा ही लग जाएगा। आप तो भैय्या के साथ वेन पर बाँधकर ले आना बाबूजी।"

"ऐसा क्या?"

"भाड़ा बच जाएगा अपना।"

"पन इत्ती लंबी सीढ़ी को लाने में परेशानी होगी न ?"

"कुछ ना धीरे–धीरे ले आना। दूर ही कित्ता है, सड़क के उस पार ही तो गोडाउन है।"

"हाँ है तो सही। पर इत्ती बड़ी सीढ़ी और चौराहा पार करना ये ही टेढ़ी खीर है।"

"कुछ नहीं बाबूजी! म्हें चल चलूगाँ साथ ही में... अपन ले आएँगे।"

ऐसा है तो चलो अभी ही ले आते हैं।"

"भैय्या को भी आ जाने दो, उनको भी साथ ले चलेगें। वो अच्छे से छत पे बँधवा देंगे।", "मेरे पैर के मारे म्हें ठीक से बँधवा नहीं पाउँगा।"

बस तभी उसको किसी ने आवाज लगा दी, वो चला गया। मैं सोचने लगा, 'ये व्यक्ति दूसरों का भी कितना ख्याल रखता है?"

थोड़ी देर में बेटा आया, उसे बताया, "तीस फीट की सीढ़ी चाहिए। वो कह रहा था। कल से बाहर का काम लगाऊँगा तो अपन को आज ही व्यवस्था करनी होगी।"

"पापा! मैंने बात कर रखी है, मेरे एक दोस्त के यहाँ पड़ी है, उसके अभी ही पुताई का काम चला था।"

"तुमने देख ली है, ठीक है सीढ़ी?"

"हाँ ? देखी हुई है मेरी। चलो अपन अभी ही ले आते हैं।"

"राजू को भी ले चलें क्या?"

"क्या करना है उसे ले चल के, अपन ही वेन पे बाँध कर लाते हैं न... रुको मैं रस्सी लेकर आता हूँ।" बोलते हुए चला गया।

पूरे दस दिन लगे बाहर का काम निपटाने में, इस बीच एक घटना और घटते–घटते बची। राजू जिसे काम के लिए लाया था, वो सीढ़ी से गिरते–गिरते बचा। वो तो छत से राजू ने सीढ़ी को रस्सी से बाँधकर पकड़ा हुआ था। इस कारण बच गया नहीं तो उसका संतुलन तो पूरी तरह से बिगड़ ही गया था। इसमें भी राजू की समझ और होशियारी काम कर गई, नहीं तो माथे आते देर न लगती।

राजू के मना करने के उपरांत भी वो काफी दूर तक पुताई के लिए झुकता चला गया। इसी में संतुलन बिगड़ा और रंग का डिब्बा तो गिरा ही, वह भी गिरते–गिरते बचा।

मुझे पता चला। मैंने कहा, "भई सुरक्षा के इंतजाम सबसे पहले करो, फिर काम करो। कमर की बेल्ट में रस्सी बाँधकर काम करना चाहिए, ये तो राजू भाई की सतर्कता के कारण दुर्घटना टल गई। ऐसा होना नहीं चाहिए भाई, इसका तुम सब ध्यान रखो भई....।"

"कुछ नहीं बाबूजी! ये बाहर का काम मैं ही निपटाऊँगा। इसको नीचे या उपर रखूँगा।"

"तुम लोग छत से क्यों उतरते हो?"

"अरे बाबूजी! वो नीचे वाले जाने ही कहाँ देते हैं?"

"हाँ यार! ये नीचे के फ्लैट वाले तो एबले हैं ही, खूब परेशान करते हैं। आस–पास के सब लोगों का जीवन हलकान किया हुआ है। सब पर ही झूठे केस लगा रखे हैं।"

"वो तो लग ही रहा है बाबूजी, नीचे गिरे रंग को तुरंत ही साफ करना पड़ रहा है। खूब परेशान कर रखा है।"

"कोई ना यार! जैसे–तैसे अपना काम निकाल लो। अपने को क्या वहाँ बस्ती बसानी है। दस साल में अब जाके काम पड़ा है।"

"डॉक्टरों को तो लोग भगवान मानते है पर ये दोनों तो शैतान की खाला हैं।" बोलते हुए राजू मुस्कुराने लगा।

"क्या करो यार? जब पड़ोसी ठीक नहीं हो तो बहुत परेशान होती है। ऐसा कहते हैं, 'पड़ोसी ही आपका सबसे नजदीकी रिश्तेदार होता है।'

वह कुछ नहीं बोला, फिर से अपने काम में लग गया।

बड़ी मुश्किलों से छत के रास्ते तीस फीट की सीढ़ी से उतर कर उसने बाहर के जितने भी काम थे, उनको पूरा किया। इस काम में करीब पंद्रह दिन लगे। इस कठिन काम को वह खुद ही करता, जो दूसरे दो लोग साथ में लगे हुए थे उनको ऊपर के कामों में लगाए रहता।

इस बीच हरदम चिंता लगी रहती, 'एक तो यह आदमी विकलांग है, ऊपर से इतना कठिन काम हाथ में ले लिया। कहीं कोई ऐसा वैसा न हो जाए? नहीं तो लेने के देने पड़ जाएँगे।'

मेरी चिंता को भाँपकर बेटा बोला, "पापा! आप क्यों बेफिजूल में ही फिकर कर रहे हो? ये लोग तो ऐसे काम करते ही रहते हैं। इनको तो आदत पड़ी हुई है।"

"बेटा! मेरी चिंता का कारण इसके शरीर की अपूर्णता को लेकर है और कुछ नहीं बस।"

"पर ये तो शुरू से ही यही काम करता रहा है। तो अब तक तो इसकी आदत में आ गया है।"

"काम पूरा हो तो गंगा नहाए।"

वह कुछ देर तक देखता रहा, फिर बोला, "आप निश्चित हो जाओ सब ठीक ही होएगा।"

फिर जब काम पूरा हो गया, तब उसका हिसाब करने लगे। तब वह बोला, "बाबूजी! हो गया न आपका काम पूरा! आप तो पता नहीं क्यों खूब घबरा रहे थे?" राजू ने बंडल से बीड़ी निकाली, हल्के से मुस्कुराया फिर बोला, "जब बाहर का काम हो रहा था, तब तो आप खूब चिंतित थे। आपको शायद ये डर लग रहा था कि मैं कहीं...?"

मैं कुछ नहीं बोला, उसे वैसे ही देखता रहा। वह फिर कहने लगा, "मुझे तो ये काम करते हुए चालीस साल हो गए हैं बाबूजी। मैंने तो पंद्रह–पंद्रह मंजिल की बिल्डिगें तक पोत दी, तो फिर आपका ये मकान क्या है?"

"अरे यार! इसका भी तो संतुलन बिगड़ा ही था न? ....ये सारा खेल तो संतुलन का ही है।" अंदर के भय को दबाते हुए बोला।

"ये तो अनसिक्कड़ है, थोड़ा–बहुत भी जानकार होता तो ऐसा रिस्क नहीं लेता।"

"अरे यार! दुर्घटनाएँ अक्सर ओवर कांफिडेंस में ही तो होती है। कोई जान बूझकर तो... पर खैर! अब इस सबकी चर्चा भी क्यों करें?"

"बस मेरे में यही कमी है बाबूजी! मैं जब कोई काम हाथ में लेता हूँ तो फिर घाटा–नुकसान जो भी हो, उसे पूरा करके ही दम लेता हूँ और ये मेरे बड़े बोल नहीं है। पता नहीं कैसे... ईश्वर मेरी लाज रख ही लेता है।"

उसे गौर से देखते हुए बोला, "वो इसलिए भी कि तुम मेहनती हो... और ईमानदार भी...।"

"बस तभी वो झुककर मेरे पैर छूने लगा। मैंने पाँच–पाँच सौ के दो नोट और उसकी तरफ बढ़ा दिए।

वह मुस्कुराते हुए बोला, "बाबूजी! मैं तो बस अपनी मेहनत के पैसे ही लेता हूँ। इस तरह से बख़्शीश नहीं।" बोलते हुए जाने लगा।

तभी मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए दोनों नोट उसकी जेब में रखते हुए कहा, "ये बख़्शीश नहीं है, आशीर्वाद है।"

वह हल्के से मुस्कुराया और लंगड़ाते हुए बाहर चला गया।

❑❑❑

संपर्कः

रमेश खत्री– 53/17, प्रतापनगर, जयपुर, राजस्थान–302033, ईमेलः sahityadarsha@gmail.com, मो. 8949861017

अस लेगो अणदाग, पाग लेगो अणनामी।
गौ आडा गवड़ाय, जिको बहतो धुर वामी।।
नवरोजे नह गयो, न गो आतसाँ नवल्ली।
न गो झरोखाँ हेठ, जेथ दुनियाण दहल्ली।।

– कवि दुरसा आढ़ा चारण

होय एक नदीच होती ती

मूलः सुनीता झाडे*

तिला खूप घाम यायचा
कायम घामाने
थबथबलेली असायची ती
मग कधी पोलक्याच्या बाहीने
साडीच्या पदराने
खाली घातलेल्या लेंग्याने
तर कधी रुमाल म्हणून
कंबरेला खोचलेल्या चिंधीने
खसखसून पुसायची

तरी परत
झरझर – झरझर
वाहायला लागायची
खूप सारे झरे येऊन
मिळालेल्या नदीगत
वाहत राहायची
वाहतच राहायची

तिला ना, मऊ तलम रेशमी
फुलाफुलांच्या रुमालाची खूप आवड
मग असा एखाद
पडलेला रुमाल सापडला
कोणी दिला

* मराठी और हिंदी की कवयित्री, लेखिका एवं पत्रकार।

वा आवडते म्हणून
कुणाकडून मागून घेतला
की त्याची सुबक अशी घडी करुन
आलमारीत ठेवायची

अश्या कितीतरी
वेगवेगळ्या आकाराच्या
रंगांच्या, रेषांच्या रुमालाची
एक चळत होती
तिच्या आलमारीत

इतक्या चांगल्या रुमालानी
काय घाम पुसायचा?
किंवा
घाम पुसून इतके चांगले
रुमाल कशाला खराब करायचे?
मला यामागील सबब
कधीच कळले नाही...

ती तशीच
काम करता–करता
घामात वाहत राहीली
नदीसारखी
होय एक नदीच होती ती...

मला अजुनही तिच्या काठचा
थंड ओला स्पर्श आठवतो

❑❑❑

यह सचमुच एक नदी ही थी

अनुवादः सुनीता झाडे*

वह सचमुच एक नदी ही थी...
वो पसीने से पसीज रहती थी...
उसे बहुत पसीना आता था।
हमेशा वह पसीने से भींगी रहती थी।

फिर कभी ब्लाउज की आस्तीन से,
कभी साड़ी के पल्लू से,
या साड़ी के नीचे पहने गए पेटीकोट से,
तो कभी एक छोटी सी चिंदी से,
जो उसने रूमाल की तरह
अपने पास रखा था,
उससे पसीना पोंछा करती थी।

पोंछने पर भी
झर–झर... झर–झर... कर
पसीना वापस बहने लगता,
मानो उसके अंदर की जमीन
के सारे झरने मिलकर
एक नदी बन गए हों,
और वह नदी की तरह
बहती हो... अविरत... अविश्रांत।

बहुत शौक था उसे
फूलों वाले, नर्म, रेशमी रूमालों का।
अगर ऐसा कोई रूमाल मिल जाता,
कोई दे देता,

* मराठी और हिंदी की कवयित्री, लेखिका एवं पत्रकार।

या उसे पसंद आता और
वह किसी से माँग लेती...
तो उसे बड़े सलीके से मोड़कर
अलमारी में रख देती।

इस तरह
ना जाने कितने ही
रंगों, डिजाइनों और आकारों के
रूमालों का एक ढेर सा हो गया था।

पर इतने अच्छे रूमालों से
भला पसीना कौन पोंछे?
पसीना पोंछकर
उन्हें क्यों खराब करे?

मुझे आज तक
उसकी इस कहानी का
मतलब नहीं समझ आया...

वह वैसे ही...
काम करते–करते,
पसीने में भींगती रही,
बहती रही .
एक नदी की तरह...

हाँ, वह सचमुच एक नदी ही थी...
आज भी मैं
उसके यादों के किनारे
उसके ठंडे, भीगे हुए स्पर्श को
महसूस करती हूँ...

❑❑❑

संपर्क:

सुनीता झाडे– 204, निलयम अपार्टमेंट रिंग रोड़, हिंगणा टी–पॉइंट (बड़े पीपल के पास) नागपुर–440036) नागपुर, ईमेल: commonwomen@gmail.com, मो. 8806744252

अवधुलेक्कडीवि

मूलः सी. नारायण रेड्डी*

"येंता निम्पिना ई मनस्सू खालीगाने उंदि
इदि परिपूरनणमै तोनिकिसलाड़े देप्पुडो ?
आ दशा तनकु रावद्दनि अदि कोरुकुंटून्दी
परिपूर्णता वल्ला पोंगुलेत्तेदी
अहंकारमनेदी दानिकुन्ना दृढनिश्चयमु
येंतटी व्यक्ति कैना
नेर्चुकोवलसिंदी
तनलोकि चेर्चुकोवलसिंदी
इनका येंतेंतो उन्दनी अनुकुन्नप्पुड़े
पोडूचुकोच्चे आलोचनलकू
कोत्त पदुनोस्तुन्दी
जिज्ञास आरनी दाहमला चंक्रमिस्तुन्दी
युग युगालुगा दईव स्वरूपलनी भाविंचे
ग्रहालू
वट्टी मट्टीदिब्बलनी रातिकुप्पलनी तेल्चिंदी
आ दाहामे
चच्चिनट्टू पडी उन्न इसुका एडारुलू
ऊपिरी पोसुकोनी
जलनिधुलुगा मूर्तिभविन्चिंदी आ तपनवल्लने
नित्य जागृत चौतान्यान्नी निम्पुकोंन्ना
प्रति जीवितं
मुगिम्पुलेनी दृश्य रूपकम

* ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित प्रख्यात तेलुगु भाषी कवि।

चूड़ा दगिना संघटनलू आडदगिन सन्निवेशालू
दारी पोडूगुना येदुरु चुस्तुनटायी
अदि गमनिनचिना चूपुन्नपुड़े
अवि समग्राक्रुतुलतो साक्षत्करिस्तायी
इनका साधिन्चेदेमुन्दनि अनुकोवडम
इनकी पोइना मनस्तत्वनिकी संकेतमु
निरंतर ग्यानात्रुष्णतो सागे अन्वेशणकू
अवधुलेक्कडीवि?
सृजन शीलामुन्ना ये मनासुकई ना
तानु पै अन्चुलादाका निनडीपोयानने
संतृप्ति कलागदु
येप्पटीकप्पुडू अनुभव राशुलनु
अक्षर सम्पुटालुगा मलुचुकुनटू सागिपोये
विरामम लेनी सुदीर्घ यात्रा दानिदी"

❑❑❑

कितना कुछ आया आज बाहर की दुनिया से
बस कोई चिट्ठी नहीं आई
इस पूरे भराव के बीच
मन खाली–खाली रह गया है
फागुन का यह दिन अनमन–अनमन–सा है
जैसे जाते–जाते उसे कोई (चिट्ठियाँ) कुछ कह गया है।

– **रामदरश मिश्र**

समय सीमा कहाँ है?

अनुवादः मोहम्मद जमील अहमद*

कितना भी भरने पर यह मन खाली रहता है
वह परिपूर्ण होकर संतुष्ट कब होगा ?
वह निश्चय कर लेता है कि परिपूर्णता से अहंकार आएगा
बड़े व्यक्ति को भी
और बहुत कुछ सीखना है
यह बात
मन में लानी है
तब नए विचारों को
तेज गति मिलती है
जिज्ञासा न मिटने वाली
प्यास की तरह बढ़ेगी
युग युगों से ग्रहों को देव स्वरूप समझते थे
पर मिट्टी के पहाड़ों की जानकारी
उस तप से ही मिली है
निर्जीव रेगिस्तान
जल निधि के रूप में जीवित हुए
उस प्यास से ही
नित चेतना भरा जीवन
अमिट दृश्य रूप है
अनेक अवसर
मार्ग में प्रतीक्षा करते हैं
दूरदर्शी होने पर
परिपूर्ण आकृतियाँ साक्षात्कार होती है

* अध्यक्ष, हिंदी विभाग, तेलंगाना विश्वविद्यालय दिचपल्ली, निज़ामाबाद, तेलंगाना

और क्या पाना है सोचना
संकुचित मन का संकेत है
निरंतर ज्ञान की तृष्णा से बढनेवाले खोज को
समय सीमा कहाँ है?
सृजनशील मन
शिखर पर पहुँचकर भी
अप्रसन्न रहता है
अनुभव के ख़जाने को
अक्षरों में बदल कर
विराम के बिना सुदीर्घ यात्रा करता है।

❑❑❑

संपर्क:

मोहम्मद जमील अहमद–अध्यक्ष, हिंदी विभाग, तेलंगाना विश्वविद्यालय दिचपल्ली, निज़ामाबाद, तेलंगाना–503322, ईमेलः ahmedjameelmd@gmail.com, मो. 9989734326

"आजकल की कविता बोल–चाल की अन्विति माँगती है, पर गद्य की लय नहीं माँगती। तुक–ताल का बंधन उसने अनात्यन्तिक मान लिया है, पर लय को वह उक्ति का अभिन्न अंग मानती है। वाह्य अनुशासन हेय नहीं तो गौण मान लेने पर आंतरिक अनुशासन को वह अधिक महत्त्व देती है।"

– प्रयागनारायण त्रिपाठी (तीसरा तारसप्तक)

मेरी कविता रोटियाँ नहीं दे सकती

तेज नारायण राय*

यह बात सच है कि
मेरी कविता रोटियाँ नहीं दे सकती किसी को
लेकिन यह भी सच है कि
किसी की रोटियाँ भी नहीं छीनती मेरी कविता
न ही करती है
किसी की रोटियाँ छीनने के लिए प्रेरित

मेरी कविता
जो कभी किसी दिन
तुम्हारे दरवाजे पर दे दस्तक
तो पगली समझकर भगा मत देना उसे
न ही कर लेना घर का दरवाजा के साथ–साथ दिल का दरवाजा बंद

बल्कि उसको देना सम्मान
दिल का दरवाजा खोल
अंदर बैठाना उसे
करना उससे जी भर बातचीत

वह इधर–उधर निहारेगी
पर उस पर करना नहीं संदेह
कोई जादू टोना नहीं करेगी वह बल्कि दिखाएगी जीवन की सच्ची राह
बटाएगी तुम्हारे दुख में हाथ
हर लेगी मन की हर पीड़ा
और ले जाएगी हाथ पकड़
अंधेरे से उजाले की ओर...

* सहायक अध्यापक, उत्क्रमित मध्य, विद्यालय, कुल्हाड़िया, जामा, दुमका (झारखंड)

इसलिए नफरत मत करना
मेरी कविता से
मत उड़ाना उसका मजाक
हो सके तो देना लोटा पानी
चटाई बिछाकर बिठाना उसे
पूछना उससे उसका हाल–चाल और हो सके तो कभी–कभी गुनगुना लेना मेरी कविता
और उसकी चंद पंक्तियों को

यह मानकर कि मेरी कविता
तुम्हें रोटियाँ तो नहीं दे सकती लेकिन किसी की रोटियाँ भी नहीं छीनती मेरी कविता
बल्कि रोटी छीनने वालों से
हिम्मत के साथ लड़ना सिखाती है मेरी कविता!

पीड़ितों के पक्ष बोल कर
पीड़ितों को देती है साथ मेरी कविता!

❑❑❑

संपर्क:

तेज नारायण राय– प्रखंड – जामा, जिला – दुमका (झारखंड)–814110, ईमेलः-tejnarayanray553@gmail.com, मो.– 6207586995

अपने–अपने कर थपें, लिखि पूजे तिय भीत,
सकल फले मनकामना, तुलसी प्रेम–प्रतीत।।

– **तुलसीदास**

मछली और स्त्री

सत्या शर्मा 'कीर्ति'*

स्त्री मछली नहीं होती
पर मछली के अंदर होती है स्त्री
जो जानती है
भावनाओं के जाल में
फँस मंडी में
पहुँचने का दर्द

मछली देखती है अक्सर
मंडी में बैठ
बोली लगाती
स्त्री को
जो कभी आँखों से,
कभी तराजू से तौलती है
किसी स्त्री को
किसी मछली को।

मछली तब चौंकती है
जब स्त्री नहीं करती कोई विरोध
मंडी में किसी नई स्त्री के
आने पर,
नहीं बचाती आबरु
लूट जाने पर
बल्कि उसे भी करती है
तैयार

* 'तीस पार की नदियाँ' (काव्य संग्रह), 'वक्त कहाँ लौट पाता है' (लघुकथा संग्रह), 'सीझते हुए सपने' (काव्य संग्रह) प्रकाशित। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में निरंतर लेखन में सक्रिय।

सजाती है खुद सा
और फिर अपनी जैसी ही
स्त्री की लगाती है बोली
जैसे मंडी में बैठ
तौल रही हो कोई मछली

और इस तरह
मंडी में स्त्री के हाथों ही
सजती और बिकती रहती हैं
स्त्रियाँ

तब उसके अंदर
छटपटाता है कुछ
और फिसल कर गिर जाता है
मन के अंदर
गहरे बहुत गहरे में।

एक दिन मछली पढ़ती है
स्त्री शरीर में कैद
स्त्री का दुख
उसके मन की पीड़ा

फिर मछली
कभी नहीं करती कोई विरोध बल्कि चुपचाप बिक जाती है
जैसे मंडी में बिक जाती हैं
स्त्रियाँ।

❑❑❑

संपर्क:

सत्या शर्मा 'कीर्ति', तीसरा तल, हाउस नं.–285 ओल्ड ए.जी. कॉलोनी कडरू, राँची, झारखंड–834002, ईमेलः satyaranchi732@gmail.com, मो. 7717765690

छत

रंजना जायसवाल*

कुछ घरों में
छतों पर जाने के लिए
सीढ़ियाँ नहीं होती
सोचती हूँ
उस घर में रहने वाले लोग कैसे होंगे?
क्या महसूस करते होंगे?
रह जाते होंगे महरूम
जाड़े की सर्द सुबह में
धूप में बाल सुखाने से
अलसुबह चिड़ियों की चहचहाहट से
शाम को सूरज के डूबने के साथ
एक दिन के अवसान या
नए आने वाले दिन के इंतज़ार से
रह जाते होंगे वंचित
सधे हुए हाथों से बने हुए
चिप्स, पापड़, अचार और बड़ियों के स्वाद से
गीले कपड़ों को सुखाने से लेकर

* स्वतंत्र लेखन, राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं में नियमित लेखन, विभिन्न पाठ्यक्रमों में रचनाएँ सम्मिलित।

अपनी भींगी पलकों को छिपाने से भी
पतंगों और नजरों के पेंच लड़ाने से लेकर
सलाइयों से बूटे उतारने से भी
रह जाते होंगे महरूम
उम्मीद का सूरज देखने से
स्याह रातों में
तारों के बीच अपनों को ढूँढने से
और शायद...
सुख–दुख बाँचने और बाँटने से भी...

❑❑❑

संपर्क:
रंजना जायसवाल– लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश–231001,
ईमेलः– ranjana1mzp@gmail.com, मो.– 9415479796

'बड़ा' रे जतन से सुआ हम पोसिला,
का माखन दूधवा खिलाय।
से हो रे सुआ विरीध चढ़ि बइठल,
पिंजरा रे धरती लोटाय।'

('मैला आँचल')

व्यंग्यात्मक दृष्टि का जीवंत दृष्टिकोण

सूर्यकांत शर्मा

व्यंग्य लेखन हिंदी साहित्य की वह विधा है जो पाठकों को गुदगुदाते हुए गहरे प्रश्नों से रूबरू कराती है। इस विधा में आज जिन लेखकों का नाम विशेष सम्मान के साथ लिया जाता है, उनमें डॉ. लालित्य ललित एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। "निराली दुनिया" उनका एक ताजा व्यंग्य संग्रह है, जिसमें जीवन के विविध रंग, समाज की विद्रूपताएँ, राजनीतिक छलावे, पारिवारिक संबंधों की गांठें और बदलते सामाजिक मूल्य बड़ी ही सहजता और तीखेपन के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। डॉ. ललित की रचनात्मकता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जटिल मुद्दों को भी इतने सहज शब्दों में बाँधते हैं कि पाठक बिना किसी बोझ के विचारोत्तेजना से भर जाता है।

"निराली दुनिया" का व्यंग्य संसार डॉ. लालित्य ललित के लोकप्रिय पात्र पांडेय जी के इर्द–गिर्द घूमता है। इस पात्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह आम आदमी के सबसे करीब है– न वह कोई महानायक है, न ही कोई असाधारण बुद्धिजीवी। वह ठीक वैसा ही है जैसा हमारे आस–पास का कोई चाचा, मामा, पड़ोसी या सहकर्मी। इसके माध्यम से लेखक ने हमारी सामाजिक संरचना, मानसिक दुविधाएँ, धार्मिक पाखंड, राजनीतिक दोगलेपन और पारिवारिक विडंबनाओं को कुशलता से उजागर किया है।

इस संग्रह के अध्यायों के शीर्षक को ही देखें तो स्पष्ट हो जाता है, कि प्रत्येक शीर्षक किसी–न–किसी सामाजिक व्यंग्य की ओर संकेत करता है, जैसे–

"पाखंड और सामाजिक विद्रूपताओं पर प्रहार", "पांडेय जी का स्थानीय टाइप वैश्विक नजरिया", "कलसी और चुप्पी प्रसाद का गठबंधन", "दतरी रंग के रंगबिरंगे स्यापे"... इत्यादि।

पुस्तक– 'निराली दुनिया' (व्यंग्य संग्रह) : लालित्य ललित, दृशी प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2025, मूल्य 250/– पृष्ठ संख्या–126।

डॉ. ललित का शिल्प हास्य के आवरण में गंभीरता का बेहतरीन उदाहरण है। वे व्यंग्य को केवल हँसी तक सीमित नहीं रखते, बल्कि समाज की नब्ज पर उँगली रखते हैं। उनकी शैली इतनी सहज और प्रवाहपूर्ण है कि पाठक रचना में खो जाता है। उनके पात्रों के नाम– चुप्पी प्रसाद भट्ट, गैंदा मल कलसी, तिकड़म सेठ पहाड़िया, रॉकेट सिंह दुहाजू, मास्टर चिंगपोली मखीजा–खुद में ही हास्य का पुट समेटे हुए हैं। जैसे ही ये नाम दृश्य में आते हैं, रचना की रोचकता कई गुना बढ़ जाती है।

डॉ. लालित्य ललित की सबसे बड़ी ताकत उनके जीवंत पात्र हैं। 'पांडेय जी' हर बार एक नई परिस्थिति में, एक नई दृष्टि लेकर सामने आते हैं। उनके संवादों में वह कस्बाई लहजा, लोक–प्रचलित मुहावरे, और मानवीय उलझनों की सच्चाई देखने को मिलती है, जो पाठकों को कहीं न कहीं छू जाती है। जैसे –

"अरे, देविका जी खाते–पीते लोग ही समाज को दिशा देते हैं..." जैसे वाक्य आम होते हुए भी गहरे कटाक्ष का बोध कराते हैं।

डॉ. ललित के संवादों में पंच लाइन की शैली है, जहाँ एक सामान्य सी बात भी व्यंग्य की धार से चमक उठती है। जैसे –

"मोमेंटो न हुआ, जोरू का रूमाल हो गया!"

यह केवल हास्य नहीं, 'सामाजिक व्यर्थताओं पर सटीक वार' है।

यह संग्रह सिर्फ व्यंग्य नहीं, एक सामाजिक दस्तावेज भी है। आज के दौर की राजनीतिक अवसरवादिता हो, धार्मिक पाखंड, महिलाओं की स्थिति, पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण, या मौसम विभाग की विश्वसनीयता:– डॉ. ललित किसी को नहीं छोड़ते। उनके व्यंग्य के निशाने पर समाज का हर वर्ग आता है।

एक उदाहरण देखें –

"लोग इतने पागल क्यों हैं पाखंडियों के पीछे, वे भगवान थोड़े हैं! वे लोग मात्र कथावाचक हैं... मूर्ख बनाने में चतुर हैं।"

यहाँ लेखक धार्मिक पाखंड पर खुली चोट करता है, बिना किसी लाग–लपेट के। यह केवल एक हास्यपूर्ण टिप्पणी नहीं, बल्कि चेतावनी है।

'वह बड़ी उम्र वाली लड़की' कविता के माध्यम से डॉ. ललित ने आधुनिक स्त्री की मानसिकता और समाज के विरोधाभास को अत्यंत संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया है। यह कविता संग्रह में एक ऐसा भावनात्मक क्षण है, जहाँ हास्य की जगह मर्म ले लेता है। इस कविता में उस स्त्री की कथा है, जो कैरियर बनाते–बनाते "उम्र की लक्ष्मण रेखा" पार कर जाती है और समाज की आलोचनाओं का सामना करती है।

लेकिन लेखक यहाँ स्त्री के फैसले का समर्थन करते हैं, उसे "बेटी नहीं बेटा" कहने वाली वृद्धाएँ हों या उसका स्वयं का आत्मसंतोष – यह इस व्यंग्य की पुस्तक में मानवीय दृष्टिकोण की गहराई जोड़ देती है।

डॉ. ललित का व्यंग्य केवल राजनीतिक या सामाजिक मुद्दों तक सीमित नहीं है, वे 'स्वास्थ्य संबंधी स्थितियों', 'दैनंदिन जीवन की आपाधापी', और 'मूल्यहीन होती जीवनशैली' पर भी नजर डालते हैं। उदाहरणतः–

"कभी कोलेस्ट्रॉल की गोलियाँ प्रेम में पड़ जाती तो कभी उच्च रक्तचाप की गोलियाँ दिल लगाने को बेताब हो जातीं।"

यह शैली एक साथ 'रम्य' भी है और 'विचारणीय' भी। आधुनिक जीवन की त्रासदी को वे 'इश्क की गलियों' से जोड़कर ऐसा चित्र रचते हैं, जिसमें हास्य के साथ कटाक्ष भी सहज ही प्रकट हो जाता है।

डॉ. लालित्य ललित की भाषा "जनमानस की भाषा" है – न कोई शब्दजाल, न दुरूह प्रतीकात्मकता। यही कारण है, कि उनका व्यंग्य हर पाठक तक पहुँचता है। वे रोजमर्रा के संवादों को साहित्यिक ऊँचाई पर पहुँचा देते हैं। जैसे–

"आज तो पार्टी हो गई..."

एक साधारण वाक्य, लेकिन पांडेय जी के मुँह से निकला तो व्यंग्य की मिठास से भर गया।

व्यंग्य में कविताओं का रचनात्मक प्रयोग पढ़ते हुए यह स्पष्ट नजर आता है, कि डॉ. ललित मूलतः कवि हृदय हैं; इसका असर उनकी गद्य रचनाओं में भी स्पष्ट है। "निराली दुनिया" में भी कई स्थानों पर वे कविता का सहारा लेकर भावनात्मक गहराई ला देते हैं। उनकी कविता केवल अलंकरण नहीं, विचारसंपन्न हस्तक्षेप है जो व्यंग्य के बीच अंतरात्मा की आवाज बनकर उभरती है।

"निराली दुनिया" केवल व्यंग्य का संकलन नहीं, यह एक आईना है जो आज के समाज को उसके अपने ही चेहरे दिखाता है। डॉ. लालित्य ललित ने अपने विशिष्ट शैली में समाज की हर परत को उधेड़ा है– कहीं हँसाकर, कहीं चुभन देकर और कहीं सोचने पर मजबूर करके।

पांडेय जी एक पात्र नहीं बल्कि हम सब का प्रतिबिंब हैं– जो जीवन से जूझते हैं, हँसते हैं, लड़ते हैं और फिर जीते हैं। यह संग्रह पाठकों को केवल हँसी नहीं देता बल्कि सचेत पाठक बनने की दृष्टि भी देता है।

डॉ. लालित्य ललित ने यह सिद्ध किया है कि व्यंग्य केवल मनोरंजन नहीं, एक सशक्त वैचारिक विधा है, जिसमें समाज का नवीनीकरण और आत्ममंथन दोनों संभव

हैं। 'निराली दुनिया' उनके इसी विचारशील, तंजपूर्ण और ललित व्यंग्य साहित्य का अनमोल उदाहरण है।

यह संग्रह उन सभी पाठकों के लिए अत्यंत आवश्यक है जो व्यंग्य को केवल हास्य नहीं, एक गंभीर सामाजिक हस्तक्षेप के रूप में देखते हैं। पुस्तक निश्चित ही पूर्व के व्यंग्य संकलनों की तरह व्यापक सराहना पाएगी।

"*निराली दुनिया*' केवल शब्दों का कौतुक नहीं, यह उस संवेदना का विस्तार है, जहाँ हास्य, करुणा और विवेक एक साथ अट्टहास करते हैं। डॉ. लालित्य ललित की लेखनी हमें बताती है कि व्यंग्य, मात्र वक्रोक्तियाँ नहीं– एक गंभीर साहित्यिक विमर्श है, जो सामाजिक चेतना को जाग्रत करता है और साहित्य को लोकजीवन से जोड़ता है। यदि आप हँसी में छुपी संवेदनाओं को महसूस कर सकते हैं, तो *'निराली दुनिया'* आपके लिए एक अनमोल अनुभव बन जाएगी।"

❑❑❑

परिचय

लालित्य ललित–प्रसिद्ध व्यंग्यकार और अनुवादक। 'पांडेय जी कहिन', 'साहित्य के लपकूराम' सहित कुल 40 व्यंग्य संकलन एवं 63 कविता–संग्रह प्रकाशित। संप्रति– संपादक, नेशनल बुक ट्रस्ट।

सूर्यकांत शर्मा–लेखक, अनुवादक, पत्रकार और समीक्षक के रूप में हिंदी और अंग्रेजी भाषा में लेखन कार्य।

संपर्क:

लेखक– लालित्य ललित– बी–3/43, शकुंतला भवन, पश्चिम विहार, नई दिल्ली–110063, ईमेलः lalityalalit27@gmail.com, मो. 9873525397

समीक्षक– सूर्यकांत शर्मा– मानसरोवर अपार्टमेंट, फ्लैट बी वन प्लॉट नंबर तीन सेक्टर–5 द्वारका, नई दिल्ली–110075, ईमेलः suryakant.sharma1902@gmail.com, मो. 7982620596

मेवाड़ व मराठाओं के शौर्य का वास्तविक, रक्तरंजित व रत्नजड़ित इतिहास

अंतरा करवड़े

"भक्त बीज पलटे नही, जो जुग जाय अनंत, ऊँच–नीच घर अवतरै, होय संत का संत" कबीरदासजी ने इन शब्दों को जीव की भक्ति भावना को परिलक्षित करते हुए अवश्य लिखा होगा। परंतु जब बात देशभक्ति और मातृभूमि के लिए प्रदर्शित शौर्य, बलिदान और निस्वार्थ त्याग की आती है; उसपर भी शौर्य का दूसरा नाम मेवाड़ और दमदार वीरता के साक्षात प्रतिरुप मराठों का नाम लिया जाता है, तब इतिहास स्वयं ही यह कह उठता है,

वह शौर्य मेवाड़ की धरती का हो या दम मराठों की शक्ति का
प्रमाण स्वयंसिद्ध है उस लहू का जो बोया धरती में भक्ति का

'भारत का अनकहा इतिहास; मेवाड़ एवं मराठाओं की सहस्र वर्षों की शौर्यगाथा' पुस्तक भारत के स्वर्णिम अतीत और सिसोदिया वंश की वीरता व मराठों की शौर्यगाथाओं की वास्तविकता को न केवल सप्रमाण प्रस्तुत करती है बल्कि नवीन पीढ़ी के समक्ष स्वयं पर गर्वित होने हेतु इतिहास की ओर देखने का एक नवीन गवाक्ष भी खोलती है।

एक अलग प्रकार के इतिहास के समानांतर एक लंबी अवधि तक हमारी शिक्षा प्रणाली चलती रही। परिणामस्वरुप चुनिंदा तथ्यों को रेखांकित कर निहित स्वार्थ की पूर्ति और वास्तविकता से परे रखकर हीन भावना के लिए उर्वर परिस्थितियाँ तैयार करने की एक दूषित मानसिकता निरंतर हमारी जड़ों को खोखला करने के प्रयास में रही। यह पुस्तक उन सभी तथ्यों का एक ठोस उत्तर है जिनके चलते हमारी मानसिकता प्रत्येक असफलता के लिए अपने कल को, अपनी नींव को कोसने की बन चुकी है।

मौजूदा दौर की, समस्याओं को रेखांकित करने की मानसिकता के सामने, यह पुस्तक सीधे–सीधे तथ्य रखकर स्वयं को सिद्ध करती है। ये तथ्य हमारे मन के

पुस्तक– 'मेवाड़ एवं मराठाओं की सहस्र वर्षों की शौर्यगाथा', लेखकः रघु हरि डालमिया, विवेक मिश्र, प्रकाशकः प्रभात प्रकाशन, संस्करण–2025, पेपरबैक पृष्ठ संख्या–208, मूल्यः 350/–

न्यायालय में जाते हैं और सत्य के इस साक्षात्कार के समक्ष, सब कुछ भूलकर त्रिवार वंदन को छोड़कर और कुछ भी करने की पात्रता हम स्वयं में नही पाते।

एक प्रभावी मुखपृष्ठ के साथ यह ऐतिहासिक यात्रा प्रारंभ होती है, जिसमें अखंड भारत की पार्श्वभूमि पर मेवाड़ और मराठाओं के स्पष्ट प्रतिनिधित्व के साथ ही एक स्थिर और एक निरीक्षक दृष्टि का साक्षात्कार होता है। पद्मभूषण प्रो. कपिल कपूर की संक्षिप्त और सटीक भूमिका के शब्द यह बता और जता देते हैं कि इन ऐतिहासिक तथ्यों को लेकर हमें अपनी सोच का पूरा सांचा ही बदलना होगा। हमारी नवीन पीढ़ी के बौद्धिक और चारित्रिक विकास को लेकर व्यक्त चिंता लेखक श्री ओमेंद्र रत्नू के लेखन से सामने आती है।

इन सभी अध्यायों के साथ चलते हुए, हम सनातन, मानवता और परिणामस्वरूप अपने ही इतिहास को घटित होता हुआ देखते हैं। मेवाड़ वंश के संस्थापक कालभोज (बप्पा रावल), जिन्हें प्रजा द्वारा 'बप्पा' कहकर उनके कर्तव्यपालन का सर्वोच्च पुरस्कार दिया जाता है और आज का रावलपिंडी (पाकिस्तान) नाम उनसे प्रेरित है, बहादुरी की मिसाल 'नौशेरा पठान' उन्हीं के वंशज है।

सनातन का इतिहास सदा से आध्यात्मिक साधना की शक्ति की नींव पर ही खड़ा रहा है। यह तथ्य हरित ऋषि की ओर से बप्पा रावल को मिले बारह वरदान बताते हैं और बप्पा का संपूर्ण चरित्र चंद्र शौर्य, समर्पण और वीरता का पर्याय बन जाता है। प्रथम मुगल आक्रांता का यह समय 728–758 ई. के बीच का था और इसमें भी आपसी विश्वासघात की सेंध के बल पर ही मुगलों का प्रवेश संभव हो पाया था।

इस कालखंड में स्त्रियों के शौर्य, राज्य व शासन की नीतियाँ, अरब सेना को पहली बार मिली हार और मूर्तिपूजा का पुनः प्रारंभ जैसे प्रमुख मुद्दों पर तथ्यपरक जानकारी पाठक की वैचारिक भूख बढ़ाती है। बप्पा रावल द्वारा निवृत्त होकर एक साधक के रुप में जीवन की इति करना सनातन के अनंत विस्तार संबंधी प्रमुख अध्याय को रेखांकित करता है।

रावल रतन सिंह और महारानी पद्मिनी का अध्याय न केवल पद्मिनी और पद्मावत के मध्य त्रुटिपूर्ण संबंध से लेकर वीर हम्मीर की महत्त्वपूर्ण भूमिका को पूरे विस्तार से सामने लाता है। वीर गोरा और बादल का शौर्य, सिसोदिया वंश का उद्गम और जौहर जैसी परंपरा का वास्तविक अर्थ इन तथ्यों के चलते सामने आता है। एक मार्मिक पंक्ति कहती है, 'जौहर की चिता की अग्नि के कारण ही आज तक सनातन धर्म का अस्तित्व बचा हुआ है'।

वीर हम्मीर और चारण बरबड़ी देवी का रोचक और भावपूर्ण प्रसंग अविस्मरणीय है। इसके साथ ही हम्मीर सिंह द्वारा तुगलक को छह माह तक बंदी बनाकर रखने

और फिर अपनी क्षमाशीलता के चलते मुक्त कर देने का प्रसंग एक साथ हमें अपने अतीत पर गर्व और इसकी उपेक्षा का दंश देता है।

महाभारत के बाद भी एक भीष्म पितामह हुए हैं, जिन्हें राजकुमार चुंडा कहा जाता है। पिता के प्रति आदर और वचनबद्धता के प्रतीक इस प्रसंग का आदर करते हुए उनके वंशज 'चुंडावतों' ने कभी भी मेवाड़ पर अपना अधिकार नही जताया। इसी कड़ी में आगे आते हैं महाराणा कुंभा, जिन्होंने जीवन में 56 अजेय युद्ध लड़े। महमूद खिलजी को छह माह कैद में रखने वाले महाराणा कुंभा की युद्ध नीति, उदारता, नेतृत्व क्षमता, संगीत और स्थापत्य कला को लेकर एक शानदार ऐतिहासिक अध्याय का साक्षी होना निःशब्द कर देता है।

सिसोदिया वंश का गौरवपूर्ण इतिहास आगे बढ़ते हुए हमें राणा सांगा के अद्भुत शौर्य का साक्षात्कार होता है। विविध युद्ध नीतियों के साथ ही खानवा के युद्ध संबंधित त्रुटिपूर्ण तथ्यो की पड़ताल और समर्पण के जीवंत उदाहरणों से भरा राणा सांगा का योगदान एक अजेय गाथा के रुप में सामने आता है।

इसके आगे यह पुस्तक वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप के अदम्य साहस, शौर्य, बलिदान और समर्पण को जिस जीवंत स्वरुप में सामने रखती है, तब वास्तव में उस काल में जाकर उन्हें वंदन करने का मोह होता है।

बीस वर्षों तक चले अमेरिका वियतनाम युद्ध में विजयी वियतनाम की रणनीति की तैयारी करने के लिए महाराणा प्रताप की युद्ध नीति का अवलंबन किया गया था और यह कहा गया था, कि ऐसे वीरों ने यदि हमारे देश में जन्म लिया होता, तो आज हम संपूर्ण विश्व पर राज करते।

महाराणा प्रताप नामक इस सुवर्ण अध्याय को यह पुस्तक तथ्यों, नीतियों, आश्चर्यजनक घटनाओं और अविश्वसनीय ऐतिहासिक सत्य के साथ प्रस्तुत करती है। पन्ना धाय का बलिदान हो या स्त्रियों के जौहर के साथ पुरुषों का साका बलिदान, भोग विलासी जयमाल के राज्याभिषेक के बाद भी उसे हटाकर सुपात्र महाराणा प्रताप को जनता द्वारा चुना जाना, भयभीत अकबर के चार संधि प्रस्ताव, हल्दीघाटी और दिवेर के युद्ध का सत्य; ये कुछ ऐसे बिंदु हैं जो इतिहास का श्वास है और इस निर्वात की पहचान होने पर एक स्वाभाविक असंतोष उभरता ही है।

क्या हम महाराणा प्रताप के पर्यावरण संरक्षक, सनातन संस्कारों पर आधारित पुस्तक के लेखक, विशिष्ट राज्याभिषेक पद्धति के जनक और चावंड चित्रकला के जनक के रुप में जानते हैं? मात्र प्रतिमाओं और भ्रामक 'घास की रोटी' जैसे तथ्यों में सिमटे प्रताप के शौर्य में आज भी इतनी ताकत है, कि स्मरण मात्र से अपने इतिहास को लेकर गर्व और स्वयं के अस्तित्व के प्रति जागरूक होना संभव हो जाता है।

इसके आगे महाराणा अमर सिंह और करण सिंह की शौर्यगाथा, जनसामान्य में निहित देशप्रेम, बलिदान और समर्पण की भावना, चारणों का अद्‌भुत योगदान, महाराजा राज सिंह का वीरोचित साहस, नाथद्वारा प्रकरण, जजिया कर के विरोध सहित विविध भावुक व अंतर्मन को उद्वेलित करने वाले प्रसंग आते हैं। इस दौरान यह पुस्तक एक अधिकार भाव से अपनी कथा कहती है और प्रत्येक पाठक इसमें छुपी व्यथा को अनुभूत किए बिना नहीं रहता।

इन शौर्यगाथाओं का साक्षात्कार करते हुए जो उर्वर वैचारिक भूमि तैयार होती है, उसमें देशप्रेम, सनातन संस्कृति, बुद्‌धिचातुर्य और परंपराओं का सम्मान करता हुआ एक और अध्याय आकार लेता है और हम पहुँचते हैं मराठों के गौरवशाली इतिहास के समक्ष।

महाराष्ट्र के इतिहास, सह्याद्रि, समुद्र और शिवाजी से होते हुए विविध राजवंशों की तथ्यपरक जानकारी के साथ जब आगे बढ़ते हैं तब एक बार फिर आश्चर्य और गर्वमिश्रित असंतोष से हमारा साक्षात्कार होता है। 'महाराष्ट्र' यह नाम पुलकेशिन द्वितीय के सातवीं शताब्दी के शिलालेख में अंकित है। इस तथ्य से प्रारंभ यह यात्रा राष्ट्रकूट, शिलाहार राजवंश से होती हुई मध्यकाल में देवगिरि के यादवों तक पहुँचती है जहाँ पर मराठी भाषा और साहित्य के उदय के संकेत मिलते हैं।

चूँकि दक्षिण की हिंदू सत्ताओं को मुस्लिम आक्रांताओं की युद्‌ध नीतियों के बारे में जानकारी नही थी, यही कारण था कि देवगिरि के यादव भी पराजित हुए। सनातन युद्‌ध नीति यथा सूर्यास्त के पश्चात युद्‌ध नही करना, ग्राम, किसान, मठ, मंदिर, सामान्यजन और खेतों पर आक्रमण नही करना जैसे नियमों का अनुचित लाभ मुस्लिम आक्रांताओं ने उठाया।

तुगलक के अत्याचारों के पश्चात औरंगजेब के शासनकाल में मराठा स्वराज्य की स्थापना को लेकर विस्तार से किया गया बिंदुवार वर्णन मराठों के समर्पण और गौरवशाली नीतिगत शासन को लेकर महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। राजमाता जिजाऊ अर्थात जीजाबाई के योगदान को रेखांकित करते हुए मराठा स्वराज्य संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज का भव्य दिव्य चरित्र सामने आता है।

सिसोदिया वंश और शिवाजी महाराज, दोनों का ही संबंध भगवान श्रीराम की वंशावली से है और यही कारण है कि सनातन को गुलामी से बाहर निकालने और उसके माध्यम से लोक कल्याण करने का कार्य करने हेतु इन दोनों वंशों द्वारा अपने कर्तव्य को स्वाभाविक रुप से पूर्ण किया गया। सिसोदिया वंश में जिस प्रकार से कीका थे, वैसे ही बाल शिवबा थे।

शिवाजी महाराज को समर्थ स्वामी रामदास और संत तुकाराम दोनों के ही

आशीष और मार्गदर्शन प्राप्त थे। इस प्रकार, सनातन की पुनर्स्थापना के लिए धार्मिक और आध्यात्मिक बल स्वयंमेव उपस्थित था। तोरणा से राजगढ़ और बारह मावल तक की यात्रा, बीच में आनेवाले अवरोधों के साथ ही कोंढाणा का किला और उससे संबंधित तानाजी मालुसरे का वीरोचित शौर्य हतप्रभ करता है। जिस द्रुत गति से शिवाजी महारज ने जावली विजय, प्रतापगढ़ किले का निर्माण और गनिमिकावा जैसी युद्ध नीतियों के बल पर आगे बढ़ रहे थे, वह एक चमत्कार ही था। अफज़ल खान का वध और कोंकण तट पर सिद्दियों पर नियंत्रण जैसी विविध विजयी उपलब्धियों से आलोकित महाराजा शिवाजी का चरित्र शब्द सीमा को पार कर श्रद्धा के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है।

एक ही समय में पुर्तगाली, मुगल, अंग्रेज, सिद्दी और आदिलशाह आदि के साथ युद्ध कर उन्हें परास्त करने वाले छत्रपति शिवाजी, उनकी दूरदर्शिता, प्रथम नौसेना की निर्मिति, अभियांत्रिकी कौशल और जनकल्याण के प्रति समर्पित जीवन उन्हें एक जीवित किवदंती में बदल देता है और भारतीय जनचेतना में उनका योगदान सदा ही अविस्मरणीय रहेगा।

स्वराज्य की स्थापना करने वाले छत्रपति शिवाजी के पश्चात् स्वराज्य रक्षक छत्रपति शंभूजी महाराज की वीरगाथा एक बार पुनरू मराठा साम्राज्य की पताका को एक नवीन चमक और ऊँचाई प्रदान करती है। शिवाजी महाराज की सनातन स्थापन यात्रा के प्रमुख सहायक शंभूजी महाराज रहे। दैवतुल्य पिता की सुयोग्य संतान के रुप में शंभूजी महाराज वास्तव में एक 'छावा' के रुप में स्वराज्य रक्षक की भूमिका में रहे। औरंगजेब के अहंकार को चूर–चूर करने वाले, चालीस दिनों तक भीषण यातना के पश्चात भी स्वधर्म में ही बने रहने वाले, कुशल प्रशासक, कूटनीति में माहिर शंभूजी महाराज का जीवन चरित्र इतिहास के उन अध्यायों में से एक है जिसे सामने लाया जाना इसलिए आवश्यक है, कि हम नवीन पीढ़ी के उन प्रश्नों के उत्तर दे सकें जो वे हमारी विरासत को लेकर करती है।

मराठा साम्राज्य को लेकर हमारी जानकारी कितनी सतही है, इसकी जानकारी हमें पुस्तक के अंतिम साठ पृष्ठों में मिलती है। मात्र तीस वर्ष की आयु लेकर आए छत्रपति राजाराम महाराज का शौर्य, चतुराई और शत्रु को उसकी भाषा में ही जवाब देने की कला में पारंगत इस नीतिनिपुण मराठे वीर को लेकर इतिहास का मौन खलता है।

उनके देहांत के पश्चात किले से युद्ध करने वाली कुशल योद्धा महारानी ताराबाई, जिन्हें मुगलमर्दिनी कहा जाता है। उनके शौर्य और उत्कृष्ट युद्धनीति के चलते तत्कालीन मराठा सेना छत्रपति शिवाजी महाराज व शंभूजी महाराज के कार्यकाल से भी घातक माना जाता है। मुगलों और पुर्तगालियों के विरोध का सामना करते हुए महारानी ताराबाई, जो कि छत्रपति शिवाजी महाराज की पुत्रवधू थी, ने

औरंगजेब को त्राहिमाम कहने पर विवश कर दिया था।

मराठा साम्राज्य में कूटनीतिक प्रावीण्य के प्रतीक के रुप में सामने आते हैं शाहूजी महाराज और पेशवा बालाजी विश्वनाथ। अठारह वर्षों की कैद के पश्चात शाहूजी महाराज ने नेतृत्व के अभाव में खंडित हो रहे मराठा साम्राज्य को एकजुट करने का महान कार्य किया। इसके आगे बालाजी विश्वनाथ ने दिल्ली के नवीन शासक को नियुक्त करने का कार्य किया जिसमें उनकी राजनीतिक, रणनीतिक और कूटनीतिक सोच, संधि संबंधी शर्तों को लागू करने की योग्यता और एक कुशल व्यवस्थापक के गुण महत्त्वपूर्ण थे।

सत्ता के विकेंद्रीकरण के साथ ही आपने मराठा मंडल का निर्माण कर इस साम्राज्य का एक नवीन अध्याय लिखा। यह समय शक्ति के साथ युक्ति का भी था जिसमें पेशवा बालाजी विश्वनाथ निपुण थे।

इसके आगे का समय था अंग्रेजों से आमना–सामना करने का। पेशवा बाजीराव प्रथम की कुशल नीतियाँ यहाँ पर गुणात्मक रुप से सफल रहीं। उनके अद्‌भुत शौर्य और अद्वितीय शासन व युद्‌धनिपुण व्यवहार से तत्कालीन मुगल व अंग्रेज दोनों ही आतंकित रहते थे। मराठों के आपसी संघर्ष को समाप्त करने में भी आपकी प्रमुख भूमिका रही।

इसके आगे हमें मराठों की विविध युद्‌ध नीतियों और दूरदर्शितापूर्ण योगदान की जानकारी मिलती है जिसमें एक अद्‌भुत मराठा नौसेना बेडा, एक सुव्यवस्थित व तत्कालीन स्थिति के अनुसार संशोधित और परिवर्धित अष्टप्रधान मंडल और मराठा मंडल की कार्ययोजना, विविध संधियों के माध्यम से अपने शासन कौशल का परिचय देने वाली और स्वधर्म व स्वदेश रक्षक नीतियाँ, तीन आंग्ल मराठा युद्‌धों के माध्यम से मराठों की वास्तविक शक्ति का परिचय देने वाली जानकारी का तथ्यपरक व विश्वसनीय स्रोत मिलता है।

समग्र दृष्टि से देखा जाए, तो राष्ट्रधर्म की गीता के रुप में यह पुस्तक कहीं से भी उपदेशात्मक नही होती। पुस्तक में विविध स्थानों पर प्रचलित और वास्तविक स्थितियाँ, तथ्य और आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। अपना पक्ष सिद्‌ध करने के लिए यहाँ पर किसी शाब्दिक प्रपंच की आवश्यकता नही पड़ती क्योंकि वास्तविक तथ्य, समर्पण की गहनता और वैचारिक ऊँचाई अथाह है और इसे निःशब्द होकर अनुभूत करना और अनुरूप आचरण करना ही पाठक के लिए एकमात्र विकल्प बचता है।

वृहद शोध और अध्ययन के पश्चात् सामने आने वाले तथ्य, सीधी सरल भाषा और अपने मजबूत पक्ष को पूरे आत्मविश्वास से सामने रखती शैली इस पुस्तक को एक अनिवार्य पठन की श्रेणी में लाती है। लेखक रघु हरि डालमिया और विवेक मिश्र कहीं

से भी स्वयं को रेखांकित नही करते और बिना किसी दबाव के एक स्पष्ट और प्रकाशित सत्य का अनावरण करते हैं।

सामान्य रूप से ऐतिहासिक तथ्यों के इर्द गिर्द आकार लेने वाली पुस्तकें पृष्ठ संख्या में सामान्य से अधिक और तथ्यपूर्व की भूमिका के साथ पुनरावृत्ति करती हुई पाठकों के साथ जुड़ाव कर पाने में उतनी सफल नही होती। अपवाद स्वरूप 'मेवाड़ एवं मराठाओं की सहस्र वर्षों की शौर्यगाथा' आकार में सामान्य और रोचक है।

कुल मिलाकर दो सौ आठ पृष्ठो में यह एक सोच और दृष्टि को पूरी तरह बदल देने वाला अनुभव है जिसका लाभ सुधी पाठकों को सरलता से सकारात्मक रुप से मिल सकता है। पुस्तक की छपाई संतोषजनक और मुखपृष्ठ विषय के साथ न्याय करता हुआ है। प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित यह कृति अपने उद्देश्य को लेकर सफल होती है और पाठकों को नवीन अनुभव देती है।

इतिहास को नवपरिभाषित स्वरुप में सामने लाने के प्रयासों की एक कड़ी के रूप में यह कृति स्वागत योग्य है।

❑❑❑

परिचय

रघु हरि डालमिया– अनेक सामाजिक– सांस्कृतिक संस्थाओं से सक्रिय संबद्धता; विविध प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत।

विवेक मिश्र– प्रतिष्ठित राष्ट्रीय समाचार–पत्रों में लेखन। 'आजादी @75 क्रांतिकारियों की शौर्यगाथा', 'भारत का अनकहा इतिहास–1' आदि पुस्तकों का संपादन पुस्तकों।

अंतरा करवड़े– कथा कविता, ललित निबंध, रेडिया नाटक, लघुकथा में विशेष सक्रियता। संप्रति– भाषा सेवा संस्थान के माध्यम से भाषा व ध्वनि सेवा।

संपर्क:

रघु हरि डालमिया – डालमिया हाउस, 4, सिंधिया हाउस, निकट किया शोरूम, नई दिल्ली–110001, ईमेलः rhdalmiadalmiacement.com

विवेक मिश्र – डालमिया हाउस, 4, सिंधिया हाउस, नई दिल्ली–110001, ईमेलः vivekgolumishra41296@gmail.com

अंतरा करवड़े– अनुध्वनि, 117, श्रीनगर एक्सटेंशन, इंदौर, मध्यप्रदेश–452018 ईमेलः greatantara@gmail.com, मो. 9752540202

काव्य साधारणीकरण संपूर्ण उत्कृष्टता को परिभाषित करता है

शंकर सहर्ष

काव्य संग्रह 'पवित्र मिट्टी' लेखिका निशा भास्कर की पुस्तक मेरे समक्ष है। कृति की समीक्षा से पहले मुझे लगता है कि कृतिकार के व्यक्तित्व की जानकारी उतनी ही अपरिहार्य है जितनी कृति की समीक्षा। संग्रह पढ़ने से मुझे आभास हुआ कि निशा भास्कर ने घनी निशा में भास्कर को हृदय में समाहित कर प्रखर प्रज्ञा प्राप्त कर ली है और यही संग्रहित प्रज्ञा उनके व्यक्तित्व से प्रस्फुटित होकर उनके कृतित्व को आलोकित कर रही है। इस संग्रह में कविताओं के माध्यम से प्रेम के विविध रूपों को मूर्त रूप दिया गया है। कवि जीवन की सफलता का आधार है भाव संप्रेक्षण; अपने भावों को वह जितनी सरलता, स्पष्टता तथा सरसता से व्यक्त करता है उतना ही स्थायित्व रचनाओं को प्राप्त होता है। अमूर्त भावों की संप्रेषणीयता का आधार केवल भाषा ही है। भाषा ही भावों को वहन करती है और उसे भावन के योग्य बनाती है। कवि जीवन को समग्र रूप में स्वीकार करता है। यह स्वीकृति ही उसके व्यक्तित्व की विशालता के कारण विविध रूपों में दिखाई देती है। यही कारण है कि भाषा को कवि–व्यक्तित्व का परिचायक भी स्वीकार किया जाता है।

उपरोक्त काव्य संग्रह में संकलित कविताओं को पढ़कर लेखिका के व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रति भाव आया जो शब्दों में ढल गया। जैसे प्रेम का इंद्रधनुषी रंग मानवीय हृदयाकाश पर अंकित कर सूक्ष्म संसार में विचरण करने की संभावना प्रकट करती हुई सृष्टि के कण–कण में कविता की धारा बहती है, प्रकृति की प्रत्येक क्रियाएँ लयात्मक और काव्यात्मक अवदान से मनुष्य को परिचित कराती है, नीला आसमान, बादलों की बदलती आकृतियाँ, समीर का संचरण, सावन की फुहार, काले मेघों का मूसलाधार वर्षण करना, वृक्षों का झूमना और पत्तों से मरमरी आवाजे निकलना, पुष्प दल का गिरे ओस बिंदुओं का मुस्कुराना, गुलाब का चटकना ये सारे अद्‌भुत दृश्य हमारे भाव संवेदना को आंदोलित करने वाले हैं। ये सारे भाव जैसे 'पवित्र मिट्टी' में

पुस्तक : पवित्र मिट्टी (काव्य–संग्रह), लेखक : निशा भास्कर, प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2025, मूल्य–295/–, पृष्ठ संख्या–164

एकत्र होकर भावों के गहरी जलप्रपात बन पड़े हैं। कवयित्री के अनुभव जगत के साथ सूरत कथाओं को भी काव्य में स्थान मिला है जो चेतना को सजग करने वाला है। यह संग्रह अतुकांत कविता, नई कविता और मुक्तक की त्रिवेणी है।

"पवित्र मिट्टी" की कविता में मूल भाव मानवीय प्रेम और संवेदना से गुजर कर अनंत में विलीन होना है। प्रेम से संबंधित अनवरत् कथाएँ और कविताएँ लिखी जाती रही हैं और हर काल में यह एक नवीन रूप में प्रकट होकर पाठक को आकर्षित करता है। 'पवित्र मिट्टी' कविता में वेश्या के आँगन की मिट्टी की पवित्रता और उसके खुद को अपवित्र माने जाने पर प्रश्न उठाया गया है।

"धार्मिक लोग माँगने आए थे
उसके आंगन की माटी
आज इतना महत्त्व?
उसने भीड़ को गौर से देखा
अरे यह तो वही पुजारी है!
जिसने मुझे दुत्कारा था
छह महीना पहले
मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़ने नहीं दिया था
जहाँ मैंने पाँव रखा था
उस स्थान को गंगाजल से पवित्र किया था
गंगाजल के छीटें मेरे ऊपर भी पड़े थे
पर मैं पवित्र नहीं हो पाई थी
किंतु वह स्थान पवित्र हो गया"

हृदय में अनुभूति पैदा करने वाली भावपूर्ण भाषा और जीवन का अनुभव संप्रेषण को गहरा करता है। इस पुस्तक में शामिल कुल 61 कविताएँ इसी तरह प्रेम के विविध रंगों से सराबोर हैं। 'इमरोज बनना आसान नहीं है' कविता में सुप्रसिद्ध कवयित्री और लेखिका अमृता–इमरोज के निस्वार्थ, कामना रहित प्रेम संबंध को स्वर दिया गया है। किसी व्यक्ति विशेष पर कलम चलाना आसान नहीं होता है। किंतु इस कविता में लेखिका ने अपनी सरल संवेदना और समग्र दृष्टि के कारण इस प्रेमी जोड़े के बेशर्त प्यार को कविता में पिरोया है।

'बिन वादे व इजहार के
वह संग–संग चला
ज़मीं तो जमीं
आसमान तक सफर किया
वह दरख़्त है इमरोज़
जिसकी हर डाली जुहार करती है

इश्क के फूल खिलते हैं
बीज सजदे के लगते हैं।"

'रंगरेज मेरे रंगरेज मेरे' कविता एक आत्मीय पुकार है। यह संयोग वियोग का लयात्मक अभिव्यंजना ध्वनित करती है। एक ही परिदृश्य में हृदय की दोनों गतिविधियों की एक साथ उपस्थिति प्रेमी मन के द्वंदात्मक प्रतिक्रिया के साथ सुबह की मरमरी धूप सी सुखद है। देखिए–

"अभिराम डगर यह प्रेम नगर
तुम बस जो मेरे क्षीर हृदय
तुम छोड़ ना मुझको अब जाना
यह नया कलेवर का बाना।"

वात्सल्य रस से सिंचित कविता "एक शाम दिवाली की" में माँ के हृदय की करुणा जैसे प्रत्येक आँगन की कहानी के रूप में उपस्थित है। इस कविता में संतान की एक–एक मासूम शरारत, माँ के प्रति उसका आकर्षण, जिसे एहसास कर माँ अस्तित्व को स्वीकारती है, मौजूद है। माँ के हृदय की वह रोशनी है, नूर है, उसके बिना हर त्यौहार अधूरा है। उसके आने से ही घर में दिवाली जैसी शाम हो सकती है। कविता में बड़ी मार्मिकता के साथ माँ के हृदय का उद्‌गार अभिव्यक्त हुआ है। "कौन से फूल" कविता के द्ववारा उन जरूरतमंद और मासूम बच्चों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है जो हर लाल बत्ती पर नजर आते हैं। वे याचनापूर्ण स्वर में पेन, पेंसिल, टिशू पेपर तथा अन्य सामग्रियाँ बेचकर पोषण करने के लिए मजबूर हैं। इस भीड़ में लेखिका एक गुलाब बेचती हुई लड़की की आवाज सुनकर ठहर जाती हैं। लेखिका की पैनी दृष्टि उन बच्चों के पूरे अस्तित्व से रूबरू होती है। उस बच्ची की आवाज सुनकर वह सोचने लगती है कि कौन से फूल लूँ, जो उसके हाथ में है या वह स्वयं जो एक फूल की भाँति है। यहाँ मानवीय संवेदना की शानदार अभिव्यक्ति हुई है। "मैं हूँ महाकाव्य!" में कवयित्री समाज में नारी की सशक्त भूमिका से रूबरू कराया है।

"मैं हूँ एक महाकाव्य!
मुझे पढ़ने से पहले
तुम्हें आचमन करना होगा
शांत चित से हृदय कर दीप
प्रज्वलित करना होगा।'

"मैं प्रकृति स्वरूपा
इस जग की अस्तित्व हूँ मैं
व्यापक जीवन का मूर्त रूप हूँ।"

'अरुण की बेला', 'खेलूँ फाग तुम्हारे साथ', एक बार मिलन की आस तो दो', 'कान्हा संग रास रचाएंगे' कविताओं में जैसे नदी की कल–कल धारा से प्रेम संगीत फूट पड़ा है।

"तुम हो प्रिये जीवन बसंत
मैं वसंतिक हवा निराली
साँस–साँस में तुम जीवंत
प्रेम पुंज मेरे मन के माली।"

उपर्युक्त कविता में भाषा और भाव की प्राजंलता मनमोहक है। यह रूह को छुती हुई प्रतीत होती है। कविता का रंग रूप भाव अनुभूतियाँ और उद्‌देश्य सब कुछ ऐसा है मानो दही मथने के बाद का मक्खन। भाव के सागर में गोते लगाती कविताएँ अपनी सौंदर्य बोधता और क्रियात्मक होने के कारण हृदय में ठहर जाती हैं। मिट्‌टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए पावस ऋतु का जैसे बरसना आवश्यक होता है, इसी तरह हर आत्मा की प्यास आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने की आकांक्षा लिए हुए होती है। उसी को स्वर देती हुई कविता है 'अरे ओ धाराधर'। 'अरे ओ धाराधर' कविता में मेघ का आह्‌वान किया गया है–

'मैं प्रतीक्षारत धरा हूँ
आज तू वर्षा सुधारस'

"चलो चले उस पर" कविता अविरल गति से प्रवाहमय जीवन में आत्मिक शांति और प्रेम के मार्ग पर ले जाने के लिए उत्सुक है। 'स्वभाव', 'प्रश्न', 'ऐसे में आओ मेरे माही!' काव्यात्मक दृष्टि से शरद ऋतु की धूप–से ग्रहणीय है। भाषा अत्यंत प्रभावी है तथा प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग उत्कृष्ट है।

उदाहरण के लिए–

"अयी विरह की देवी!
तुम हो मेरे जीवन की अमूल्य निधि
तुमसे जगता है उच्छवास
गहरे तल में प्रिय की याद
यह मंद समीर उसकी आहट
यह रवि शशांक
उसकी चितवन
फूलों का बरसना उदार हृदय
झूमती पत्ते नर्तन उसके
विहगों का कलरव
धुन वंशी के।

"पवित्र मिट्टी" की कविता वन फूलों की तरह सौंदर्यबोध से आपूरित कर सुगंधित वातावरण में पक्षियों की कलरव की भांति सुमधुर नाद करती प्रतीत होती है। मिलन व विरह के गीत, ईश्वर के प्रति आस्था, परमप्रिये से मिलने की आकुलता, नश्वर से अनश्वर की ओर ले जाती है। शांत और श्रृंगार रस का समायोजन "एक स्त्री" और "मदर्स–डे" कविता में पूर्णरूप से साकार हुआ है। एक स्त्री माँ के रूप में तब पैदा होती है जब उसके गर्भ से संतान उत्पन्न होती है। उसका बच्चे के मुँह से माँ शब्द सुनने की खुशी, संतान की लंबी उम्र की कामना आदि इतना भाव से भरा है कि आँखों के आगे एक दृश्य उपस्थित हो जाता है। पवित्र मिट्टी की प्रत्येक कविता पाठक को भाव में डुबोकर मूल उद्देश्य का संप्रेषित करने में सफल है। संवेदना के चरम उत्कर्ष इस कविता में देखने को मिलती है। स्पंदित नारी कविता में बिंबात्मक और प्रतिकात्मक रूप में राधा, सीता और द्रौपदी जीवंत रूप में प्रकट होती है। आँखें करुणा से भर आती हैं।

इस संग्रह में भारतीय मूल्य, संस्कार, संस्कृति, पौराणिक कथाएँ, प्रेम–स्नेह का भाव तथा श्रृंगाार–वात्सल्य रस, मान–मनुहार, प्रार्थना से पूर्ण स्वीकार भाव का औदार्य है। धैर्य, प्रेम, त्याग और रसमर्पण से पूर्ण कविताएँ मन के भाव को आंदोलन करती हैं। प्रकृति को केंद्र में रखकर की गई कविताएँ भी मनमोहक हैं। जैसे 'कोयल' कविता की भाषा शैली सहज एवं सरल है।

"आता है जब मनमोहक वसंत
गाती हो तब तुम स्वर–पंचम।"

शिल्प–सौंदर्य से प्रत्येक कविता सजग पाठक की दृष्टि को सूक्ष्म बनाने में सक्षम है। शब्द भंडारण से भावपूरित कविताओं को बखूबी स्नेह सूत्र से पिरोया गया है। अंततोगत्वा पाठक एक बार पुस्तक हाथ में उठा ले तो सारी कविताओं को पढ़ने के बाद ही उठेगा। कविता का संयोजन, पाठक को अंत तक बाँधे रखता है। यह संग्रह छंदबद्ध नहीं है बल्कि त्रिवेणी है। इस संग्रह में अतुकांत कविता, नई कविता और मुक्तक की धारा बह रही है। अभिव्यक्ति का रसायन प्रेम से शुरू होता है और प्रेम पर ही खत्म होता है। इसलिए पद्य स्वतः लयात्मक बन पड़ा है। अलंकार का प्रयोग भी सहज स्वाभाविक है। कहीं भी कोई शब्द निरर्थक या प्रयोजनहीन नहीं है। कवयित्री ने अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी कहीं–कहीं किया है पर वह प्रासंगिकता के कारण स्वीकार्य है। कविता में निहित भावों का संप्रेषण पाठक के हृदय से फूटकर उसके होठों पर गीत बनकर उतर जाता है।

अकारण प्रेम को लेखिका ने प्रकृति के सदृश्य माना है। प्रेम केवल स्त्री–पुरुष के बीच का संदर्भ नहीं है बल्कि सामाजिक सरोकार और आध्यात्मिकता में फलीभूत होने वाला सूक्ष्म तत्व है। 'हृदय की तुम करुण पुकार' और 'संज्ञान' कविता के माध्यम से प्रेम और मित्रता के स्वाभाविक स्वरूप को आबद्ध किया गया है।

"किसने जाना है
ध्रुपद पुत्री के जज़्बातों को?
किसने पढ़ा है उन पन्नों को
जो श्यामा ने–
श्याम के लिए लिखा था।
मांग लिया था वरदान में
स्वयं के लिए सदा–सदा के लिए
केवल पीड़ा
बस श्याम का साथ पाने के लिए।
****
हम तो हँसते
औरों को हँसाने के लिए
वरना दर्द इतना गहरा है कि
ठीक से रोया भी नहीं जाता।

धार्मिकता की नजर से देखने पर पता चलता है कि लेखनी कितनी उदारमना है।

पिक और पपीहे की
यह राग है मस्तानी
सूफियों के कलीरें में
अजान की रवानी
मंदिर की घंटियों में
सुनता है गुरुवाणी
खामोशियों के लब पर
मैं शोर का पहरा हूँ
जीने की आरजू में
मैं आज भी जिंदा हूँ।

इनकी कविताओं की भाषा में भावों की सरिता फूट रही है। 'फागुन की बयार', 'सिया संकट में है', 'स्वराग', 'आँखें', 'कान्हा संग रास रचाएँगे', 'प्रेम करके मैं हार गई' कविता की खूबसूरती में अंतर्मन के भावों की प्रगाढ़ता है।

प्रेम करके मैं हार गई
मेरा है सुकुमार कलेजा
तुम निर्दयी कठोर
चाहो तो मुझे बूड़त उबारो
नाही तो प्राण गई।

इसमें मनभावन पंक्तियों के द्वारा प्रेम का प्राकट्य हुआ है। ऐसे शब्द और अर्थ को कविता कहते हैं, जिसमें दोष नहीं गुण हो। कविता और छंद की परस्पर घनिष्ठ संबंध को इस तरह देखा जाता है कि एक प्राणों का संगीत है तो दूसरा हृदय का कंपन, जैसे अनुभूति और अभिव्यक्ति एक दूसरे से अभिन्न है। इस संग्रह में अनुभूति और अभिव्यक्ति की अभिव्यंजना बेजोड़ है। प्राकृतिक दृश्यावलियाँ, सजग चेतना और मनमोहन भावभीनी शब्दावलियाँ मानस पटल पर एक सुंदर दृश्य अंकित कर देती हैं। निशा! आप भास्कर की तरह दैदीप्यमान हों। मेरी शुभकामनाएँ।

❑❑❑

परिचय

निशा भास्कर– विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानियाँ प्रकाशित। संपादित पुस्तक– 'स्पंदन'। संप्रति– दिल्ली शिक्षा निदेशालय में कार्यरत।

शंकर सहर्ष– सेवानिवृत्त सहायक मंडल प्रबंधक (भाारतीय जीवन बीमा निगम) वर्तमान में अधिवक्ता, जिला न्यायालय, नरसिंहपुर, मध्यप्रदेश।

संपर्क:

लेखिका :– निशा भास्कर– आर जेड एफ– 41, A/26, पालम कॉलोनी, नई दिल्ली–110045, ईमेलः nisha.bhaskar71@gmail.com, मो. 9868533100

समीक्षक :– शंकर सहर्ष– गली नंबर 2, धनारे कालोनी, नरसिंहपुर, मध्य प्रदेश–487001, ईमेलः tiwarishankar1961@gmail.com, मो. 9424635350

तुम्हें देख क्या लिया कि कोई
सूरत दिखती नहीं पराई
तुमने क्या छू दिया बन गई
महाकाव्य कोई चौपाई

– **गोपालदास 'नीरज'**

आर्यावर्त की सांस्कृतिक धरोहर

हरभजन सिंह मेहरोत्रा

भारत के चक्रवर्ती सम्राट लेखक देवराज सिंह जादौन ने बहुत ही परिश्रम और लगन से शोध मनन करके इस ग्रंथ की रचना की है। वास्तव में सनातन परंपरा और आर्यों की विलक्षण प्रतिभा को भलिभांति समझने के लिए यह अत्यंत उपयोगी पुस्तक है जो कालातीत से पाठकों का साक्षात्कार कराती है।

यहाँ लेखक स्वयं कहते हैं– संपूर्ण पृथ्वी पर भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का संदेश 'कृष्णवन्तो विश्वमार्यम्' लेकर 'वासुदेव कुटुंकम्' का विचार लेकर, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'? का मंत्र लेकर 'मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्, आत्मवत सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पंडितः' का आचरण लेकर तथा 'राष्ट्र सर्वोपरि' की दृष्टि लेकर, जो लोग गए, जिनमें बड़े–बड़े राजपरिवार तथा व्यापारी व समाज सुधारक शामिल हैं; से आज की पीढ़ी परिचित हो, यह हमारा दायित्व है।'

हमारे पूर्वजों ने अपने समय में एक समृद्धशाली कला और संस्कृति से परिपूर्ण वैभवशाली सभ्यता को विकसित किया। यह सभ्यता युद्ध कला, वास्तुविद्, शिल्पकार, धातुकर्मी तथा अभियांत्रिकी में प्रवीण थी।

'मनुस्मृति' में ब्रह्मवर्त को भारत में सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच के क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया गया है। इसे कदाचित पवित्र स्थान का दर्जा प्राप्त है। 'मनुस्मृति' की बात करें तो यहाँ देवों का आवागमन होता था। इन्होंने शेष विश्व के लिए नैतिकता और आचरण के मानक निर्धारित किए। लेखक के अनुसार यह स्थल कुरुक्षेत्र भी कहलाता है।

विभिन्न मतानुसार इस क्षेत्र का सटीक स्थान अनिश्चितता का विषय रहा है। कुछ विद्वान, जैसे पुरातत्वविद् ब्रह्मवर्त शब्द को आर्यावर्त क्षेत्र का पर्याय मानते हैं।

दृषद्वती का उल्लेख मुख्यतः ब्रह्मवर्त राज्य में लिखे गए ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है। इन ग्रंथों के अनुसार, इस नदी का उद्गम ब्रह्मा के कुंडः अजमेर के पास

पुस्तक– भारत के चक्रवर्ती सम्राट', लेखकः देवराज सिंह जादौन, प्रकाशकः प्रभात प्रकाशन, संस्करण–2025, मूल्य : 500/–, पृष्ठ : 320

पुष्कर झील से हुआ था। विभिन्न दिशाओं में बहने वाली चार शाखाओं वाली सरस्वती का उद्‌गम पुष्कर के पास की पहाड़ियों से हुआ था। दृषद्वती उत्तर से पूर्व की ओर बहने वाली शाखा थी। आज यह यमुना के नाम से जानी जाती है।

लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में इक्यावन चक्रवर्ती राजाओं, मनु से लेकर राजा कुवलयाश तक के जीवन चरित्र, उनकी शासन व्यवस्था एवं राज्य के प्रति उनके दायित्व आदि का प्रभावशाली वर्णन किया है। सच्चे अर्थों में इन राजाओं की छवि महानायक के रूप हमारे सामने परिभाषित और प्रदर्शित होती है।

चक्रवर्ती, विश्व शासक की प्राचीन भारतीय अवधारणा, संस्कृत के चक्र, "पहिया" और वर्तिन, "घूमने वाला" से मिलकर बनी है। इस प्रकार, चक्रवर्ती को एक ऐसे शासक के रूप में समझा जा सकता है जिसके रथ के पहिए हर जगह घूमते हैं, या जिसकी गतिविधियाँ अबाधित हैं और जो विश्व का सबसे शक्तिशाली और जल–थल का अधिष्ठाता है। जिसने मानव जीवन के कल्याण ही नहीं वरन् समस्त जीव–जंतुओं को अभय भी दिया है।

पृथ्वी के प्रथम चक्रवर्ती राजा सम्राट मनु को माना जाता है। जो ब्रह्मा के मानस पुत्रों में ऐसे एक पुत्र थे, जो पुरुष रूप में थे। राजा मनु का शासन काल 9500 ईसा पूर्व से अधिक का माना गया है। इनकी संतान से ही समस्त मानव जाति की उत्पत्ति हुई है।

'मनुस्मृति' में राजा मनु ने उस समय की सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था का वर्णन किया है। लेखक देवराज के विचार से यह आज के परिप्रेक्ष्य में भी प्रासंगिक है। मनु ने राज्य को सप्तांग माना है अर्थात् राज्य एक ऐसा अवयव है, जिसके सात अंग होते हैं। स्वामी, मंत्री, राजकोष, दंड, दुर्ग, मित्र तथा रानी। इन सभी अंगों को मिलाकर ही सप्तांग राज्य बनता है।

मनु के पश्चात् प्रियव्रत चक्रवर्ती राजा बने इनकी दो पत्नियां रहीं। प्रजावति तथा बर्हिष्मति। 'मार्कंडय पुराण' के अनुसार प्रियव्रत ने पृथ्वी को सात खंडों में विभाजित करके अपने सात पुत्रों को उन खंडों का राजा नियुक्त किया। अर्थात् मानव उत्पत्ति सर्वप्रथम भारत में हुई। तत्पश्चात प्रियव्रत के पुत्रों ने निर्जन खंडों में जाकर मनुष्यों के लिए निवास स्थान बनाया, जिन्हें विश्व के अनेक भागों में जन्में मनुष्यों के रूप रंग और शारीरिक परिवर्तन आज हम देखते हैं। उसके पीछे वहाँ की जलवायु, स्थान, परिस्थितियाँ आदि हैं।

धरती के तृतीय चक्रवर्ती राजा प्रस्तुत पुस्तक में राजा पृथु हैं। पृथु अर्थात् विस्तारित। पृथु के जन्म को लेकर लेखक ने एक रोचक घटना का वर्णन किया है जो वास्तव में अद्‌भुत और असाधारण है। राजा वैन बहुत ही दुष्ट, अहंकारी अत्याचारी राजा था। अपने राज्य की सीमा बढ़ाने हेतु व दुश्मन के साथ क्रूरता से पेश आता तथा

निर्ममतापूर्वक व्यवहार करता। प्रजा के दंड विधान उसी की देन है। उसके कृत्य देख महाऋषियों ने उसका वध कर दिया। तत्पश्चात उसके हाथ का मंथन किया, जिसके फलस्वरूप तेजस्वी मनुष्य ने जन्म लिया जो कवच, कुंडल और अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित था। इसलिए इनका नामकरण पृथु रखा गया।

पुराणों से लिए गए संदर्भों का उल्लेख यथा लेखक ने अर्थ सहित पुस्तक में किया है। किसी भी घटना को वैज्ञानिक स्तर पर सिद्ध करने का देवराज ने पूरा प्रयास किया है। अर्थात कोई कपोलकल्पित घटना नहीं कही जा सकती।

राजा पृथु के शासनकाल में प्रकृति ने वरदानस्वरूप ऋतुओं के आधार पर फल फूल मनुष्यों को प्रदान किए। लेकिन प्रजा के पास कोई कार्य नहीं था। न उनमें कोई दुर्भावना या किसी प्रकार का व्यसन था। यह विचार महाराज पृथु के मस्तिष्क में प्रथम आया तो उन्होंने पूरी पृथ्वी का निरीक्षण कर ऐसे कई काम खोजे जिनकी सहायता से जीवन सुगम और सुचारु हो सकता था। इसके लिए उन्होंने समस्या का निदान न होते देख पृथ्वी को घेरा। इसके पश्चात् धरा स्वयं मेव अन्न का उत्पादन करने लगी। पृथु के शासनकाल में गृह निर्माण, खेती और रोजमर्रा के जीवन में काम आने वाले औजार और बर्तनों का कार्य शुरू हुआ।

लेखक ने किसी भी घटना अथवा राजाओं का उल्लेख करते हुए, पुराण, महाभारत, स्कंध पुराण, आदि पर्व एवं मनुस्मृति आदि ग्रथों को आधार बनाया है और अपनी बात को प्रमाणसहित संस्कृत के श्लोक के माध्यम से प्रमाणित भी किया है। लेखक की दृष्टि ने उस काल का जीवंत चित्रण राजनैतिक व समाजिक परिप्रेक्ष्य में पाठकों के समक्ष रखा है। मात्र इतिहास बनाकर अपना पीछा नहीं छुड़ाया।

इसी क्रम में राजा अंबरीश आते हैं। ये नाभाग के पुत्र थे। दयालु, श्रद्धालु, भक्तिभाव से परिपूर्ण एक संयमी राजा थे। बलवान इतने थे कि इन्होंने समस्त पृथ्वी के लगभग दस लाख राजाओं को युद्ध में पराजित करके संपूर्ण पृथ्वी में सैकड़ों वर्षों तक राज किया। अपने जीवनकाल में इन्होंने असंख्य यज्ञ किए। इनके शासन में प्रजा भी प्रभु स्तुति में लगी रहती। यह एक राजा के सद्गुणों का ही प्रभाव होता है जब प्रजा राज, राजा और लोक हित के लिए समर्पित रहे। इससे बड़ा उदाहरण किसी भी राजा के शासनकाल में नहीं मिलता, जब राजा स्वयं तो स्वर्ग प्राप्त करता है और प्रजा को भी स्वर्गलोक ले जाता है। लेखक ने भी राजा अंबरीश के सद्गुणों का उल्लेख जिस तरह से किया है। पाठक भी अवश्य इस पुस्तक को पढ़ भाव–विभोर हुए बिना नहीं रह पाता।

पुस्तक में वर्णित अगले क्रम के चक्रवर्ती राजा मांधाता हुए हैं। इनके पिता युवनाश्व द्वितीय थे। लंबे समय तक राजा युवनाश्व ने ऋषिमुनियों द्वारा संधान करके जो दही मिश्रित घी प्राप्त हुआ था, उसे गलती से राजा ने खा लिया था। परिणामतः पिता का पेट फाड़कर मांधाता बाहर आए। इन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञ तथा सौ राजसूज्ञ

यज्ञ करवाए और संपूर्ण पृथ्वी पर राज किया। यह भी कहा जाता है इनके समय में मधु और शहद की नदियाँ बहती थीं, कुएँ और पर्वत भोज्य पदार्थ देते थे। सोच कर देखिए यह किसी फेयरी टेल या परी कथा से कम नहीं लगता। लेकिन लेखक ने महाभारत के आदि पर्व, द्रोण पर्व, स्कंध पुराण तथा शान्ति पर्व आदि से साक्ष्य उठाए हैं।

भारत आज की तरह किसी नक्शे में नहीं सिमटा था। संपूर्ण पृथ्वी पर क्षत्रियों का राज था। मांधाता त्रिलोक विजय कहलाते थे। ब्राह्मणों का न सिर्फ आदर सत्कार होता था बल्कि किसी भी धार्मिक अनुष्ठान में उनकी मुख्य भूमिका रहती थी।

राजा मांधाता के पश्चात सत्यव्रत चक्रवर्ती राजा कहलाए गए। यह त्रैय्यारण्य के पुत्र थे। सत्यव्रत अपने किशोर काल में एक दुर्गुण युवराज के रूप में कुख्यात थे। कभी किसी कन्या का अपहरण कर लेना या गाय की हत्या कर उसके मांस का भक्षण करना उनकी प्रवृत्ति थी। ऐसे कुकृत्यों से दुखी होकर इनके पिता राज–पाठ छोड़कर वन प्रस्थान कर गए। वन जाते समय महाऋषि वशिष्ठ भी इनके पिता के साथ थे। इस कारण से सत्यव्रत वशिष्ठ मुनी से नफरत करते थे। इसके विपरीत ऋषिवर विश्वामित्र पर इनकी आगाध श्रद्धा थी।

दरअसल सत्यव्रत पर विश्वामित्र की कृपा के कारण इनका राज्याभिषेक हुआ। किंतु इनके शासन काल में प्रजा की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। सदेह स्वर्ग जाने की इनकी इच्छा को देवताओं के विरुद्ध जाकर विश्वामित्र ने अपना तपोबल भी गवाया। किंतु राजा, इन्द्र के विरोध को रोक ना सकने से आकाश में अटक कर रह गए। इसलिए सत्यव्रत त्रिशंकु भी कहलाए गए।

त्रिशंकु के पुत्र हुए हैं राजा हरिश्चंद्र, जो त्रिशंकु के बाद अयोध्या के राजा बने थे। इनकी पत्नी का नाम तारामती और पुत्र रोहित या रोहिताश्व के रूप में पहचान हुई है। राजा हरिश्चंद्र सत्यनिष्ठ, कर्तव्यपरायण, दानशील, भक्तिभाव से परिपूर्ण, न्याय संहिता का पालन करने वाले एक प्रजा पालक राजा थे।

दानवीरता उनकी ख्याति के साक्षी स्वयं भगवान विष्णु रहे हैं। 'विष्णु पुराण' में इसका उद्धरण मिलता है। एक बार राजा हरिश्चंद्र को स्वप्न में दिखा कि उन्होंने अपना राज दान में दे दिया है। सुबह उठे तो राज–काज में वे राज के दान की बात भूल गए। कुछ दिन गुजरे तो महर्षि विश्वामित्र ग्यारह सौ ब्राह्मणों के साथ उनके राज महल पधारे। यथोचित सत्कार करने के पश्चात् विश्वामित्र ने राजा से कहा आप कुछ भूल रहे हैं। सहसा हरिश्चंद्र को राज्य दान देने की बात याद आई तो उन्होंने ऋषिवर को अपना राज्य दान में दे दिया। बाद में विश्वामित्र ने ब्राह्मणों को दक्षिणा देने की बात की तो राजा ने कहा मेरे पास जो कुछ भी था आपको दान दे दिया। इस पर ऋषिवर ने कुपित होकर बोला, "यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो पाप के भागीदार बनोगे।"

दक्षिणा प्राप्त करने के लिये हरिश्चंद्र को राज छोड़ना पड़ा। रानी होकर तारामती को अपने पति को छोड़ किसी के घर दासी बनना पड़ा। राजा को श्मशान घाट का काम करना पड़ा। रोहित की सांप के काटने से मृत्यु हो गई। फिर भी अपना कर्तव्य का पालन करते हुए तारामती से कर की मांग की। चक्रवर्ती राजाओं में ऐसा कोई राजा नहीं हुआ जिसने अपना धर्म निभाने के लिए सत्य और कर्तव्य का मार्ग अपार यातनाओं के सहते हुए भी नहीं छोड़ा। लेखक से इतना महत्त्वपूर्ण प्रसंग छूट गया जो अति आवश्यक था।

'हरिवंश पुराण' से राजा सगर के चक्रवर्ती सम्राट होने के प्रमाण मिलते हैं। इन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञ किए थे। यह यज्ञ विंध्य और हिमालय पर्वत के मध्य किसी स्थान पर हुए थे। लेखक ने विस्तार से प्रस्तुत पुस्तक में राजा सगर की वंशावली दी है। लेखक ने चक्रवर्ती राजाओं का वर्णन करते हुए भारतीय पुरातन इतिहास का जिक्र किया है। वास्तव में वह श्लाघा योग्य है। कितना विस्तृत, समृद्ध, कौतुकों से भरा हमारा इतिहास है। जिसे आमजन तक पहुँचाया ही नहीं गया। शिक्षा प्रणाली का यह दायित्व बनता है इसे छोटी कक्षाओं के बच्चों तक पहुँचाना सुनिश्चित किया जाए।

एक विशेष बात यह रही कि इस पुस्तक की रचना विभिन्न पौराणिक ग्रंथों के आधार पर की गई है। लगभग सभी ग्रंथों में राजाओं के नाम को लेकर अथवा घटनाओं में भ्रम की स्थितियाँ बनी हुई हैं। वाल्मीकि रामायण में कुछ एक घटनाएँ, स्थान नाम आदि अलग हैं तथा महाभारत आदि पर्व में कुछ और है।

सगर के साठ हजार पुत्र ऋषिवर कपिल के श्राप से भस्मीभूत हो गए थे। जिनका तर्पण गंगा देवी द्वारा सगर के वशंज भगीरथ ने पूर्ण किया। इसके लिए भगीरथ ने हिमालय में हजार वर्षों तक कठोर तपस्या की। गंगा देवी प्रकट तो हो गईं पर उनके वेग को संभालना मुश्किल था। तब भगीरथ ने शंकर जी की तपस्या की। तदुपरांत शिवजी ने गंगा को अपनी जटाओं में संभाला। अगर राजा भगीरथ न हुए होते तो धरती में गंगा अवतरित न होती। ऐसी स्थिति में मनुष्य, जीव–जंतु आदि पृथ्वी में जल की समस्या से जूझ रहे होते।

भगीरथ बहुत ही दानी राजा थे। उन्होने सभी प्रकार के यज्ञ किए। चक्रवर्ती राजा तो थे। लेकिन यज्ञ के पुण्य से राज ऋषि भी कहलाए गए।

श्रुत के पुत्र नाभाग थे। जो कालांतर में चक्रवर्ती सम्राट नाभाग कहलाये। ये अत्यंत धर्मपरायण, प्रजा पालक दानवीर, शीलवान, दयालु और शूरवीर थे। समस्त पृथ्वी को इन्होंने सात दिन में जीत लिया था। बाद में अपने राज्य को ब्राह्मणों को दान दे दिया था। एक स्थान पर नाभाग को लेखक ने भगीरथ के पुत्र के नाम से विख्यात हुए, लिखा है।

इसी तरह से राजा दिलीप या दिलीप खटवांग के पिता श्री वाल्मीकी रामायण के अनुसार विश्वशाह बताया गया है। लेकिन 'मत्स्य पुराण' के आधार पर अंशुमान

के पुत्र राजा दिलीप थे। यह तथ्य विचारणीय है। हालाँकि लेखक ने बाद में अन्य पुराणों के आधार पर चक्रवर्ती राजा दिलीप को विश्वसाह का पुत्र की पुष्टि की है।

लेखक ने यह तथ्य स्वीकार किए हैं। इस बारे में वह लिखते हैं– वैसे भी बहुत सी बातें हैं हमारे धर्मग्रंथों में, जो अलग–अलग रूप में ही हैं। खासतौर से वंशावलियों के विषय में पुराण, इतिहास, महाभारत आदि एक नहीं हैं, हम उन सब तथ्यों पर विश्वास ही कर सकते हैं।

राजा दिलीप का राज्य हर प्रकार के धन–धान्य से समृद्ध था। दिलीप महाराज दानी, पराक्रमी और धर्मपरायण राजा थे। दीर्घ बाहु राजा रघु, महाराजा दिलीप के पुत्र थे। अपने पिताश्री के समान ही रघु भी अत्यंत शौर्यवान, तेजस्वी तथा दयालु प्रकृति के थे। सप्तदीपों की विजय पताका इन्होंने भले नहीं लहराई। परंतु जंबूद्वीप की चारों दिशाओं में विजय प्राप्त कर अपार मोती, माणिक और स्वर्ण आदि कर के रूप में हारे गए राजाओं से जीत कर वापस अपनी राजधानी अयोध्या पहुँचे और समस्त धन–धान्य ब्राह्मणों में बाँट दिया। कुछ समय बाद राजा रघु ने विश्वजीत यज्ञ किया। यज्ञ की समाप्ति पर हारे हुए जो राजा इनके साथ आए थे। उनका यथोचित सत्कार करके ससम्मान उनको अपने–अपने राज्य में वापस भेज दिया। ताकि वे किसी तरह की ग्लानि का अनुभव न कर सकें। इससे पता चलता है राजा रघु सहिष्णु प्रकृति के थे। इसके अतिरिक्त अपने शासनकाल में प्रजा हित में विकास के कार्यों को अंजाम दिया जो उन्हें दूरदर्शी सोच का दर्शाता है।

राजा अज के पुत्र राजा दशरथ हुए हैं। कालांतर में ये सम्राट दशरथ कहलाए। राजा दशरथ शौर्यवान, तेजस्वी, न्यायप्रिय और सहृदय प्रकृति के थे। यह प्रजा के जनप्रिय राजा थे।

किसी भी सम्राट ने अगर चक्रवर्ती की पदवी प्राप्त की है भले इसके पीछे उनकी महत्त्वाकांक्षा रही हो। लेकिन राज्य के विस्तार अथवा हारे गए राजाओं को अपने आधीन करने की भावना हो, परंतु उस राज्य एवं प्रजा के दुख और कष्टों के निवारण का दायित्व भी चक्रवर्ती राजाओं का अपना होता था। राजा दशरथ के जीवन में कई उतार–चढ़ाव आए। श्रवण कुमार के वृद्ध माता–पिता द्वारा शापित होना है तो, रानी केकयी के वरदानस्वरूप राम के वियोग में प्राण त्यागना, लंबी अवधि तक निःसंतान रहना, यह सब प्रसंग उन्हें सहनशील और संवेदशील बनाते हैं। एक चक्रवर्ती राजा के रूप में उन्हें अपार दुखों का सामना करना पड़ा।

राजा राम के बारे में सर्वविदित है कि वे भगवान विष्णु के अवतार थे। अर्थात् उन्हें आराध्य देव अथवा भगवान माना गया। पुस्तक में वर्णित इक्यावन चक्रवर्ती राजाओं में श्रीराम ही एकमात्र ऐसे चक्रवर्ती राजा थे जो अवतारी पुरुष थे। अवतारवाद की अगर बात करें तो भगवान रूप में उनकी छवि मर्यादा पुरुषोत्तम की रही। लेखक लिखते हैं– बल और पराक्रम से युक्त होने पर भी उन्हें कोई गर्व नहीं था। शांत चित्त,

विनम्र, संयमी तथा भगवान रूप होने के पश्चात् किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए उन्होंने आराध्यों की विधिवत् पूजा–अर्चना की। यह उनका मनुष्य रूप में ईश्वर के प्रति आस्था का प्रतीक है। जो हम सबके लिए एक अनुकरणीय उदाहरण भी है। उनका धरती में अवतार लेने का मक़सद अनाचारी, अत्याचारी और शिवजी या ब्रह्मा जी से वरदान पाकर राक्षसों के त्रिलोक विजय का अभियान और अभिमान तोड़ कर उनका संहार करने का था। राम को चौदह वर्ष का वनवास, देवताओं द्वारा रचाया गया एक प्रपंच मात्र ही था, जिसके तहत कई बड़े–बड़े दुर्दम्य राक्षसों का वध राम के हाथों हुआ।

राजा चंद्रमा ब्रह्मा जी के वशंज तथा अत्रि मुनि के पुत्र थे। यह आयुर्वेदिक विज्ञान तथा नक्षत्र विज्ञान के विशेषज्ञ थे। गैलीलियो गैलिली को खगोल विज्ञान का जनक माना जाता है जबकि भारत में आज से करोड़ो वर्ष पूर्व राजा चंद्रमा नक्षत्र विज्ञान के महाज्ञाता थे। इन्होंने अश्वमेध यज्ञ तथा राजसूय यज्ञ किए। तीनों लोकों के विजेता राजा चंद्रमा की सेवा में हर घड़ी नौ देवियाँ तत्पर रहतीं। गंधर्व कुमारियाँ और अप्सराओं से राज दरबार में रागरंग चलता रहता। इन्हीं कारणों से इनके भीतर अहंकार जाग गया। फलस्वरूप बृहस्पति की पत्नी तारा का हरण कर लिया। कहीं पर यह भी लिखा पाया गया है कि तारा चंद्रमा के प्रेम में पड़कर पति को छोड़, उसके साथ रहने लगी। ग्रंथो अथवा पुराणों में अक्सर ऐसे विरोधाभास पाए गए हैं। तारा को पुनः प्राप्त करने के लिए बृहस्पति ने अपने शिष्य चंद्रमा के विरुद्ध युद्ध आरंभ कर दिया।

बृहस्पति की ओर से समस्त देवताओं ने चंद्रमा के कृत्य की भर्त्सना करते हुए चंद्रमा को युद्ध के लिए ललकारा। बृहस्पति से शुक्राचार्य का वैर था तो वह दानवों को लेकर चंद्रमा के पक्ष में युद्ध करने आ गया। अंत में चंद्रमा ने तारा को लौटा दिया।

चंद्रमा के संग बिताए कुछ दिनों की परिणीति थी तारा का पुत्र। जो बाद में चक्रवर्ती राजा बुध कहलाया। हालाँकि बुध का पिता चंद्रमा से हमेशा विरोध का भाव रहा। बुध के वैवाहिक संबंध को लेकर एक अद्भुत और विचित्र आख्यान पुराणों में वर्णित है। वैसे भी पुराणों में दिए गए कई साक्ष्य या घटनाओं का जिक्र आता है। जो अपने में तमाम विचित्रताएँ समेटे हुए हैं।

'मत्स्य पुराण' के अनुसार राजा बुध का विवाह इला से हुआ था। दरअसल इला मनु का पुत्र था जिसने आरंभ में मनु के बाद राज्य का कार्यभार संभाला। संयोग से राजा इला समस्त भू लोक की यात्रा में था कि भूलवश ऐसे वन में चला गया, जहाँ पुरुषों का जाना वर्जित था। यह श्रवण वन था। जो पुरुष वहाँ चला जाता तो वह नारी में बदल जाता। इला नारी बनकर सभ्रम की स्थिति में विचर रही थी तो उसे राजा बुध मिले। वे सौंदर्यवती इला पर मोहित हो गए और अपने महल ले आए। इला अपना

पूर्व भूल बैठा था अतः राजा बुध की पत्नी समझ वहीं रहने लगी। बाद में इसका पुत्र हुआ जो पुरुरवा कहलाया। यदि देखा जाये तो पृथ्वी पर यह पहला स्त्री–पुरुष का जोड़ा था जो लीव इन रिलेशनशिप में रहा। लेखक ने इस संबंध में कुछ यूँ लिखा है– राजराजेश्वर महाराज पुरुरवा का जन्म बुध व इला के संसर्ग से हुआ।

जहाँ तक राजा पुरुरवा का प्रश्न है कि एक बार वे सूर्यदेव के साथ उनके रथ से आकाश मार्ग से गुजर रहे थे। उसी समय दानवराज केशि अप्सरा उर्वशी और चित्रलेखा का हरण करके अपनी नगरी ले जा रहा था। तब राजा पुरुरवा ने दानव राज के चुंगल से अप्सराओं को बचाया। इस घटना से प्रेरित होकर राजराजेश्वर का बल और सौंदर्य देख उर्वशी इनपर मोहित हो गई। पुरुरवा द्वारा अरणी मंथन करते हुए अग्नि को तीन भागों में विभक्त करना व तीन वेदों का उद्‌भव करना उनकी पुरुषत्व की महानता को प्रकट करता है। अरणी मंथन अग्नि को उत्पन्न करने वाला काठ का यंत्र है। जो शमी की लकड़ी से बनाया जाता है जिससे अग्नि पैदा होती है। यही आग यज्ञ में उपयोग की जाती है।

ययाति नहुष के पुत्र तथा पुरुरवा के वशंज् थे। ययाति ने सहस्त्रों यज्ञ किए। इनका राज्य संपूर्ण पृथ्वी पर था। ययाति का विवाह शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से हुआ। देवयानी के हठ स्वरूप शर्मिष्ठा जो दानवराज वृषपर्वा की पुत्री थी अपनी दासी बना कर विवाहोपरांत ययाति के महल में आ गई। संयोग से जब देवयानी गर्भवती थी। उस समय राजा ययाति शर्मिष्ठा के संसर्ग में आए। कालांतर में देवयानी से ययाति के दो पुत्र तथा शर्मिष्ठा से तीन पुत्र हुए। देवयानी ने ययाति और शर्मिष्ठा की सारी करतूत पिता शुक्राचार से की तो दानव गुरु ने ययाति को वृद्‌ध होने का शाप दे दिया। जिसे अपनी पुत्री की याचना पर श्राप के प्रतिबंध को इस तरह से कम किया, यदि कोई अन्य जवान व्यक्ति ययाति का बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी देगा तो राजा पुनः जवानी प्राप्त कर लेंगे।

ययाति ने अपने सभी पुत्रों से निवेदन किया, पर इस कार्य हेतु कोई तैयार नहीं हुआ सिवाय शर्मिष्ठा के छोटे पुत्र पुरु ने पिता के श्राप को अपने ऊपर ले लिया। राजा ययाति वेदों के अच्छे ज्ञाता थे, तथा महाभारत के शांति पर्व, वायु पुराण व द्रोण पर्व में इन्होंने ऋचाएँ भी सृजित की हैं। लेखक ने इनकी गाई हुई एक ऋचा का उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक में किया है जो इस प्रकार से है–

"यत् पृथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं ब्रजेत।।

अर्थात् इस पृथ्वी पर जितने भी थान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्री आदि भोग्य पदार्थ है। यह विचारणीय तथ्य है क्या स्त्री भोग की कोई वस्तु है। इस विषय पर सुधीजन अपना निर्णय दे सकते हैं।

चक्रवर्ती सम्राट महामना का जिक्र पौराणिक इतिहास में नहीं मिलता। लेखक के अनुसार 'मत्स्य पुराण' में मिले एक श्लोक के आधार पर महामना के चक्रवर्ती राजा होने की पुष्टि होती है।

एक बात तो स्पष्ट है किसी भी राजा–महाराजा की वंशावली, पत्नी आदि को लेकर सभी पुराणों में मतभेद दिखते हैं। 'मत्स्य पुराण' में राजा शशबिंदु के सौ पुत्र और दस हजार पत्नियाँ बताई गई हैं। 'विष्णु पुराण' में एक लाख पत्नियाँ एवं दस लाख पुत्र थे। महाभारत के शांति पर्व के अनुसार एक करोड़ पुत्र थे। सोचने की बात है तत्कालीन समय में पृथ्वी में मनुष्य तथा जीव जंतुओं की भरमार थी। प्राकृतिक संपदा, पर्वत और नदियाँ भी प्रचुरता में थी। यह भी निश्चित है कि उस काल में राजा योगी धर्मावलंबी, दयालु पराक्रमी और प्रजा पालक थे। इसी कारण से देश में अराजकता अथवा अपराध नाम मात्र था। हाँ उत्पात की घटना को अंजाम देने वाले दानव दुष्ट ही थे।

शशबिंदु की दानशीलता के बारे में कहते हैं कि अश्वमेध यज्ञ में उन्होंने अपने सभी पुत्र भी ब्राह्मणों को दान में दे दिए थे। चक्रवर्ती राजा पराक्रमी, दानी, धर्मात्मा और सौ अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले कहलाए जाते थे। इस कार्य के पीछे उनकी मुख्य अभिलाषा देश की सीमा बढ़ाना नहीं बल्कि लोक कल्याण की भावना रहती थी।

चक्रवर्ती सम्राट उशना, रुक्मकवच, जनमेजय, सुधन्वा, मनस्यु, ऋचेय, दुष्यंत से लेकर कुवलयाश्व तक जितने महाराजा का पुराणों में जिक्र मिलता है, वे सब कोई काल्पनिक कथा के गढ़े गए पात्र नहीं हैं बल्कि इस पृथ्वी के वर्तमान का वो इतिहास हैं जो उच्च तकनीक से कुशल, सक्षम वह संपन्न था। सहज ही जिनका विचरण मृत्यु लोक से स्वर्ग लोक अथवा अन्य ग्रहों में होता था। जिसे आज भी वैज्ञानिक मस्तिष्क समझने में नासमझ है। देवराज सिंह जादौन ने इस पुस्तक की रचना कर के एक तरह से मानव जाति को उपकृत किया है तथा सम्राटों के जीवन काल में हुए उनके कृत्यों का बड़ी समझदारी से विवरण प्रस्तुत किया है। इन्होंने वेद पुराणों से इतर जाकर कुछ भी नहीं लिखा। यह हिंदी के पाठकों के लिए बहुत ही जरूरी एवं बहुमूल्य पुस्तक है। भाषा सरल और सुबोधगम्य है। साक्ष्यों का विवरण सटीक और प्रमाणिक है। रोचक शैली में लिखी इस पुस्तक को विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल होना चाहिए। जादौन जी इसके लिए साधुवाद के पात्र हैं।

❑❑❑

परिचय

देवराज सिंह जादौन– समाज सेवक, लेखक और विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेख व संपादन कार्य। 'कश्मीर' (विभाजन से पहले व बाद), अनमोल हमारी थाती है पुस्तक प्रकाशित।

हरभजन सिंह मेहरोत्रा– अब तक सात उपन्यास, पाँच कहानी–संग्रह एवं साहित्यिक विधाओं पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित। कई कहानियों का अन्य भाषाओं में अनुवाद।

संपर्कः

लेखक :– देवराज सिंह जादौन– भीम ब्रजरानी सेवा संघ भवन सीताराम, कूंचा बड़ा बाजार बरेली, उत्तर प्रदेश–243003, ईमेलः devrajrss94@gmail.com, मो. 9411039615

समीक्षक :– हरभजन सिंह मेहरोत्रा– 390/3, शास्त्री नगर, कानपुर, उत्तर प्रदेश–208005, ईमेलः harbhajankp@yahoo.com, मो. 9839101647

मेघ! तुम आकाश में
फैली हुई ज्यों नील चादर
शीत झरनों से भरे मधु वेंकटम के
महाप्रभु तिरुमाला संग आए तुम्हारे क्या?
अश्रु धारा गिर रही झर–झर
प्रपातों की तरह इन स्तनों पर
नष्ट उसने कर दिया स्त्रीत्व मेरा,
क्या उसे गौरव मिलेगा?

– आण्डाल
(साभार– सुभाष राय)

आपने लिखा

कृत्रिम बौद्धिकता के इस युग में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता न केवल ऐतिहासिक है, बल्कि तकनीकी और नैतिक रूप से अत्यंत महत्त्वपूर्ण भी है। ये उदाहरण है कि कैसे हजारों वर्ष पुराना ज्ञान आधुनिक तकनीक की नींव को मजबूत कर सकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा एक अत्यंत विशाल, प्राचीन और वैज्ञानिक है बल्कि इसमें विज्ञान, गणित, चिकित्सा, खगोल विज्ञान, वास्तुकला, कला और शासन व्यवस्था जैसे अनगिनत विषय शामिल हैं। 'भाषा' पत्रिका के संपादक मंडल को इस महत्त्वपूर्ण अंक के लिए हार्दिक साधुवाद।

—डॉ. मनोज कुमार
सहायक प्राध्यापक, किरोड़ीमल महाविद्यालय

रहिमन चुप हो बैठिये
देखि दिनन के फेर।

जब नीके दिन आइहैं,
बनत न लगिहैं देर।।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066
ई–मेल – chdsalesunit@gmail.com
फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 248, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपये, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....
पूरा पता : .....
.....
.....
मोबाइल/दूरभाष : .....
ई–मेल : .....
संबद्धता/व्यवसाय : .....
आयु : .....
पूरा पता जिस पर : .....
पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
एक प्रति का मूल्य	रु. 50.00
वार्षिक सदस्यता	रु. 250.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

सदस्यता शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in – Quick Payment – Ministry (007 Higher Educationn) Purpose (Education receipt)--- 211766 JR. ADMN. OFFICER, CENTRAL HINDI DIRECTORATE में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम, पूरा पता और दूरभाष भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

कोश निर्माण योजना

केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना दिनांक 1 मार्च, 1960 को शिक्षा मंत्रालय (अब उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय) के अधीन की गई थी। केंद्रीय हिंदी निदेशालय का मूल उद्देश्य भारत के संविधान के अनुच्छेद 351 में हिंदी भाषा के विकास के लिए दिए गए विशेष निर्देश का अनुपालन करना है। हिंदी को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान करने, हिंदी भाषा के माध्यम से जन–जन को जोड़ने और हिंदी को वैश्विक धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए निरंतर प्रयासरत हिंदी की यह शीर्षस्थ सरकारी संस्था महत्त्वपूर्ण योजनाओं को कार्यान्वित कर रही है। जिनमें से कोश निर्माण योजना एक महत्त्वपूर्ण योजना है।

(i) हिंदी एवं भारतीय भाषा कोश योजना
(ii) विदेशी भाषा कोश योजना

कोश–निर्माण योजना

हिंदी के विकास एवं संवर्धन के लिए निदेशालय द्वारा विभिन्न भारतीय और विदेशी भाषाओं के हिंदीमूलक कोश तथा तद्विपरीत भारतीय एवं विदेशी भाषामूलक हिंदी कोश तैयार करने की योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं।

हिंदी एवं भारतीय भाषा कोश योजना–

इस योजना के अंतर्गत निम्नलिखित प्रकार के कोश तैयार किए जा रहे हैं–

(क) एकभाषा कोश योजना–

इसके अंतर्गत हिंदी के 3 एकभाषा कोश–हिंदी पारिभाषिक लघु कोश, अभिनव हिंदी कोश तथा बृहत हिंदी कोश प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें एक अतिमहत्त्वपूर्ण कोश बृहत हिंदी कोश है जो वर्ष 2018 में 2 खंडों में प्रकाशित हो चुका है। हिंदी और हिंदी में अपनाए गए अन्य शब्दों की व्युत्पत्ति को द्योतित करने वाला हिंदी व्युत्पत्ति कोश प्रकाशनाधीन है।

(ख) द्विभाषा कोश योजना :–

इस योजना के अंतर्गत भारतीय भाषाओं के व्यावहारिक लघुकोश प्रकाशित किए जा रहे हैं। इनमें हिंदी–मूलक कोश भी हैं और भाषामूलक कोश भी। इस योजना के अंतर्गत अब तक 15 हिंदी मूलक द्विभाषा कोश और 8 भाषा मूलक द्विभाषा कोश प्रकाशित किए जा चुके हैं।

(ग) त्रिभाषा कोश योजना–

त्रिभाषा कोश योजना के अंतर्गत हिंदीमूलक त्रिभाषा कोश (जैसे–हिंदी–गुजराती–अंग्रेजी, हिंदी–बंगला–अंग्रेजी) और भारतीय भाषामूलक त्रिभाषा कोश (जैसे ओडिआ–हिंदी–अंग्रेजी, मराठी–हिंदी–अंग्रेजी) कोश तैयार किए जा रहे हैं। इसके अंतर्गत 15 त्रिभाषा कोश (भाषामूलक–4, हिंदीमूलक–11, प्रकाशित हो चुके हैं।

(घ) बहुभाषा कोश योजना :–

भारत के संविधान में उल्लिखित सभी 22 भाषाओं के समुचित विकास तथा सभी भारतीय भाषाओं में आपसी सामंजस्य स्थापित करने हेतु निदेशालय में बहुभाषा कोशों पर भी कार्य चल रहा है। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण भारतीय भाषा कोश है जिसमें अब तक संविधान स्वीकृत सभी 22 भारतीय भाषाओं को सम्मिलित करते हुए संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण प्रकाशित किया जा चुका हैं। इसके साथ है निदेशालय द्वारा प्रकाशित सभी कोश एवं वार्तालाप पुस्तिकाएँ निदेशालय की आधिकारिक वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in पर उपलब्ध हैं।

पंजी. संख्या 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305–2–2026
500

कोश एकक द्वारा प्रकाशित कोशों की सूची

1. हिंदी–हिंदी कोश

(क) एकभाषा कोश

1. अभिनव हिंदी कोश
2. हिंदी–पारिभाषिक लघु कोश
3. बृहत हिंदी कोश–दो खंडों में

2. भारतीय भाषाओं के कोश

(क) बहुभाषा कोश

1. भारतीय भाषा कोश (14 भाषाएँ) (प्रथम संस्करण)
2. भारतीय भाषा कोश (18 भाषाएँ) (द्वितीय संस्करण)
3. भारतीय भाषा कोश (22 भाषाएँ) (तृतीय संस्करण)
4. भारतीय भाषा कोश (चतुर्थ पुनर्मुद्रण संस्करण)
5. तत्सम शब्द कोश (संस्कृत+13 भारतीय भाषाएँ)

(ख) द्विभाषा कोश

(i) हिंदी मूलक

1. हिंदी–गुजराती
2. हिंदी–सिंधी (प्रथम संस्करण)
3. हिंदी–सिंधी (द्वितीय संस्करण)
4. हिंदी–उर्दू (प्रथम संस्करण)
5. हिंदी–उर्दू (द्वितीय संस्करण)
6. हिंदी–तमिल (पुनर्मुद्रित)
7. हिंदी–तेलुगु (परिवर्धित)
8. हिंदी–मलयालम
9. हिंदी–ओडिया
10. हिंदी–मराठी
11. हिंदी–असमिया
12. हिंदी–कश्मीरी
13. हिंदी–डोगरी कोश
14. हिंदी–मैथिली कोश
15. व्यावहारिक हिंदी–अंग्रेजी शब्दकोश

(ii) भाषा मूलक

16. ओडिया–हिंदी
17. मलयालम–हिंदी
18. उर्दू–हिंदी (प्रथम संस्करण)
19. उर्दू–हिंदी कोश (द्वितीय संस्करण)
20. तमिल–हिंदी कोश
21. पंजाबी–हिंदी कोश
22. गुजराती–हिंदी कोश
23. कश्मीरी–हिंदी कोश

(ग) त्रिभाषा कोश (प्रत्येक कोश तीन खंडों में)

(i) हिंदी मूलक

1. हिंदी–गुजराती–अंग्रेजी
2. हिंदी–तमिल–अंग्रेजी
3. हिंदी–कश्मीरी–अंग्रेजी
4. हिंदी–बंगला–अंग्रेजी
5. हिंदी–सिंधी–अंग्रेजी
6. हिंदी–मराठी–अंग्रेजी (पुनर्मुद्रित)
7. हिंदी–कन्नड–अंग्रेजी (पुनर्मुद्रित)
8. हिंदी–पंजाबी–अंग्रेजी
9. हिंदी–असमिया–अंग्रेजी
10. हिंदी–बोडो–अंग्रेजी कोश
11. हिंदी–मलयालम–अंग्रेजी

(ii) भाषा मूलक

12. तमिल–हिंदी–अंग्रेजी (भाग1–2)
13. मराठी–हिंदी–अंग्रेजी (भाग 1–2)
14. गुजराती–हिंदी–अंग्रेजी (भाग 1–2–3)
15. बंगला–हिंदी–अंग्रेजी

भाषा मार्च–अप्रैल 2026

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
दूरभाष:–011–20862356/26105211
एक्सटेंशन– 248/234/231

Central Hindi Directorate
Ministry of Education, Govt. of India
West Block-7, Ramakrishnapuram,
New Delhi-110066
www.chd.education.gov.in